धर्मशास्त्र साहित्य में अपराध एवं दण्ड विधान

(मनु तथा याज्ञवल्क्य के विशेष सन्दर्भ में)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी की पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध

शोधकर्त्री :

श्रीमती विभा एम०ए०, बी०एड०

C/0 डॉ० कैलाशनाथ द्विवेदी, प्राचार्य,

मथुराप्रसाद स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोंच (जालौन) - २८५२०५
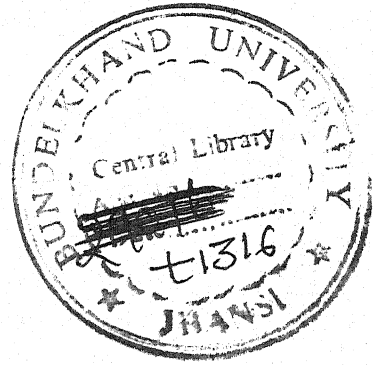
पर्यवेक्षक :

डॉ0 पूरनसिंह निरंजन एम०ए०, पी-एच०डी०

संस्कृत-विभागाध्यक्ष

डी० वी० स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई (जालौन) - २८५००१

(बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी)

१९९५ ई०

प्रमाणपत्र

सहर्ष प्रमाणित किया जाता है कि -

(1) प्रस्तुत शोध प्रबन्ध "धर्मशास्त्र साहित्य में अपराध एवं दण्ड विधान", (मनु तथा याज्ञवल्क्य के विशेष सन्दर्भ में) मेरी शोध छात्रा श्रीमती विभा का निजी एवं मौलिक शोधकार्य है।

(2) इन्होंने मेरे निर्देशन एवं पर्यवेक्षण में विश्वविद्यालय शोध अधिनियम में निर्धारित अवधि तक यह शोधकार्य किया है।

(3) शोध छात्रा ने इस कार्य हेतु संस्कृत विभाग में वांछित उपस्थिति भी दी है।

शोध छात्रा के उज्जवल भविष्य की मंगल कामनाओं के साथ प्रस्तुत शोध प्रबन्ध विश्व विद्यालय को परीक्षणार्थ प्रस्तुत करने की मैं सहर्ष अनुमति देता हूँ।

पूरनसिंह निरंजन

(डॉ॰ पूरनसिंह निरंजन)
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग,
डी0 वी0 स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
उरई (जालौन) उ॰ प्र॰ 285001.

संस्कृत विभाग,
डी0 वी0 कालेज, उरई (जालौन)
दिनांक: ..30.8.95...

प्राक्कथन

सर्वाङ्ग समृद्ध संस्कृत साहित्य में बहुआयामी सामाजिक जीवन कालोकधर्मी यथार्थ चित्रण प्राप्तहोताहै। इसके विशाल धर्मशास्त्र साहित्य में पुरातन भारतीय जन-जीवन भी अनस्पृष्ट नहीं रहा है, जिसमें मानव सुलभ विविध सामाजिक अपराधों के साथ ही तत्सम्बन्धित दण्डों की मनु, याज्ञवल्क्य, बृहस्पति, नारद, पराशर, गौतम, कौटिल्य आदि धर्मशास्त्रियों ने सुन्दर मीमांसा कीहै।

इस दृष्टि से धर्मशास्त्र साहित्य में मनु तथा याज्ञवल्क्य के स्मृति ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

विविध सामाजिक अपराध तद्युगीन धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताओं के साथ राज नियमों (विधि या कानून) द्वारा निर्धारित दण्डों से नियंत्रित होते थे इसका भी सुन्दर प्रतिपादन धर्मशास्त्रियों ने अपनी मौलिक चिन्तना के द्वारा अपने धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में किया है। संस्कृत धर्मशास्त्र में जितना स्मृति साहित्य विशेषतः मनु और याज्ञवल्क्य स्मृति सामाजिक अपराधों एवं तत्सम्बन्धित दण्डों के प्रति सजग और सचेष्ट दृष्टिगत होता है, उतना साहित्य का कोई भी अंग सामाजिक सुधार की दिशा में सचेष्ट नहीं है । अतः "धर्मशास्त्र साहित्य में अपराध एवं दण्ड विधान" (मनु तथा याज्ञवल्क्य के विशेष संदर्भ में) विषय पर मौलिक शोधकार्य सम्बन्धी मेरा यह प्रस्तुत लघु प्रयास है।

प्रस्तुत शोध-विषय का चयन और इस पर कार्य करने में मुझे अनवरत प्रेरित किया मेरे पूज्यपिता "डॉ॰ कैलाश नाथ द्विवेदी, प्राचार्य, म०प्र०महाविद्यालय, कौंच (जालौन) (उ॰प्र॰) ने तथा आत्मीयतापूर्वक सुयोग्य मार्गनिर्देशन किया, विद्वद्वर डॉ॰ पूरन सिंह निरंजन, संस्कृत-प्राध्यापक, डी०वी०कालेज, उरई (जालौन) (उ॰प्र॰) ने -एतदर्थ इनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता सादर ज्ञापित है।

शोध सामग्री को प्रयाग, वाराणसी, वनस्थली, कानपुर, अजीतमल आदि विश्वविद्यालयीय-महाविद्यालयीय ग्रन्थालयों से संजोने में मेरे अग्रज डॉ॰ कपिल देव द्विवेदी, और श्री अरुण देव, अनुज चि॰ प्रणव देव, के अतिरिक्त भाभी श्रीमती डॉ॰ मीरा द्विवेदी, (संस्कृत प्राध्यापिका, वनस्थली विद्यापीठ) ने आत्मीयता पूर्वक जो अथक परिश्रम किया है, इसे धन्यवाद की औपचारिकता से हल्का नहीं करना चाहती । पतिदेव श्री कौशल किशोर शुक्ल, इलाहाबाद ने गृहस्थी के दायित्वों से मुझे मुक्त रखा और मेरी ममतामयी माँ सौ॰ कुसुमादेवी ने नन्हें विभु और विभूति के लालन पालन का गुरुतम दायित्व संभालते हुए गृहकार्यों से बचाकर मुझे शोधकार्य करने का यह सुअवसर प्रदान किया, जिसके लिए मैं उनकी सदैव ऋणी रहूँगी । श्री सुनील श्रीवास्तव, कौंच ने तत्परतापूर्वक टंकण कार्य किया-एतदर्थ इन्हें धन्यवाद देती हूँ । यदि कहीं टंकण सम्बन्धी त्रुटियाँ रह गई हों तो प्रबुद्ध पाठकगण उन्हें शुद्ध रूप में कृपया ग्रहण करें।

यद्यपि इस विषय पर प्रारम्भिक कुछ कार्य समग्र धर्मशास्त्र को दृष्टि में रखकर डॉ॰ प्रतिभा त्रिपाठी, डॉ॰ साधना शुक्ला, डॉ॰ हरिहरनाथ त्रिपाठी, डॉ॰ वाचस्पतिशर्मा आदि ने अपनी अपनी दृष्टि से किया है, तथापि मनु और याज्ञवल्क्य स्मृति परविशेष शोधात्मक दृष्टि इस सन्दर्भ में रखकर तुलनात्मक मौलिक अध्ययन करने का मेरा यह विनम्र प्रयास है।

आशा है, नीर-क्षीर विवेकी विद्वज्जन प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के दोषों पर ध्यान न देकर उदारतापूर्वक इसकी उपादेयता एवं गुणवत्ता को आत्मीयता पूर्वक ग्रहण करेंगे।

"हंसो हि क्षीर मादत्ते तन्मिश्रं वर्जयत्यपः ।"

यदि विद्वज्जनों और सामान्य पाठक सामाजिकों को मेरा यह शोध प्रबन्ध किञ्चिन्मात्र भी उपादेय लगा तो मैं अपने इस श्रमसाध्य लघु प्रयास को सर्वथा सार्थक समझूँगी।

प्राचार्य निवास, कौंच (जालौन) उ॰ प्र॰
श्रावण पूर्णिमा (रक्षाबन्धन) सं॰ 2052
दिनांक: 10 अगस्त, 1995 ई॰

विदुदाराधिका,

विभा

(श्रीमती विभा)

विषयानुक्रम

पृष्ठ संख्या

* * * *

भूमिका

:: : : : : : : :
: भूमिका :
: : : : : : : :

भूमिका

भारतीय संस्कृति समस्त संसार में जिन महत्त्वपूर्ण उपादानों से समस्त संसार में समाहित होकर गौरवान्वित है, उनमें धर्म का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वैदिक कालसे ही धर्म का व्यापक स्वरूप ऋत के रूप में सुपरिचित एवं सर्वमान्य रहा है। वैदिक वाङ्मय में अधर्म से बचने के लिए अपराध एवं दण्ड का विवेचन अत्यन्त सूक्ष्म है, किन्तु परिवर्तित धर्म सूत्रों एवं स्मृति ग्रन्थों में दण्ड व्यवस्था का स्वरूप अत्यन्त स्पष्ट है तथा अपराधों का भी वैज्ञानिक वर्गीकरण करते हुये उनके लिये पृथक् पृथक् दण्ड व्यवस्था निर्धारित की गयी है ।

धर्म सूत्र मुख्यतः चार हैं जो इनके निर्माता महर्षियों के नाम से निम्नलिखित सुप्रसिद्ध है ।

(1) आपस्तम्ब धर्म सूत्र, (2) गौतम धर्म सूत्र,

(3) बौधायन धर्म सूत्र, (4) विष्णु धर्म सूत्र.

धर्मसूत्रों में स्मृति को धर्म शास्त्र कहा गया है । जैसा कि गौतम धर्म सूत्र में प्रतिपादित किया गया है —— तस्यच व्यवहारो वेदो धर्मशास्त्राण्यङ्गान्युपवेदाः पुराणम् ।

—— (गौ. ध. सू. 2/2/19)

---

(1) ऋग्वेद 10/190/1,3 ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत ।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ।।
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत ।
अहोरात्राणि धाता यथा पूर्वमकल्पयत् ।
दिवं च पृथिवीं चा ऽन्तरिक्षमथो स्वः ।।

(2) मनुस्मृति 2/10— "श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्म शास्त्रं तु वै स्मृतिः ।"

:: धर्मशास्त्र साहित्य में स्मृतियों का स्थान एवं महत्व ::

स्मृतियों कीसंख्या विवादास्पद है। गौतम केवल मनु का उल्लेख करते है। बौधायन ने सात, वशिष्ठ ने पाँच, तथा आपस्तम्ब ने दस स्मृतिकारों का उल्लेख किया है ।

मनुस्मृति में छः और याज्ञ0 स्मृति में बीस स्मृतिकारों का उल्लेख पाया जाता है । पाराशर ने उन्नीस स्मृतिकारों का परिगणन करते हुये छः नाम और जोड़ दिये गये है । विश्वरूप ने दस नाम और जोड़ दिये । स्मृति चन्द्रिका, हेमाद्रि एवं सरस्वती विलास ने उपस्मृतिओं की संख्या छत्तीस बतायी है । यही संख्या भविष्य पुराण में भी मिलती है ।[3] वृद्ध गौतम स्मृति में सत्तावन स्मृतियों का उल्लेख है । निर्णय सिन्धु और वीरमित्रोदय में यह संख्या सौ तक पहुंच जाती है ।[4] इन सभी स्मृतियों में समाज के धार्मिक, आर्थिक, नैतिक, आध्यात्मिक और राजनैतिक पक्षों का व्यवहारिक दृष्टि से विशद एवं समीचीन विवेचन की दृष्टि से ही मनु और याज्ञवल्क्य स्मृति ही विशेष महत्वपूर्ण मानी जाती है । स्मृति श्रुति (वेद) पर ही आधारित मानी जाती है ।[5] वेदों पर आधारित होते हुये भी स्मृतियों में समकालीन सामाजिक सदाचारों तथा आचार व्यवहारों के नियमों के संकलन का प्रयास किया | उदाहारणार्थ - कलिवर्ज अट्ठावन

---

3. अष्टादशपुराणेषु यानि वाक्यानिपुत्रक, तान्यालोच्य महाबाहोतथा स्मृत्यन्तरेषु च मन्वादिस्मृतयो याश्च षट्त्रिंशत्परिकीर्तिताः, तासां वाक्यानि क्रमशः समालोच्य अधोभिते ।" —— भविष्य पुराणम् ...

4. प्राचीन भारत में राज्य एवं न्यायपालिका, डॉ0 हरिहर नाथ त्रिपाठी, दिल्ली । — 1965 पृष्ठ 100.

5. "रघुवंश 212—— श्रुतेरिवार्थम् स्मृतिरन्वगच्छत् ।

निषेधों की सूची वैदिक विचारों का अपवाद प्रस्तुत करती है । ऐसी स्थिति में श्रुति, स्मृति,- विरोध की स्थिति स्वाभाविक है । मीमांसकों ने श्रुति, स्मृति विरोध की स्थितिमें श्रुति को सर्वमान्य वरीयता दी है । उनके अनुसार श्रुति का विषय धर्म, जबकि स्मृति के विषय अर्थ एवं काम है । अतः स्मृतियाँ उनकी दृष्टि में वेदों की अपेक्षा अप्रामाणिक, किन्तु मीमांसकों ने अपने अपने मन्तव्यों में धर्म को मात्र संकुचित रूप में कर्मीय विधि से ही सम्बद्ध किया, जबकि धर्म के व्यापक अर्थको ग्रहण करने पर स्मृतियाँ विशेषतः मनु एवं याज्ञवल्क्य स्मृति व्यक्ति एवं समस्त समाज के व्यावहारिक धर्म का सुदृढ़ आधार बनी । परिणामतः सम्पूर्ण धर्म शास्त्र साहित्य में व्यावहारिक दृष्टि से स्मृतियों का अधिक महत्वपूर्ण स्थान है ।

पाश्चात्य विद्वान् मैन के मतानुसार — "श्रुति का कोई वैधानिक महत्व नहीं है । विधान में स्मृतियाँ ही मान्य हैं ।" सुप्रसिद्ध विद्वान् जौली भी मानते है कि "श्रुतियाँ विधि की अपेक्षा आचार के लिये अधिक महत्वपूर्ण है । समाज की परम्परा रीति-रिवाज, आचार, व्यवहार एवं सदाचार को संहिताबद्ध करने में स्मृतियों में श्रुति की परम्परा का समन्वय करने का प्रयास किया गया है ।"[6]

हमारे भारतीय चिन्तकों ने चरित्र तथा लोकाचार का धर्मशास्त्र के साथ विरोध पाने पर धर्म शास्त्र को ही प्रमाण स्वरूप मानकर स्मृतियों की महत्ता प्रतिपादित की हैं । मनु और याज्ञवल्क्य दोनों ने धर्म, अर्थ, तथा काम तीनों पुरुषार्थों को समान महत्व दिया है।[7] साथ ही मनु ने स्थानीय सदाचार एवं सार्वभौम विधि को ही समान महत्ता प्रदान की है ।[8] अतः समस्त धर्मशास्त्र साहित्य में निर्विवाद रूप से

- -

6. उद्धृत— प्राचीन भारत में राज्य एवं न्यायपालिका, 1965 पृष्ठ 106.

2. धर्मार्थावुच्यते का श्रेय त्रिवर्ग इति तु स्थिति/

7. धर्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थौ धर्म एव च, ।
अर्थ एवेह वा श्रेय— स्त्रिवर्ग इति तु स्थिति ।। — मनुस्मृति -2/224.

8. प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्र दृष्टैश्च हेतुभिः ।
धर्म शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्य विनिर्णयम् ।।—मनुस्मृति 8/8.

स्मृतियों में विशेषतः मनु एवं याज्ञवल्क्य का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

धर्मशास्त्र सम्बन्धी विविध ग्रन्थों में मानवीं "धर्म शास्त्र अथवा मनुस्मृति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं सबसे प्रमुख तथा लोकप्रिय है। इस कृति को मनु की रचना बताया जाता है, किन्तु अपने वर्तमान परिवर्धित रूप में यह भृगु की रचना बतायी जाती है । पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित कतिपय उल्लेखों से मनु स्मृति की प्राचीनता एवं प्रमाणिकता प्रायः प्रतिपादित हुयी है । ब्यूहलर की अवधारणा है कि " वर्तमान मानव धर्मशास्त्र अथवा मनुस्मृति मानव सूत्रकरण नाम से अवधीयमान सूत्रग्रन्थों की विधा के किसी मौलिक ग्रन्थ पर आधृत पद्यबद्ध रचना है । मानव सूत्रकरण कृष्ण यजुर्वेद संस्करण पर प्रवर्तित मैत्रायणी शाखा का एक उपविभाग है। स्वयं मानव धर्मशास्त्र अपना मनुस्मृति का कर्तित्व ब्रह्मा से सम्बद्ध किया गया हैं। ब्रह्मा से ही वह मनु तथा भृगु के द्वारा मनुष्यों तक पहुँची हैं। नारद स्मृति में मनु विरचित 1,00,000 पदों की एक स्मृति का उल्लेख हुआ है। जिसके पदों को घटाकर नारद ने 12,000 मार्कण्डेय ने 8000 और भृगु के पुत्र सुमति ने 4,000 श्लोक कर दिये । इस विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी मौलिक सूत्र के कितने ही संस्करण प्रति संस्करण होते रहे होंगें इसी कारण सम्भवतः मनुस्मृति में धर्मशास्त्र विषयक कुछ विरोधी तत्व का भी समावेश मिलता है।

धर्म शास्त्र साहित्य में विधि के क्षेत्र में मनु सर्वप्राचीन प्रमाण भूत आचार्य है । मनु भी अनेक हुये है । "वृद्ध मनु" और बृहद मनु के उल्लेख प्राप्त होते है। मनुस्मृति के रचनाकार मनुकी प्राचीनता का सर्वाधिक प्रमाण प्राप्त होते है । यास्क के निरुक्त[10] तथा महाभारत[11], कालिदास कृत रघुवंश[12] शूद्रक[13] कृत मृच्छकटिक आदि प्राचीन साहित्य ग्रन्थों में मनु का उल्लेख मिलता है । कहा जाता है कि मनुस्मृति के

- -

9. उद्धृत-- याज्ञवल्क्य स्मृतिः [भूमिका] लें0 डॉ0 कैलाशनाथ द्विवेदी, मेरठ 1966 पृ. 4-5.
10. निरुक्त [यास्क] ।
11. महाभारत [मानव धर्म शास्त्र] मनु का उल्लेख
12. रघु0 [प्रथम एवं चतुर्थ सर्ग], व 13. मृच्छ कटिक, [नवम् अंक]

स्मृतियों में विशेषतः मनु एवं याज्ञवल्क्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है ।

धर्मशास्त्र सम्बन्धी विविध ग्रन्थों में मानवीं "धर्म शास्त्र अथवा मनुस्मृति अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं सबसे प्रमुख तथा लोकप्रिय है। इस कृति को मनु की रचना बताया जाता है, किन्तु अपने वर्तमान परिवर्धित रूप में यह भृगु की रचना बतायी जाती है । पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित कतिपय उल्लेखों से मनु स्मृति की प्राचीनता एवं प्रमाणिकता प्रायः प्रतिपादित हुयी है । ब्यूहलर की अवधारणा है कि " वर्तमान मानव धर्मशास्त्र अथवा मनुस्मृति मानव सूत्रकरण नाम से अवधीयमान सूत्रग्रन्थों की विधा के किसी मौलिक ग्रन्थ पर आधृत पद्यबद्ध रचना है । मानव सूत्रकरण कृष्ण यजुर्वेद संस्करण पर प्रवर्तित मैत्रायणी शाखा का एक उपविभाग है। स्वयं मानव धर्मशास्त्र अपना मनुस्मृति का कर्तित्व ब्रह्मा से सम्बद्ध किया गया है। ब्रह्मा से ही वह मनु तथा भृगु के द्वारा मनुष्यों तक पहुँची है। नारद स्मृति में मनु विरचित 1,00,000 पद्यों की एक स्मृति का उल्लेख हुआ है। जिसके पद्यों को घटाकर नारद ने 12,000 मार्कण्डेय ने 8000 और भृगु के पुत्र सुमति ने 4,000 श्लोक कर दिये । इस विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी मौलिक सूत्र के कितने ही संस्करण प्रति संस्करण होते रहे होंगे इसी कारण सम्भवतः मनुस्मृति में धर्मशास्त्र विषयक कुछ विरोधी तत्व का भी समावेश मिलता है।

धर्म शास्त्र साहित्य में विधि के क्षेत्र में मनु सर्वप्राचीन प्रमाण भूत आचार्य है । मनु भी अनेक हुये है । "वृद्ध मनुः और बृहद मनु के उल्लेख प्राप्त होते है। मनुस्मृति के रचनाकार मनुकी प्राचीनता का सर्वाधिक प्रमाण प्राप्त होते है । यास्क के निरूक्त[10] तथा महाभारत,[11] कालिदास कृत रघुवंश,[12] शूद्रक[13] कृत मृच्छकटिक आदि प्राचीन साहित्य ग्रन्थों में मनु का उल्लेख मिलता है । कहा जाता है कि मनुस्मृति के

- -

9. उद्धृत-- याज्ञवल्क्य स्मृतिः (भूमिका) सं0 डॉ0 कैलाशनाथ द्विवेदी, मेरठ 1966 पृ. 4-5.
10. निरूक्त (यास्क) ।
11. महाभारत (मानव धर्म शास्त्र) मनु का उल्लेख.
12. रघु0 (प्रथम एवं चतुर्थ सर्ग) व 13. मृच्छकटिक, (नवम् अंक).

वर्तमान पाठ में अन्य तीन वर्णों पर ब्राह्मणों के वर्चस्व के सम्बन्ध में अनेक निर्देश उपलब्ध होते है । अतः अनेक विद्वानों[14] की परिकल्पना है कि मनुस्मृति की रचना उस काल में हुयी थी जब भारत वर्ष में ब्राह्मण राजाओं का एक छत्र शासन था तथा अतलीशक्ति और सत्ता उनके हाथ में थी । भारतीय इतिहास में यह काल शुंगकाल से लेकर प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व के भारत में काण्व राजाओं के लगभग अर्द्ध शताब्दी तक के शासन की अवधि से सम्बन्धित किया जा सकता है। अतः मनुस्मृति का रचनाकाल प्रथम शताब्दी ईसवी से 300 ई.पू. निर्धारित किया जा सकता है।

मनुस्मृति की रचनाकाल की यह प्राचीनता इस तथ्य से भी पुष्ट होती है कि इसके प्राप्त पाठ में बारह अध्यायों के अन्तर्गत 2684 श्लोकों पर वर्णाश्रम धर्म, राजधर्म व्यवहारिक एवं अपराध विषयक प्रकरणों पर 9 शताब्दी ई० (825 से 900 ई. तक) मेधा तिथि, 12वीं शताब्दी कुल्लूक भट्ट के अतिरिक्त गोविन्दराज, नारायण, राघवानन्द तथा नन्दन प्रभृति अधिकारी आचार्यों ने टीकायें लिखी है, जिनमें मेधा तिथि की टीका अत्यन्त प्राचीन एवं प्रसिद्ध तथा धर्मशास्त्र साहित्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

मनुस्मृति की पुरातनकाल से भारतीय जनजीवन में व्याप्त लोकप्रियता एवं महत्ता से प्रभावित होकर बर्मा, स्याम, जावा, (हिन्देशिया) आदि देशों में भी इसका प्रचार प्रसार हुआ और इसकी उपादेयता को सहर्ष स्वीकार किया गया है ।

धर्मशास्त्र साहित्य में मनुस्मृति के बाद दूसरी महत्वपूर्ण स्मृति याज्ञवल्क्य स्मृति है, जिसमें आचार्य, व्यवहार, और प्रायश्चित के सम्बन्ध में एक एक करके कुल तीन अध्याय है । अन्य स्मृतियों की भाँति याज्ञवल्क्य के भी समय निर्धारण की समस्या धर्म शास्त्र जगत् में उलझी पड़ी है। प्रायः विद्वानों की दृष्टि इसके रचनाकाल को निश्चित

---

14. मनुस्मृति (षष्ठ अध्याय) सम्पादक, डॉ० कृष्णकान्त त्रिपाठी, भूमिका (मनुस्मृति की ऐतिहासिकता) कानपुर, 1990 पृष्ठ 2.

करने के लिये ऐतिहासिक शुंग शासन काल (ई० की प्रथम-द्वितीय शताब्दी) के आस-पास ही ठहरती है, जिसमें प्रायः स्मृति साहित्य की रचना हुई। याज्ञवल्क्य स्मृति का निर्माण काल निर्धारण करने में अधोलिखित प्रमाण प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

* * * * * *
अन्तः साक्ष्य :
* * * * * *

(1) याज्ञवल्क्य स्मृति में तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार ही नक्षत्रों का उल्लेख है। तथा उनका क्रम कृत्तिका से भरणी तक तैत्ति० ब्राह्मण जैसा निर्दिष्ट किया गया है।

(2) याज्ञवल्क्य स्मृति में (Zodical Signs.)(राशिमाला सम्बन्धी चिह्नों) का उल्लेख नहीं है।

(3) याज्ञवल्क्य स्मृति के "गुरुठे दुन्दी" की टीकाकार विश्वरूप ने जो व्याख्या की है, वह वैदिक काल के (Zodical Signs) के संदर्भ से शून्य है।

(4) याज्ञवल्क्य स्मृति में एतिवस्त्रधारी लोगों की दृष्टि को An evilmen रूप में माना गया है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर याज्ञवल्क्य स्मृति का समय ई०100 के बाद ही प्रतीत होता है।

इसके अतिरिक्त वृद्ध याज्ञवल्क्य योग याज्ञवल्क्य तथा बृहद् या०व० भी नाम विद्यमान है। योग याज्ञवल्क्य 800ई० के बहुत पूर्व विद्यमान थे। क्यों कि श्री वाचस्पति मिश्र (800 ए०) ने योग या०व० का एक आधा छन्द उद्धृत किया है तथा अपरार्क (200-700 ए०डी०) ने भी उसी से उद्धरण किया है।

* * * * * *
बाह्य प्रमाण :
* * * * * *

(1) लंकावतार सूत्र की गाथा (814-816) में याज्ञवल्क्य का उल्लेख किया गया है।

(2) व्याख्याकार विश्वरूप (700-1000 ए.डी.) के मध्य के किसी समय में इस स्मृति की रचना के कई शताब्दियों बाद हुआ प्रतीत होता है।

(3) डा. जैकोबी के सिद्धांत के अनुसार — गृह नक्षत्रों के पश्चात् सप्ताह के दिनों का नामकरण प्रथम ग्रीक लोगों ने प्रचलित किया, तत्पश्चात उन्हीं से भारतीयों ने ग्रहण किया। इस प्रकार याज्ञवल्क्य स्मृति का समय दूसरी शती के बाद ही वे निर्धारित करते हैं।

(4) डॉ० जॉली (Jolly.) के विचार से चूंकि याज्ञवल्क्य ग्रीक (Astrology] से पूर्ण परिचित प्रतीत होते हैं, अतः अपनी इसी कल्पना के आधार पर वे याज्ञवल्क्य स्मृति का काल 400 ए.डी. निर्धारित करते हैं।

* * * * * *
* समीक्षा *
* * * * * *

उपर्युक्त बाह्य तथ्यों में से पाश्चात्य विद्वानों की धारणायें एवं सिद्धांत भ्रम पूर्ण है। जो पूर्वाग्रही दृष्टि कोण से मुक्त नहीं है। भारतीय ज्योतिषशास्त्र ईसा की चतुर्थ शती के पूर्व ही यहाँ बहुत विकसित हो चुका था। डॉ० जॉली तथा जैकोबी के सिद्धांत के भ्रमपूर्ण आधार पर याज्ञवल्क्य स्मृति का वास्तविक रचनाकाल नहीं माना जा सकता है।

शुंग-सातवाहनकाल तक प्रायः सभी स्मृतियों की रचना हो चुकीथी। महा-महोपाध्याय डॉ० पी०वी०काणे भी इसी समय के आसपास (ई० की प्रथम शताब्दियों या उसके कुछ पूर्व 300 ई०पू० तक याज्ञवल्क्य स्मृति का रचनाकाल मानते हुये लिखते हैं—

"There is nothing to prevent us from holding that extant Smriti was composed during the first two centuries of the Christian era or even a little earlier."
(History of Dharm Shastra, Dr. P.V. Kane.)

अतः याज्ञवल्क्य स्मृति के निर्माण काल की सम्भावना 100ई0 पूर्व से लेकर 300 ई0तक में के मध्य की जानी चाहिये । मनुस्मृति जिसका रचनाकाल लगभग 200ई.के मध्य माना जाताहै, से याज्ञवल्क्य स्मृति की Phraseology प्रायः मिलती जुलती है तथा बहुत से सिद्धान्तों के प्रतिपादन में यह मनुस्मृति से प्रचुर मात्रा में प्रभावित जान पड़ती है। अतः उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुये डॉ0 कैलाशनाथद्विवेदी के मतानुसार - याज्ञवल्क्य 200 ई.पू. के बाद 300 ई. तक किसी समय में अपना वर्तमान स्वरूप ग्रहण करचुकीहोगी ।[15.]

मनु स्मृति की भाँति याज्ञवल्क्य स्मृति की महत्ता,प्राचीनता एवं लोकजीवन में उपादेयता इस तथ्य से पुष्ट होती है कि इस पर याज्ञवल्क्य मनुस्मृति के समान अनेक प्राचीन टीकायें आचार्यों नेलिखी । इन प्राचीन टीकाओं में आठवीं शताब्दी के आचार्य विश्वरूप की बालक्रीड़ा कल्याण के चालुक्य राजा विक्रमादित्य षष्ठ के सभा पण्डित एवं विद्वान आचार्य विज्ञानेश्वर 1120 ई. की मिताक्षरा,और अपरार्क [12वीं शताब्दी का [प्रथमार्द्ध] की अपरार्की याज्ञवल्क्यय धर्मशास्त्र निबन्ध टीका विख्यात है। इनमें श्री आचार्य विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा टीकासर्वाधिक प्रसिद्ध है, जो स्वयं में एक मौलिक रचना मानी जाती है। इस पर वैद्यनाथ पाय गुंडे [1750ई0] के पुत्र बालमट्ट [बालकृष्ण] ने बालम्भट्टीय या लक्ष्मी व्याख्यान नाम की टीकालिखी है। कुछ विद्वान् इसे वैद्यनाथ की ही कृति मानते है । इसमें स्त्रियों के सम्पत्ति अधिकार पर अधिक बल दिया गया है।

---

15. याज्ञवल्क्य स्मृतिः [व्यवहाराध्याये दाय-विभाग प्रकरण] प्रकाशक साहित्य भण्डार, सम्पादक डॉ0 कैलाश नाथ द्विवेदी. मेरठ, 1966 [भूमिका, पृष्ठ 1-11] ...

:: याज्ञवल्क्य स्मृति तथा मनुस्मृति की तुलना ::

याज्ञवल्क्य और मनु दोनों स्मृतियों में अनेक समानएवं असमान तथ्यों के दर्शन होते है ,जिन्हें हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते है ।

मनु एवं याज्ञवल्क्य दोनों स्मृतियों में समानता
* *

§1§ याज्ञवल्क्य स्मृति तथा मनुस्मृति दोनों की Phraseology में घनिष्ठ समानता दृष्टिगोचर होती हैं ।

§2§ याज्ञवल्क्य स्मृति में मनु स्मृति के ही सिद्धान्तों के स्वरूप को प्रायः संकुचित §संक्षिप्तीकृत§ करने काप्रयास किया गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति में वे स्वयं के मौलिक सिद्धान्त नहीं है — वह मनु स्मृति से भिन्न नहीं हैं ।

दोनों स्मृतियों मेंअसमानता
* * * * * * * * * * * * *

§1§ याज्ञवल्क्य स्मृति सृष्टि उत्पत्ति के सम्बन्धमें अपना कोई दृष्टिकोण प्रस्तुत नहीं करती, जबकि मनुस्मृति में सृष्टि के उद्भव पर भी विचार व्यक्त किया गयाहै।

§2§ सामान्यतः मनुस्मृति ब्राह्मण को शूद्र लड़की से भी विवाह करने की अनुमति देती है ,जबकि याज्ञवल्क्यस्मृति के अनुसार ब्रह्मण को शूद्रा से विवाह करना अप्रशंसनीय होने से वर्जित किया गया हैं ।

§3§ मनु स्मृति नियोग, क्रिया की निन्दा करती है, जबकि याज्ञवल्क्य स्मृति नहीं।

§4§ इसीप्रकार जुआ खेलने की मनुस्मृति में निन्दा की गयी है, या०स्मृति में नहीं ।

§5§ याज्ञवल्क्य स्मृति, विनायक शान्ति §जो मानव गृह्य सूत्र से ग्रहण किया है§ ग्रहशान्ति तथा §जल, अग्नि से शुद्ध होने की§ कठिन परीक्षाओं को समाविष्ट

किये है, जबकि मनुस्मृति प्रथम दो {विनायक शान्ति ग्रहशांति} का उल्लेख नहीं करती है। उसमें तो केवलदो कठिन परीक्षाओं का उल्लेख है ।

{6} याज्ञवल्क्य स्मृति की भाषा-शैली तथानियमों की क्रमबद्धता मनुस्मृति की अपेक्षा अधिक सुन्दर तथा उपयुक्त है ।

समीक्षा :- यद्यपि दोनों स्मृतियों में कुछ साम्य होते हुए भी अनेक {तथ्यों} दृष्टिकोणों के अनुसार विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। जिसमें याज्ञवल्क्य स्मृति, मनु-स्मृति की अपेक्षा अधिक विकसित अवस्था को व्यक्त करती है। जैसा कि — म0म0 डॉ0 पी0वी0काणे ने भी अपना मत स्पष्ट किया है।

• "Manu and Yajn. differ on several points and Yajn. represents a more advanced state of thought than Manu." (History of Dharm-Shastra).

इसप्रकार संस्कृत के धर्म शास्त्र साहित्य में महत्वपूर्ण इन दोनों स्मृतियों में अनेक दृष्टियों से विवेच्य विषयगत समानता- असमानता होते हुए भी अर्वाचीन आदर्श सामाजिक जीवन पद्धति निर्धारित करने कीव्यापक दिशा में इन दोनों स्मृतियों की उपादेयता एवं महत्ता निर्विवाद एवं असंदिग्ध ही है। अतः वर्तमान विविध सामाजिक सन्दर्भों विशेषतः विद्यमान सामाजिक अपराध एवं तत्सम्बन्धित दण्ड विधान का अनुसन्धान पूर्ण तुलनात्मक अध्ययन इन दोनों स्मृतियों के आधार पर करना अत्यन्त समीचीन है ।

:: शोध प्रबन्ध की संक्षिप्त पृष्ठ भूमि ::

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में भूमिका के अन्तर्गत विषय प्रवेश में संस्कृत धर्मशास्त्र साहित्य में स्मृतियों का महत्व, मनु एवं याज्ञवल्क्य स्मृति का स्थान, मनु स्मृति एवं याज्ञवल्क्य -स्मृति का समय निर्धारण, अनुसंधानात्मक दृष्टि से करने के पश्चात् प्रथम अध्याय में

मनुस्मृति के सामाजिक प्रतिपाद्य विषय के अन्तर्गत सामाजिक एवं पारिवारिक विविध मानवीय सम्बन्ध, वर्णाश्रम व्यवस्था, संस्कार, तथा आचार सम्बन्धी धार्मिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं में (सत्य,अकायता,अचौर्य, अहिंसा, संयम, अधैर्य, सहरदान-पान, आहार-विहार, दुराचारी कीनिन्दा आदि पर विचार करते हुये विविध सामाजिक अपराधों (ब्राह्मण गुरु आदि की हत्या, सुरापान, स्तेय, चोरी करना, व्यभिचार, बलात्कार, अपहरण, भोजन,में विष मिलाना, फसल या खलिहान में आग लगाना(आदि) पर विचार करते हुये इनसे सम्बन्धित विविध आर्थिक, शारीरिक, निग्रह निर्वासन,आदि दण्डों की गवेषणा की गयी है ।

द्वितीय अध्याय, के अन्तर्गत याज्ञवल्क्य स्मृति के सामाजिक प्रतिपाद्य विषय, सामाजिक सांस्कृतिक तथा धार्मिक चेतना के साथ इसके और मनुस्मृति के परिप्रेक्ष्य में निरूपित विविध अपराध एवं तद्सम्बन्धित दण्डों का तुलनात्मक विवेचन किया गया है।

तृतीय अध्याय, में मनु एवं याज्ञवल्क्य द्वारा निरूपित क्रोध प्रेरित कायिक अनेक अपराधों (हाथ से किसी के शरीरपर दण्ड प्रहार, पाद प्रहार, थूक देना,केश पकड़ना, गाली देना, अंगभंग करना, आदि) की विवेचना करते हुये तद सम्बन्धित दण्डों की अनुसंन्धान पूर्ण विवेचना की गयी है ।

चतुर्थ अध्याय, में मनु और याज्ञवल्क्य द्वारा निरूपित क्रोध प्रेरित कायिकविविध हिंसा, अपराध (प्राण हत्या, कुंये या तालाब या भोजन में विष मिलाना) घर में आग लगाना आदि) से सम्बन्धित दण्डों की तुलनात्मक शोध पूर्ण समीक्षा की गयी है ।

पंचम अध्याय, में सामाजिक नियमों के उल्लंघन एवं विभिन्न धार्मिक अपराधों (ब्राह्मण के स्वर्ण की चोरी, ब्राह्मण को पीड़ित करना, देव मंदिर या देवमूर्ति को तोड़ना,

कूपा भेदन, हरे वृक्ष काटना, पुरोहित का यज्ञ अधूरा छोड़कर चले जाना, यजमान द्वारा पुरोहित को दक्षिणा न देना, विवाह हेतु अन्य कन्या को दिखाकर अन्य के साथ विवाह करनाआदि) की मनु और याज्ञवल्क्य के आधार पर समीक्षा करते हुये तुलनात्मक दृष्टि से तद्सम्बन्धित दण्डों की शोधपूर्ण समालोचना की गयी है।

षष्ठ अध्याय, में काम प्रेरित विविध सामाजिक अपराधों (कन्या दूषण, अंगुल निक्षेपणादि, स्त्रीहरण ,परस्त्री गमन, आदि) तथा तद्सम्बन्धित दण्डों का अनुसंधान पूर्ण तुलनात्मक अध्यापन मनु एवं याज्ञवल्क्य स्मृति के आधार पर किया गया है ।

सप्तम् अध्याय, में विविध व्यावसायिक (आजीविका सम्बन्धी अनेक अर्थमूलक सामाजिक अपराधों— निक्षेपाहार, मिथ्या चिकित्सन, कुबीज विक्रय, स्वर्णवंचक, जुआ खिलाने वाले, जुलाहे का सूत हरण करने वाले, वैश्य या श्रेष्ठी का तुलादि परीक्षा में दोषी रूप से वाणिज्य करना, नाविक के दोष से वस्तु नाश आदि) तथा तद्सम्बन्धित दण्डों का अनुसंधान पूर्ण तुलनात्मक अध्ययन किया गया है ।

अष्ठम अध्याय, में अन्तर्गत मोहमद प्रेरित विविध अपराधों (मोहवश मिथ्यावाद (मुकदमा) चलाना, झूठ गवाही देने वाले, धान्य, स्वर्ण, पशु, सूत कपासादि हरण करने, वाले, स्त्री का मदिरा पान करना, ब्रह्मचारी का मैथुन एवं मद्यपान करना आदि) पर मनुऔर याज्ञवल्क्यस्मृतियों के आधार पर विचार करते हुये तद् सम्बन्धित दण्डों की तुलनात्मक गवेषणा की गयी है ।

नवम अध्याय, में मनुऔर याज्ञवल्क्य स्मृति में निरूपित सामाजिक जनों एवं राजपुरुषों द्वारा किये विविध सामाजिक अपराधों (निक्षेप का धन न लौटाना, निक्षेप का मिथ्या कथन, सामाजिक साक्ष्य के अभाव में मिथ्या साक्ष्य देना, राजपथ, सीमाविवाद,

सीमा स्थल, के अपराध, उत्कोच (घूस) लेना, राजकोष की चोरी, राजपत्नी के साथ व्यभिचार, राजद्रोह, राज्य अधिकारियों द्वारा निरपराध लोगों को दण्ड देना आदि) पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते हुये तत्सम्बन्धित दण्डों की गम्भीर गवेषणा की गयी है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अंत में प्रतिपाद्य निष्कर्षों का मूल्यांकन निरूपित करते हुये सामाजिक अपराध परक दूषित परम्पराओं में परिष्कार की दृष्टि से दोषमूलक विभिन्न अपराधों के उन्मूलन की दिशा में धर्म शास्त्र के अन्तर्गत विशेषतः मनुस्मृति एवं याज्ञवल्क्य स्मृति में निर्धारित दण्डों की व्यावहारिक उपयोगिता सभ्य समाज एवं राष्ट्र के सुधार की दृष्टि से प्रतिपादित की गयी है।

****

प्रथम अध्याय

"मनु स्मृति के सामाजिक प्रतिपाद्य विषय"

प्रथम अध्याय

: मनु स्मृति के सामाजिक प्रतिपाद्य विषय :

* * * * * * * * * * * * * * * * * * * *

मानवीय समाज से सम्बन्धित समस्त गतिविधियों का चित्रांकन और उन पर गम्भीरता पूर्वक चिन्तनोपरान्त उनका सम्यक् विश्लेषण प्राचीन भारतीय एवं संस्कृति की प्रमुख विशेषतायें रही हैं। मानव जीवन का प्रत्येक पहलू, जन्म से लेकर मृत्यु तक उसकी समस्त गतिविधियाँ प्राचीन मनीषियों की गम्भीर विवेचना के विषय रहे हैं।

प्राचीन भारतीय समाज के अग्रिमागर, ऋषियों द्वारा मानवीय मनोवृत्तियाँ अच्छी व बुरी तथा मनुष्य मात्र के सम्पूर्ण कार्यकलापों को सामाजिक अनुबन्धनों में इस प्रकार गठित, अनुशासित और कुछ अंशों तक सीमित रखने का प्रयास किया गया, जिससे उसका जीवन सफल हो सके और मानव जीवन की सार्थकता अनुभव हो सके। सामाजिक जीवन की सफलता को ध्यान में रखते हुए एक विपुल साहित्य, धर्मशास्त्र की रचना हुई। इसी धर्मशास्त्र को स्मृति ग्रन्थों की संज्ञा दी जा सकती है।[*1] स्मृतियों में जिन विषयों का वर्णन है उनमें तीन मुख्य है — (1) आचार (2) व्यवहार (3) प्रायश्चित्त। आचार वर्ग में राज धर्म के प्रकारों का वर्णन है। व्यवहार वर्ग में राजधर्म, प्रशासन विधि (न्याय व्यवस्था) आदि विषयों का समावेश है और प्रायश्चित्त वर्ग में अपराधों तथा पापों से मुक्त होने के विविध उपाय है। इस प्रकार स्मृतियों में वे सभी आचार विचार और व्यवहार है जो वेदज्ञ आचारवान् पुरुषों की स्मृति और आचरण में पाये जाते थे।

संस्कृत धर्मशास्त्र में मनुस्मृति का मूर्धन्य स्थान है। इसमें प्रतिपाद्य आर्य जीवन के,

---

* 1. श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः। ——— मनुस्मृति 2/10.

सामाजिक आदर्शों को दृष्टि में रखकर स्मृतिकार ने समय समय पर बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों एवं परिवेशों को ध्यान में रखते हुए, जिन नियमों व मानवीय सम्बन्धों की विवेचना की वे सर्वथा उल्लेखनीय है । इतना ही नहीं मनुस्मृति को तो हिन्दू - कानूनों को प्रतिष्ठित करने वाला महान् ग्रन्थ माना जाता है । मनुस्मृति केवल धर्मशास्त्र ही नहीं अपितु एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें मनुष्य के सम्पूर्ण सामाजिक जीवन के उन सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है जिन्हें सभी कालों एवं देशों (Time and Space) में लागू किया जा सकता है । अर्थात् जिन का महत्व सर्वव्यापी है ।*2.

: सामाजिक एवं पारिवारिक विविध मानवीय सम्बन्ध :

तत्कालीन समाज के संचालन में जिनउपादानों का अवदानथा, मनुने उनकी सटीक व्याख्या की है । चाहे वे मानवीय सम्बन्ध हों या फिर पारिवारिक । यहाँ इन सम्बन्धों का विस्तृत विवेचन करना सर्वथा संगत व समीचीन है ।

---

*2. "But fundamentally, the Dharma Shastra contains a statement of principles of social life of man applicable at all times and in all climates and therefore has a universal significance, its teaching are aimed at the homosapiens, the human race, the manavas, as a whole" — Kewal Motiwani. (Manu Dharma Shastra.)

पुत्र -- परिवार का आरम्भ विवाह से होता है, और पूर्णता सन्तति से । विवाह का एक मुख्य प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति है । इसके बिना मनुष्य अपूर्ण है । और सच्चे अर्थों में परिवार का निर्माण नहीं करता । धर्मशास्त्रों में पुत्र पाने के लिए पुंसवन संस्कार किये जाने का उल्लेख मिलता है। पुत्र प्राप्ति की आतुरता के प्रधान कारण अमरत्व की प्राप्ति, मनोवैज्ञानिक भावनाओं, पुत्र द्वारा मिलने वाले सुख, और धार्मिक विश्वास आदि है । यद्यपि विभिन्न धर्मशास्त्र ग्रन्थों में, विभिन्न प्रकार के पुत्रों का उल्लेख मिलताहै। उनकी संख्या, नाम , तथा स्वरूप व स्वत्वों के सम्बन्ध में स्मृतिकारों में मतभेद है । स्मृतिकार मनु नेजिन विभिन्न प्रकार के पुत्रों का उल्लेख किया है, वे निम्नांकित है :—

(1) औरस : जो पुत्र विवाह संस्कार युक्त समान वर्ण कीपत्नी से उत्पन्न किया जाय तो उसे औरस पुत्र कहते है ।[3] यद्यपि आपस्तम्ब[4] और बौधायन[5] इसके लिये सवर्णा पत्नी ही आवश्यक मानते हैं । किन्तु मनुस्मृति इसका कोई बन्धन नहीं मानते हैं । औरस पुत्र की अपेक्षा अन्य पुत्रों को गौण माना गया है। मनुस्मृति के अनुसार पिता की सम्पत्ति का वास्तविक अधिकारी केवल वही है । वह गौण पुत्रों को बराबर का हिस्सा नही देगा, किन्तु भरण पोषण का खर्चा देगा ।[6] आशय यह है कि औरस पुत्र, अपनेपिता का सच्चे रूप में अकेला ही उत्तराधिकारी होता हैं ।

---

*3. स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तु स्वयमुत्पादयेद्धियम् ।
तमौरसं विजानीयात्पुत्रं प्रथमकल्पितम् ।। —— मनुस्मृति : 9/166.

*4. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/13/1.

*5. बौधायन धर्मसूत्र 2/21/4.

*6. एकं एवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः ।
शेषाणामानृशंस्यार्थं प्रदद्यात्तु प्रजीवनम् ।। मनुस्मृति : 9/163.

§2§ क्षेत्रज : जो पुत्र मरे हुए या नपुंसक या रोगी पति की स्त्री के द्वारा शास्त्र[7] प्रतिपादित नियोग प्रथा से उत्पन्न होता है उसे क्षेत्रज पुत्र कहते हैं ।

गौण पुत्रों में क्षेत्रज का स्थान बहुत ऊँचा है । गौतम वशिष्ठ, नारद, विष्णु और यम इसे दूसरा स्थान देते है । लेकिन बौधायन, कौटिल्य, याज्ञवल्क्य, देवल, महाभारत और ब्रह्म० पुराण के साथ साथ मनु तीसरा स्थान देते है । आपस्तम्ब[8] ने इसका इस आधार पर निषेध किया कि क्षेत्रज पर उत्पादक का ही अधिकार है पति का नहीं । मनु इसकी घोर निन्दा करते हैं । और इसको मानते है ।[9] क्षेत्रज पुत्र पर अधिकार के सम्बन्ध में स्मृतिकारों में बहुत विवाद हैं । आपस्तम्ब और बौधायन के अनुसार बीजी ही पुत्र का स्वामी होता है ।

§3§ दत्तक : जब माता पिता अपने सदृश § समान जातीय§ किसी मनुष्य को जल से संकल्प करके प्रीतिपूर्वक अपने पुत्र को देते है तब उसे दत्तक पुत्र कहते हैं.[10]

गौतम और वशिष्ठ दत्तकपुत्र को आठवाँ, याज्ञवल्क्य ने सातवाँ, तथाकौटिल्य और नारद ने नवाँ स्थान दिया हैं । जबकि मनु ने इसे बारह पुत्रों में तीसरा स्थान देते है। मनु दत्तक पुत्रों को माता पिता को कठिनाई देने वाला मानते है ।

---

*7. यस्तल्पजः प्रमीतस्य क्लीवस्य व्याधितस्य वा ।
स्वधर्मेण नियुक्तायां स पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः ।।
—— मनु० 9/167.

*8. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/13/5-7.

*9. मनु स्मृति - 9/64/68.

*10. माता पिता व दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि ।
सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्रिमः सुतः ।।

—— मनुस्मृति 9/168.

§4§ कृत्रिम : जब गुण दोष के विचार में चतुर पुत्र के गुणों से युक्त अपने सदृश §समान-
-जातीय§ बालक को अपना पुत्र बनाया जाय, तो कृत्रिम पुत्र कहलाता है।*11.

§5§ गूढज : यदि किसी परिवार के पुत्र के बारे में ज्ञान नहीं है, कि वह किसके वीर्य से उत्पन्न हुआ है, तो उसे गूढोत्पन्न मान, उसी भार्या के पति का पुत्र माना जाता है.*12. वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य तथा कौटिल्य ने भी इसका उल्लेख किया है। यह पुत्र प्रभावित व्यभिचार वाला नहीं, किन्तु संदिग्ध पितृत्व वाला माना जाता है।

§6§ अपविद्ध : जब माता, पिता या दोनों में से कोई एक अपने पुत्र छोड़ दें और कोई दूसरा ग्रहण कर ले तो वह अपविद्ध पुत्र कहलाता है.*13.

§7§ कानीन : कन्या अवस्था में पिता के घर उत्पन्न पुत्र कानीन पुत्र कहलाता है।*14. मनु के साथ साथ विष्णु, नारद तथा ब्रह्मपुराण कानीन पुत्र पर उस कन्या के साथ विवाह करने वाले का स्वामित्व स्वीकार करते हैं।

§8§ सहोढ़ : बिना जाने अथवा जानकर जब गर्भवती कन्या से विवाह किया जाता है। तो उस पुत्र को सहोढ पुत्र कहते हैं।*15.

---

*11. सदृशं तु प्रकुर्याद्यं गुणदोष विचक्षणम् ।
पुत्रं पुत्रगुणैर्युक्तं स विज्ञेयश्च कृत्रिमः ।। —— मनुस्मृति 9/169.

*12. उत्पद्यते गृहे यस्य न च ज्ञायेत कस्य सः ।
स गृहे गूढ़ उत्पन्नस्तस्य स्याद्यस्तल्पजः ।। —— मनुस्मृति 9/170.

*13. माता पितृभ्यामुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा ।
यं पुत्रं परिगृह्णीयादपविद्धः स उच्यते ।। —— मनुस्मृति 9/171.

*14. पितृवेश्मनि कन्या तु यं पुत्रं जनयेद्रहः ।
तं कानीनं वदेन्नाम्ना वोढुः कन्यासमुद्भवम् ।। —— मनुस्मृति 9/172.

*15. या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताज्ञातापि वा सती ।
वोढुः स गर्भो भवति सहोढ़ इति चोच्यते ।। —— मनुस्मृति 9/173.

वह पुत्र विवाहकरने वाले का होता है । सहोढ़ को पुत्रों की सूची में गूढ़ज के पश्चात् रखा गया है । क्यों कि गर्भवती कन्या के साथ विवाह लज्जास्पद माना गया है ।

§9§ क्रीतक : पुत्र बनाने के लिए जिस पुत्रको माता पिता से मूल्य देकर खरीद लिया जाता है + तो वह क्रीत या क्रीतक पुत्र कहलाता है ।[*16.]

§10§ पौनर्भव : जब स्त्री पति द्वारा छोड़े जाने पर अथवा विधवा होने पर अपनी इच्छा से पुनः अन्य पुरूष की भार्या बनकर जब पुत्र उत्पन्न करती है, तो वह पुनर्भव कहलाता है ।[*17.] विधवा विवाह को बुरा माने जाने से पुनर्भव पुत्र को औरस होते हुए भी बड़ी हीन स्थिति प्रदान की गई है ।

§11§ स्वयंदत्त : माता पिता से हीन §अनाथ§ या बिना कारण माता द्वारा छोड़ा हुआ जो पुत्र स्वयं जाकर, किसी का पुत्र बनता है । तो वह उस लेने वाले का स्वयंदत्त पुत्र होता है ।[*18.]

§12§ पारशव : जिस पुत्र को ब्राह्मण कामवश शूद्र से उत्पन्न करे उसको पारशव कहते है।[*19.] स्मृतिकारोंने ब्राह्मण के शूद्र के साथ विवाह की घोर निन्दा की है। इसी कारण पारशव या निषाद संज्ञा को 12 पुत्रों में बहुत नीचा स्थान दिया

---

*16. क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं मातापित्रोर्यमन्तिकात् ।
स क्रीतकः सुतस्तस्य सदृशोऽसदृशो पि वा ।। — मनुस्मृति 9/174.

*17. या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया ।
उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते ।। — 9/175. मनु.

*18. माता पितृविहीना यस्त्यक्तो वा स्यादकारणात् ।
आत्मानं स्पर्शयेद्यस्मै स्वयंदत्तस्तु स स्मृतः ।। —मनुस्मृति 9/177

*19. यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां कामादुत्पादयेत्सुतम् ।
स पारयन्नेव शूद्रास्तस्मात्पारशवः स्मृतः ।। — मनुस्मृति 9/178.

गया है। पारशव के सम्पत्ति के अधिकार को केवल कौटिल्य ने स्वीकार किया है। कौटिल्य के अनुसार पारशव को पैतृक सम्पत्ति का तीसरा हिस्सा प्राप्त होता है ।[*20.]

(क) पुत्री का पुत्र व दौहित्र : औरस पुत्र के अभाव में पिता वंश चलाने के लिए जब लड़की के लड़के को अपना पुत्र बना लेता था, तब वह पुत्रि का पुत्र कहलाता है। पिता अपनी भ्रातृहीन पुत्री का विवाह करने से पहले जामाता के साथ स्पष्ट रूप से यह समझौता कर लेता है कि इससे उत्पन्न सन्तान मेरी होगी। मनु की दृष्टि में पौत्र और दौहित्र में कोई अन्तर नहीं है।[*21.] मनु के साथ साथ — बौधायन कौटिल्य, याज्ञवल्क्य और महाभारत में उसे औरस के बाद दूसरा स्थान देते है। विष्णु, वशिष्ठ, गौतम, पुत्रों की सूची में इसे बहुत बाद में रखते हैं ।

इस प्रकार मनु ने पुत्रों के बारह प्रकारों के साथ साथ दौहित्र व पुत्रि का पुत्र के जन्म व उनके अधिकारों कीविशद विवेचना की है ।

(ख) माता : मनुस्मृति में माता को भी विशेष स्थान दिया गया है। मनु[*22.] के साथ साथ याज्ञवल्क्य[*23.] ने भी माता को गुरु और पिता से ऊँचा स्थान दिया है। इस प्रकार परिवार में माता का सदैव ही गौरव पूर्ण स्थान स्मृतिकार ने प्रतिपादित किया है।

(ग) पुत्री : वंश विस्तार की दृष्टि से पुत्र की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण होते हुए भी हिन्दू परिवार में कन्या को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जारहा है । इसका कारण इससे उत्पन्न होने वाली अनेक कठिनाईयाँ हैं । इसलिये उसके लिये योग्य वर ढूंढना, दहेज जुटाना, तथा उसके कौमार्य अवस्था में उसके शील का ध्यान रखना आदि प्रमुख है ।

इतना होते हुये भी कन्या माता पिता के अगाध प्रेम की पात्र रही है। मनु ने पुत्री को पुत्र के बराबर माना है।[24] नारद[25] और बृहस्पति[26] तो पुत्र के अभाव मे पुत्री को पिताकी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बताते हैं।

(ब) पति-पत्नी : आर्य जीवन में पति की प्रभुता लगातार बढ़ती गयी। कालान्तर में पति की प्रभुता लगातार बढ़ती गयी। सामान्यकारणों में पुरुष की शक्तिमत्ता और स्त्री में समर्पण की भावना मुख्य है। विशेष कारणों में पत्नी की आर्थिक पराधीनता, पति की प्रभुता, स्त्री के सम्बन्ध में हीन विचार व उसकी अशिक्षा उल्लेखनीय है। मनु ने स्त्रीको अपने पति की देवता तुल्य आराधना करने का मत दिया परन्तु पति को पत्नी का बध करने का अधिकार नहीं है। कौटिल्य के अनुसार पत्नीको अनुशासित करने के लिये प्रताड़ा जासकता है।[27] मनु ने भी पति को पत्नी के अपराध करने पर सामान्य रूप से दण्डित करने का निर्देश दिया है।[28] यहाँ यह द्रष्टव्य है कि मनु ने

---

*20. अर्थशास्त्र 12/30.

*21. पौत्रदौहित्रयोर्लोके विशेषो नोपपद्यते ।
दौहित्रोऽपि ह्यमुत्रैनं संतारयति पौत्रवत् ।। — 9/139.

*22. उपाध्यायाद्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता ।
सहस्त्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते ।। — मनुस्मृति 2/145.

*23. याज्ञवल्क्य स्मृति -/123.

*24. यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा ।
तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत् ।। —मनुस्मृति 9/130

*25. नारद दायभाग- 50.

*26. बृहस्पति स्मृति, अपरार्क द्वारा उद्धृत पृष्ठ - 746.

*27. कौटिल्य 3/2/10/11.

*28. भार्या पुत्रश्च दासश्च प्रेष्यो भ्राता च सोदरः ।
प्राप्तापराधास्ताड्याः स्यु रज्ज्वा वेणुदलेन वा ।।—मनुस्मृति 8/299.

पत्नी को कठोर दण्ड देना तो दूर उसके सिर पर प्रहार करना भी निषिद्ध बताया है।[29]
स्मृतिकारों ने पत्नी के कर्तव्यों का विस्तार से वर्णन किया है। इसमें पति सेवा और पतिव्रत को बहुत अधिक महत्व दिया है । साधारण कर्तव्यों में उसे गृहकार्यों में दक्ष होना चाहिये । उत्तर आचरण और संयमउसके लिये आवश्यक हैं । उसे सास ससुर की सेवा भीकरनी चाहिये। पति के विदेश यात्रा में घर से बाहर होने पर भार्या के आचरण का संक्षिप्त में उल्लेख करते हुये, याज्ञवल्क्य ने उसके लिये निम्नलिखित बातों का निषेध किया है।[30] खेल, शरीर का सजाना, समाजों और उत्सवों में जाना, हँसना तथा परपुरुष के घर जाना । मनु ने अपुत्र व्यक्ति की सम्पत्ति पर पिता[31] तथा माता[32] का अधिकार बताकर पत्नी की उपेक्षा की है।

(ड) कन्या : मनुस्मृति में कन्या के लिये उचित आचरण व उसके अधिकारों का विशद विवेचन हुआ है । आपस्तम्ब, बौधायन[33] और गौतम[34] कन्या को दायद के रूप में नहीं मानते । नारद ने भी पुत्र के अभाव में दुहिता को ही दायद बताया है।

जो कन्या स्वयंवर रचाये वह पिता-माता या भाई का दिया हुआ अलंकार न ले । यदि लेती है तो वह चोर समझी जायेगी[35] कन्या के विवाह के सम्बन्ध में मनु बतलाते हैं कि बारह वर्ष की कन्या का विवाह तीस वर्ष के पुरुष से तथा आठ वर्ष की कन्या विवाह चौबीस वर्ष के पुरुष से करना चाहिये ।[36]

---

*29. पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमाङ्गे कथंचन ।
अतोऽन्यथा तु प्रहरन्प्राप्तः स्याच्चौर किल्बिषम् ।। मनु० 8/300

*30. क्रीडां शरीर संस्कारसमाजोत्सवदर्शनम् ।
हास्यं परगृहे यानं त्यजेत् प्रोषितभर्तृका ।। — याज्ञ० 1/85.

*31. न भ्रातरो न पितरः —— —— —— रिक्थं ।। मनु० 9/185

*32. अनपत्यस्य पुत्रस्य माता—— —— —— हरेद्धनम् ।। मनु० 9/217

*33. बौ० धर्मसूत्र 1/5/114, 114

*34. गौतम धर्मसूत्र 18/21

*35. अलंकारं नाददीत पित्र्यं कन्या स्वयंवरा ।
मातृकं भ्रातृदत्तं वा स्तेना स्याद्यदि तं हरेत् ।। मनु० 9/92

: स्त्री व उसके साम्पत्तिक अधिकार : 23

****

वैदिक साहित्य में स्त्रियों को कुछ सीमा तक साम्पत्तिक अधिकार थे। पत्नी को "पारिणाय" अर्थात् घर की वस्तुओं की स्वामिनी कहा गया है। याज्ञवल्क्य ने संन्यास लेने का निश्चय करने पर एक पत्नी मैत्रेयी तथा दूसरी पत्नी कात्यायनी के साथ सम्पत्ति का संविभाग करने को कहा था। बौधायन ने स्त्री को दायकी अधिकारिणी नहीं माना है। बौधायन द्वारा स्त्रियों के अदायाद होने की घोषणा के बावजूद कुछ धर्म सूत्रों तथा स्मृतियों में माता, पत्नी, कन्यादि स्त्रियों को स्पष्ट रूप में दायद माना गया।

स्त्री-धन के स्वरूप का परिचय वैदिक युग में विवाह के समय कन्या को दिये जाने वाले दहेज से हुआ। गौतम[37] ने सर्वप्रथम स्त्री-धन का उल्लेख किया है। कौटिल्य[38] ने स्त्री धन के सम्बन्ध में सबसे पहले विस्तार पूर्वक व्यवस्था दी, और इसे दो प्रकार का बताया। (1) वृत्ति अर्थात् जीवन के साधन (भू-सम्पत्ति और सोना)। (2) अबन्ध्य या शरीर में बाँधे जाने वाले आभूषण। स्मृतिकारों के समय स्त्री धन के भेद बढ़ने लगे। मनु ने छः प्रकार के स्त्री-धनों की गणना की है।[39]

---

*36. त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः॥ मनुस्मृति 9/94.

*37. गौतम धर्म सूत्र 28/25.

*38. कौटिल्य - अर्थशास्त्र- 3/5

*39. अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि।
भ्रातमातृपितृ प्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम्॥ मनुस्मृति 9/194.

(1) अध्यग्नि : विवाह संस्कार के समय पवित्र अग्नि के सम्मुख दिया गया धन ।
==============

(2) अध्यावाहनिक : पतिगृह आते समय दिया गया धन ।

(3) प्रीतिदत्त : प्रीति कर्म में दिया गया धन ।

(4) भ्रातदत्त : भाई द्वारा दिया गया धन ।

(5) मातृदत्त : माता द्वारा दिया गया धन ।

(6) पितृदत्त : पिता द्वारा दिया गया धन ।

इसके अतिरिक्त मनु ने दो अन्यप्रकार के स्त्री धनों का उल्लेख किया है। अन्वाधेय या विवाह के बाद मिली भेंट तथा शौतुक । नारद,[*40.] विष्णु,[41.] और याज्ञवल्क्य[*42.] ने भी स्त्रीधनों का उल्लेख किया है । परन्तु विज्ञानेश्वर[*43.] और जीमूतवाहन[*44.] ने स्त्रीधन के स्वरूप को अपनी व्याख्याओं द्वारा क्रमशः विस्तृत और संकुचित बनाने का प्रयास कियाविज्ञानेश्वर की स्त्रीधन की व्याख्या का मुख्य आधार याज्ञवल्क्य के "आधिवेद निकाद्यं च स्त्री-धनं परिकीर्तितम्" में"आद्य"शब्द का प्रयोग है । मनु के अनुसार बिना पति की अनुमति के स्त्री अपनी सम्पत्ति का विक्रय नहीं कर सकती है ।[*45.]

---

*40. नारद, दायभाग जीमूतवाहन कृत - 48.

*41. विष्णु धर्म सूत्र 17/18.

*42. पितृमातृपति भ्रातृदत्त-मध्यग्न्युपागतम् ।
आधिवेद निकाद्यं च स्त्रीधनं परिकीर्तितम् ।। --याज्ञवल्क्य स्मृति-2/143

*42. अतीतायाम प्रजसि बान्धवास्त दवाप्नुयुः ।। याज्ञवल्क्य स्मृति 2/144.

*43. विज्ञानेश्वर कृत मिताक्षरा --याज्ञवल्क्य स्मृति-2/143.

*44. दायभाग जीमूतवाहन कृत पृ0 76.

*45. न निर्हारं स्त्रियः कुर्युः कुटुम्बाद् बहुमध्यागात् ।
स्वकादपि च वित्ताद्धि स्वस्य भर्तुरनाज्ञया ।। मनुस्मृति 9/199.

यद्यपि बाद में लेखकों ने स्वत्व की दृष्टि से स्त्रीधन को दो भागों विभाजित कर दिया है ।

गुरु-शिष्य :
****
स्मृतिकार मनु ने अपने समय के समाज में गुरु को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। क्यों कि वह अपरिपक्व बच्चों का भार अपने ऊपर लेकर उनको योग्य और उपयोगी नागरिक बनाता है। स्मृतिकार मनु के आधार पर वह माता पिता से भी अधिक आदर का पात्र है, क्यों कि माता - पिता से हमें केवल पार्थिव शरीर ही मिलता है,जबकि गुरु से बौद्धिक उन्नति का विकास होता है । इसलिये गुरु आध्यात्मिक पिता के रूप में वर्णित हुआ है।[*46.] शिष्य के गुणों को वर्णित करते हुए मनु कहते है कि शिष्य गुरु का आदर करने वाला होना चाहिये यदि वह शय्या पर बैठा हो तो उसे गुरु के आने पर झट पट उठकर प्रणाम करना चाहिये।[*47.] स्मृतिकारों ने गुरु को उच्चचरित्र वाला आदर्श व्यक्ति बताया है। गुरु नित्य आलस्य रहित होकर निर्दिष्ट समय पर शिष्य को "पढ़ो" कहकर पढ़ने के लिये आज्ञा दे और पढ़ाना समाप्त होने पर "बस करो" कहकर अध्यापन बंद करें।[*48.] वेद पढ़ने के समय नित्य आदि और अंत में प्रणव {ओंकार} का उच्चारण करें ।

- -

*46. वेद प्रदानादाचार्यं पितरं परिचक्षते ।
नह्यस्मिन्युज्यते कर्म किंचिदा मौञ्जिबन्धनात् ।। मनुस्मृति- 2/171.

*47. शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत् ।
शय्यासनस्थश्चैवैनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत् ।। मनुस्मृति 2/119

*48. अध्येष्यमाणं तु गुरुर्नित्यकालमतन्द्रितः ।
अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामोऽस्त्विति चारमेत् । मनुस्मृति 2/73

पाठ के पहले और पीछे ओंकार का उच्चारण न करने से पहले पढ़ा हुआ पाठ भूल जाता है। और आगे को पाठ याद नहीं होता ।[*48क.] मनु ने शिष्य के आचरण व गुरू के प्रति उसकी आदर भावना की दैनिक जीवन में आये व्यवहार की उद्धरण देते हुये विशद विवेचना की हैं ।[*49.]

वर्ण व्यवस्था : मनु[*50.] ने समाज संचालन हेतु चार वर्णों का उल्लेख किया है, किन्तु वर्ण संकरता के परिणाम स्वरूप उनसे सत्तावन जातियाँ बन गयी है। जिन चार वर्णों का मनु ने उल्लेख किया है, उनका कार्य निम्नलिखित है ।

: ब्राह्मण :

स्मृतिकार मनु ने वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण को सर्वोच्च स्थान पर रखा है।[*51.] मुख्य रूप से ब्राह्मण का कार्य वेद का पठन पाठन बताया है।[*52.] मनु ने ब्राह्मण के छः कार्य निर्धारित कियेहै ।[*53.] जो निम्नांकित है ।

1. वेद पढ़ना, 2. वेद पढ़ाना, 3. यज्ञ करना, 4. यज्ञ कराना, 5. दान देना, 6. दानलेना। आदि ।

---

*48 क. ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा ।
स्रवत्यनोंकृते पूर्वं पुरस्ताच्च विशीर्यति ।। मनुस्मृति 2/84.

*49. चोदितो गुरूणा नित्यमप्रचोदित एव वा ।
कुर्यादध्ययने यत्नमाचार्यस्य हितेषु च ।। मनुस्मृति 2/191
शरीरं चैव वाचं च बुद्धीन्द्रियमनांसि च ।
नियम्य प्राञ्जलिस्तिष्ठेद् वीक्षमाणो गुरोर्मुखम्।। मनुस्मृति 2/192
आसीनस्य स्थितः कुर्यादभिगच्छंस्तु तिष्ठतः ।
प्रत्युद्गम्य त्वाव्रजतः पश्चाद्धावंस्तु धावतः ।। मनुस्मृति 2/196

*50. मनुस्मृति 10/4-23.

: क्षत्रिय :

क्षत्रियों को मनु ने द्वितीय स्थान पर रखा है। जिसके कार्य संक्षेप में इस प्रकार है- जिसके कार्य में प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, विषयों में आसक्त न होना आदि ।[*54.]

: वैश्य :

मनु ने वैश्य वर्ण को, समाज की अर्थव्यवस्था को बनाये रखने के लिए, पशुओं का पालन, दान, यज्ञ और वेदाध्ययन, वाणिज्य, व्यवसाय, महाजनी और खेती का कार्य करना बताया है ।[*55.]

---

*51. मनु स्मृति - 1/93 तथा
वैशेष्यात्प्रकृतिश्रैष्ठ्यान्नियमस्य च धारणात् ।
संस्कारस्य विशेषाच्च वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः ।। —मनुस्मृति 10/3

*52. अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः ।
प्रब्रूयाद्ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति निश्चयः ।। मनुस्मृति 10/1

*53. अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ।। मनुस्मृति 1/88

*54. प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ।। मनुस्मृति 1/89

*55. पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ।। मनुस्मृति 1/90

: शूद्र :

मनु के अनुसार ईश्वर ने शूद्र को ईर्ष्यारहित होकर तीनों वर्णों की सेवा करने का आदेश दिया है।[56]

आश्रम व्यवस्था : वैदिक समाज के संचालक मनु, याज्ञवल्क्य आदिमनीषियों ने आश्रम व्यवस्था को संगठित करके, विश्व को सामाजिक विचारधारा को अद्वितीय देन दी है। आश्रम व्यवस्था द्वारा मानव को ऋणों (ऋषि ऋण, पितृऋण, देवऋण) से मुक्त करने का प्रयास किया गया है। तथापि वैदिक समाज की यह भी मान्यता थी कि इस आश्रम व्यवस्था के अनुसार जीवन व्यतीत करनेवाले को परमपद होता है।[57] मनु द्वारा विवेचित चारों आश्रमों का विवरण इस प्रकार है —

: ब्रह्म आश्रम :

ब्रह्मचर्य आश्रम में मानव का मुख्य उद्देश्य ज्ञान प्राप्त करना होता है। इस आश्रम का आरम्भ उपनयन संस्कार से होता है। मनु ने बालिकाओं के उपनयन संस्कार का निषेध बताया है। बालकों का उपनयन संस्कार आठ से ग्यारह वर्ष की आयु में, उनके वर्णानुसार धर्मशास्त्रों में विवेचित विधि द्वारा किया जाता है। जिससे बालक ब्रह्मचारी कहलाने लगता है।

प्रथम तीन वर्ण ही ब्रह्मचारी बन सकते है। इस आश्रम में बालक की कोमल एवं निर्मल अवस्था में सात्विक विचारों के अध्ययन द्वारा नैतिक गुणों को प्रोत्साहित किया जाता है। ताकि वह सामाजिक व्यवस्था में उपयोगी भूमिका का निर्वाह कर सके। ब्रह्मचारी

---

*56. एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ।। मनुस्मृति 1/91.

*57. सर्वेऽपि क्रमशस्त्वेते यथाशास्त्रं निषेविताः ।
यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमां गतिम् ।। मनुस्मृति 6/88.

ब्रह्मचारी गुरु के आश्रम में पच्चीस वर्ष तक कीआयु तक रहकर अध्ययन करता है। ब्रह्मचारी दो प्रकार के बताये गये है ।

(1) उपकुर्वाण — वे ब्रह्मचारी, जो विवाहावस्था (पच्चीस या छब्बीस वर्ष) तक गुरुकुल में रहकर अध्ययन करते है । *58.

(2) नैष्ठिक — वे ब्रह्मचारी, जो जीवन पर्यन्त ब्रह्मचारी रहकर अध्ययन करते है।

ब्रह्मचारी का खान पान, रहन सहन, पूर्ण रूपेण सात्त्विक बताया गयाहै। मनु ने बताया हैकि वह मृगचर्म या वल्कल पहने, भोर और साँझ को स्नानकरे। *59. गुरु के आश्रम में ब्रह्मचारी विभिन्न विद्यायें जैसे- धर्म, दर्शन, आयुर्वेद, धनुर्वेद, आदि का स्वाध्याय करते हुये मन को अपने वश में रखे, नित्य दान करे, तथा जीवों पर दया करे। *60. ब्रह्मचारी को गुरु के प्रति अत्यन्त तीव्र आदर भाव रखनाचाहिये क्यों कि स्मृतिकार ने गुरु को माता पिता से ऊँचा स्थान दिया है। *61. ब्रह्मचारी के आचरण के विषय में मनु नेबताया है कि वह गुरु के प्रतिसेवा भाव रखे तथापि गुरु की आज्ञा की अवहेलना तथा संभाषण कभी न करे। *62.

---

*58. षट्त्रिंशदाब्दिकचर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम् ।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा ।। मनुस्मृति 3/1

*59. वसीत चर्मचीरं वा सायं स्नायात्प्रगे तथा ।
जटाश्च बिभृयान्नित्यं श्मश्रुलोमनखानि च ।। मनुस्मृति 6/6

*60. स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः ।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ।। मनुस्मृति 6/8

*61. वेद प्रदानाचार्यं पितरं परिचक्षते ।
नह्यस्मिन्युज्यते कर्म किंचिदामौञ्जिबन्धनात् ।। मनु0 2/171

*62. चोदितो गुरुणा नित्यमप्रचोदित एव वा ।
कुर्यादध्ययने यत्नमाचार्यस्य हितेषु च ।। मनु0 2/191
प्रतिश्रवणसंभाषे शयानो न समाचरेत् ।
नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन्नो पराङ्मुखः ।। मनु0 2/199

: गृहस्थ आश्रम :

स्मृतिकारों ने प्रायः ग्रहस्थाश्रम को सर्वोच्च स्थान दिया है।[*63.] व्यक्ति के ग्रहस्थाश्रम का प्रारम्भ समावर्तन संस्कार से होताहै। और उसके पारिवारिक जीवन का आरम्भ विवाह संस्कार से। इसके पश्चात् उसकी शक्ति गृहस्थी में केन्द्रित हो जाती है। ऋण से मुक्ति एवं नवीन पापों को रोकने के लिए गृहस्थ पंचमहायज्ञ, (ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, नृयज्ञ एवं भूतयज्ञ) सम्पादित करताहै। इस प्रसंग में मनु ने निम्नलिखित पद्य को उद्धरित किया है-

"वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीतगृह्यं कर्म यथा विधि ।
पञ्चयज्ञ विधानञ्च पंक्तिं चान्वाहिकीं गृही ।। मनु0 3/67

: वानप्रस्थ आश्रम :

वानप्रस्थ आश्रम में मनु[*64.] के अनुसार व्यक्ति तब प्रवेशकरे, जब उसके शरीर परझुरियां दिखायी पड़ने लगे, उसके बाल पक जायें और उसके पुत्रों के पुत्र हों। इस आश्रम की समय अवधि राग-क्षय से है।[*65.] वानप्रस्थी व्यक्ति कोसभी सम्पत्ति, आभूषण स्त्री तथा

- -

*63. यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ।। मनुस्मृति 3/77

*63. यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम् ।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ।। मनुस्मृति 3/78

*64. गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ।। मनुस्मृति 6/2

*65. वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः ।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान्परिव्रजेत् ।। मनुस्मृति 6/33

पुत्रों के सुपुर्द करके वन में चला जाना चाहिये । [66] वानप्रस्थ होने पर वन में नीवॉर, शुद्ध अन्नो से अथवा शाक,फल,मूलों से महायज्ञ करे [67] तथापि आश्रम में पधारे अतिथियों को जल-फल कन्द मूल की भिक्षा दे । [68] अपने अध्ययन एवं अध्यापन से ज्ञान दीप को प्रज्जवलित रखे । वन में रहकर सर्दीगर्मी सहे, यथा साध्य उपकार करे मन कोअपने वश में रखे, दान करे, जीवों पर दया करे । [69]

: सन्यास :
****

सन्यासी,वानप्रस्थी के लिए बने हुए बहुत से नियमों एवं कर्तव्यों का ज्यों का त्यों पालन करते हैं। वानप्रस्थी ही अन्त में जब अपनी भावनाओं,कामनाओं पर विजय पा लेता है, तो सन्यासी हो जाता है। वानप्रस्थ आश्रम तथा सन्यास आश्रम में कुछ अन्तर भी है, जो यहां उल्लेखनीय है— वानप्रस्थ आश्रम में स्त्री को साथ रखा जा सकताहै, लेकिन सन्यास आश्रम में पत्नी को रखना वर्जित है । [70] इसीप्रकार वानप्रस्थ आश्रम की आरम्भिक

- -

*66. संत्यज्य ग्राम्यमहारं सर्वं चैव परिच्छदम् ।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ।। मनुस्मृति 6/3

*67. मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा ।
एतानेव महायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्वकम् ।। मनुस्मृति 6/5

*68. यद्भक्ष्यं स्यात्ततो दद्याद्बलिं भिक्षां च शक्तितः ।
अम्मूलफलभिक्षाभिरर्चयेदाश्रमागतान् ।। मनुस्मृति 6/7

*69. स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः ।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ।। मनुस्मृति 6/8

*70. एक एव चरेन्नित्यं सिद्ध्यर्थमसहायवान् ।
सिद्धिमेकस्य संपश्यन्न जहाति न हीयते ।। मनुस्मृति 6/42

अवस्था में अग्नि प्रज्वलित रखनी पड़ती है, श्राद्ध एवं अन्य यज्ञ करने पड़ते है, किन्तु संन्यासी को अग्नि त्याज्य है। वानप्रस्थ को तप करते हुए तपना पड़ता है किन्तु संन्यासी को इन्द्रियों को संयमित रखते हुए परमतत्व की प्राप्ति को ही अपना एकमात्र लक्ष्य रखना चाहिये ।[*71.] उसे सब कुछ परित्याग कर संन्यास ग्रहण करना चाहिये ।[*72.]

: संस्कार, आचार सम्बन्धी धार्मिक मान्यतायें :

मनुष्य के सामाजिक जीवन की सफलता के अभिप्रेरणार्थ, वर्णाश्रम व्यवस्था के साथ साथ संस्कार सम्बन्धी व्यवस्थायें भी मनुस्मृति का सामाजिक प्रतिपाद्य रही हैं । ये व्यक्ति के संगठित और अनुशासित आचरण करने के विभिन्न उपाय हैं, ताकि वह समाज में रहकर सुखमय जीवन व्यतीत कर सके । इनसे व्यक्ति और समाज दोनों का हित सम्पादित होता है। मनु के अनुसार संस्कारों का सांस्कृतिक प्रयोजन भी है। अनेक प्रकार के संस्कारों से शरीर की अपवित्रता दूर होती है, ऐसा विश्वास है । उत्पन्न होते समय सभी मनुष्य शूद्र होते है और उसका संस्कार व परिमार्जन आवश्यक है, ऐसी प्रचलित मान्यता है । उपनयन से वह द्विज कहलाता है, वह वेदों के अध्ययन से विप्र बन जाता है, ब्रह्म के साक्षात्कार से उसे ब्राह्मण की स्थिति प्राप्त होती है।[*73.] मनुस्मृति के सामाजिक, प्रतिपाद्य के रूप में संस्कारोंका विवरण देना यहाँ समीचीन होगा ।

---

*71. आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोमो जितेन्द्रियः ।
भिक्षाबलि परिश्रान्तः प्रव्रजन्प्रेत्य वर्धते ।। मनुस्मृति 6/34

*72. वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः ।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान्परिव्रजेत् ।। मनुस्मृति 6/33

*73. जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते ।। मनुस्मृति ।

: प्रागजन्म संस्कार :

गर्भाधान – प्राग् जन्म संस्कार के रूप में गर्भाधान पहला संस्कार है । जिस क्रिया द्वारा पुरुष, स्त्री के गर्भ में बीज स्थापित करता है, उसे गर्भाधान कहते है। जीवविज्ञान की दृष्टि से पशुओं में जो गर्भाधान होता है उससे यह भिन्न है । इसके पीछे कुछ नैतिक और सामाजिक तथ्य है। मनु के अनुसार स्त्री और पुरुष को चाहिए इसको सम्पन्न करने के लिये उपयुक्त समय और स्थान व वातावरण चुनें । यह तभी हो, जब पत्नी गर्भधारण के लिए शारीरिक रूप से समर्थ हो अर्थात् ऋतु काल में । पत्नी के ऋतु स्थान की चौथी रात्रि से सोलहवीं रात्रि तक का समय गर्भधारण के लिए उपयुक्त माना जाता है।[*74.] गर्भाधान के लिए केवल रात्रिकाल ही विहित है और दिन का समय निषिद्ध माना गया है।[*75.] तथापि रात्रियों में भी पिछली रात्रियाँ अधिक उपयुक्त मानी गई है। पिछली रात्रियों में धारण हुई सन्तति को अधिक भाग्यवान् और गुण सम्पन्न समझा जाता है। पुरुष सन्तति के सम और स्त्री सन्तति के लिए विषम रात्रि चुने जाने का उल्लेख है।[*76.] आठवीं, चौदहवीं, पन्द्रहवीं, एवं तीसरी रात्रि एवं सम्पूर्ण पर्व गर्भाधान के लिए वर्जित है ।[*77.]

---

*74. ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः ।
चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ।। —— मनुस्मृति 3/46

*75. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/76.

*76. युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्तवे स्त्रियम् ।। मनुस्मृति 3/42.

*77. तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या ।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ।। मनुस्मृति 3/47.

पुंसवन : गर्भधारण का निश्चय हो जाने पर पुंसवन संस्कार होता है। पुंसवन संस्कार
****
मुख्यतः पुत्र की प्राप्ति हेतु किया जाता है। इसके अनुष्ठान का समय गर्भ के द्वितीय माह से अष्टम माह तक माना जाता है। यह संस्कार तब किया जाताहै, जब चन्द्रमा किसी पुरुष नक्षत्र में हो । गर्भिणी स्त्री के घ्राणेन्द्रिय के दाहिने रन्ध्र में वट वृक्ष का रस गर्भपात के निरोध तथा पुरुषसन्तति के जन्म के उद्देश्य से डाला जाता है।

सीमन्तोन्नयन : प्राग्जन्म संस्कारों में सीमान्तोन्नयन संस्कार तीसरे क्रम का संस्कारहै।
****
इसका समय व व्याख्याकारों ने भिन्न भिन्न माना है। जो गर्भावस्था के तीसरे मास से आठवें मास तक रखते हैं । स्त्री पर गर्भावस्था के दौरान, अमंगलकारी शक्तियों के आक्रमण के डर को रोकने के लिए इसकी आवश्यकता रहती है। अतः क्लान्त गर्भिणी को खुश रखने व ईश्वर से उसके मंगलमय भविष्य की प्रार्थना इस संस्कार के अन्तर्गत की जाती हैं ।

: बाल्यावस्था के संस्कार :
****

जातकर्म : बाल्यावस्था के संस्कार जातकर्म संस्कार से आरम्भ होते है। प्रसव के लिए घर
****
में उपयुक्त कमरा चुन लिया जाता है, जिसे "सूतिका भवन" कहते है ।बच्चे के जन्म के पश्चात् संस्कार की तैयारी की जाती है । पिता, पुत्र का मुख देखता है । तथा तर्जनी अंगुली और एक शुद्ध शलाका (जो स्वर्ण निर्मित हो सकती है) से शिशु को मधु और घृत अथवा केवल घृत चटाता हैं ।*77.

- -

*77. प्राङ्‌नाभिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते ।
मन्त्रवत्प्राशनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम् ।। मनुस्मृति 2/29.

नामकरण : स्मृतिकारों ने व्यक्ति के व्यक्तिगत नामों के महत्व को समझा और नामकरण
****
की प्रथा को धार्मिक संस्कार के रूप में परिणित कर दिया। शिशु के नाम नाम का चुनाव प्रायः धार्मिक भावनाओं से सम्बन्धित रहताहै, यद्यपि साथ में अन्य कारण भी है। मनु के अनुसार ब्राह्मण का नाम मंगल सूचक, क्षत्रियका नाम बलसूचक, वैश्य का नाम धनसूचक तथा शूद्र का नाम जुगुप्सित सूचक अथवा कुत्सा सूचक रखना चाहिये।*78. जातक के नामकरण के समय के विषय में मनु ने बताया है --

"नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वास्य कारयेत् ।
पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ।। मनुस्मृति- 2/30

स्मृतिकार मनु ने बालिकाओं के नामकरण के लिए सुखवाचक, सरल, सुन्दर, स्पष्ट, अर्थयुक्त, आशीर्वाद सूचक और जिसका अन्तिम अक्षर दीर्घ हो, रखने का सुझाव प्रतिपादित कियाहै।*79.

- -

*78. मंगल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम् ।
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम् ।। मनुस्मृति 2/31.
शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम् ।
वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम् ।। मनुस्मृति 2/32.

*79. स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरं विस्पष्टार्थं मनोहरम् ।
मङ्गल्यम् दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत् ।। मनुस्मृति 2/33.

निष्क्रमण : इस संस्कार द्वारा बालक को पहली बार घर से निकाला जाता है । ये
****
उसके उन्नतिशील जीवन में एक महत्वपूर्ण कदम है। जिसे बहुत उल्लास के साथ मनाया जाता है । मनु के अनुसार इसका सम्पादन काल जन्मोपरान्त चौथामास होता है ।*80.

अन्नप्राशन : ठोस भोजन या अन्न खिलाना शिशु के जीवन का एक महत्वपूर्ण कदम है।
****
स्मृतिकार मनुने इसकोभी संस्कार के माध्यम से धार्मिक ग्राह्य स्वरूप दिया है। प्रायः यह संस्कार शिशु के जन्म के पश्चात् छठे मास में किया जाताहै।*81.

चूड़ाकरण : चूड़ाकरण संस्कार के द्वारा शिशु के सिर के केश मुण्डवा दिये जाते है,
****
तथापि एक मात्र शिखा रखी जाती है। स्मृतिकार मनु ने इसका समय शिशु के जन्म केपश्चात् प्रथम या तृतीय वर्ष में किया जाता है।*82.

कर्णवेधन : आरम्भ में कर्ण वेधन अलंकरण के लिए प्रचलित, हुआ, किन्तु बाद में इसे
****
स्मृतिकारों ने धार्मिक संस्कार के रूप में मान्यता दी यह संस्कार जन्म के तृतीय अथवा पाँचवे वर्ष में किया जाता है।

: शैक्षणिक संस्कार :
****

विद्यारम्भ : जब बालक का मानसिक विकास शिक्षाग्रहण करने केस्तर तक हो जाता
****
है, तो विद्या आरम्भ भी संस्कार के साथ किया जाता है। उसे

- -

*80. चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात् ।
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्वेष्टं मङ्गलं कले ।। मनुस्मृति 2/34.

*81. वही— मनुस्मृति 2/34.

*82. चूड़ाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः ।
प्रथमेऽब्दे तृतीय वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात् ।। मनुस्मृति 2/25.

अक्षर सिखाये जाते है, जिसे अक्षरारम्भ, अक्षरस्वीरण, अक्षर लेखन, आदि नामों से स्मृतिकारों ने उल्लिखित किया है ।

उपनयन :
=========
कैशोर्य के पदार्पण के अवसर पर उपनयन संस्कार का आयोजन किया जाता है। सांस्कृतिक दृष्टि से इस संस्कार का बड़ामहत्व है । बिना उपनयन संस्कार के व्यक्ति शूद्र होता है। उपनीति होकर वह द्विज कहलाता है। तीनों उच्च वर्णों के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है । मनु ने इसके महत्व का वर्णन, सांस्कृतिक उत्कर्ष की पराकाष्ठा तक किया, और इसे द्वितीय जन्म के रूप में परिभाषित किया ।[*83.] बालक के उपनयन की आयु के बारे में साधारण नियम यह है कि ब्राह्मण बालक का उपनयन जन्म के आठवें वर्ष में, क्षत्रिय बालक का ग्यारहवे वर्ष में, तथा वैश्य का बारहवें वर्ष में करना चाहिये ।[*84.]

वेदारम्भ :
==========
शिक्षा में वैदिक अध्ययन को बनाये रखने के लिए वेदारम्भ संस्कार स्वतंत्र रूप से आरम्भ किया गया । पहले यह उपनयन संस्कार का अंग माना जाता था।

केशान्त :
==========
इस संस्कार के द्वारा सोलह वर्ष की आयु में विद्यार्थी की दाढ़ी-मूछों का पहली बार क्षौरकर्म होता है। यह यौवन पदार्पण का सूचक है,

- -

*83. मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धने ।
तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात् ।। मनुस्मृति 2/169.

*84. गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः।। मनु0 2/36.

तथा यौवनपूर्ण प्रवृत्तियों के प्रति सतर्क कर दिया जाता है। इसे गोदान भी कहते है, क्यों कि इस अवसर पर आचार्य को गौ का दान दिया जाताहै। मनु के अनुसार, ब्राह्मण काकेशान्त सोलहवे वर्ष में, क्षत्रिय का बाइसवे वर्ष में तथा वैश्य का चौबीसवे वर्ष में होना चाहिए ।*85.

समावर्तन : यह संस्कार ब्रह्मचर्य के समाप्त होने पर किया जाता है तथा विद्यार्थी
****
जीवनकी समाप्ति का सूचक है। समावर्तन का आशय है - वेदाध्ययन के अनन्तर गुरुकुल से घर की ओर प्रत्यावर्तन । इसे स्नान भी कहते है, क्यों कि यह संस्कार का महत्वपूर्ण अंग है, तथा ब्रह्मचारी स्नातक कहलाने लगता है । प्रायः यह संस्कार 24वर्ष की आयु में किया जाता है।

विवाह : यह हिन्दू संस्कारों में आज भी अपने वैदिक स्वरूप में विद्यमान है,तथापि
****
इसका महत्वपूर्ण स्थान है। विवाह समस्त गृह्यज्ञों, संस्कारों का उद्भव केन्द्र है, साधारण परिस्थितियों में समाज प्रत्येक व्यक्ति से विवाह कर गृहस्थ जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा करता है । बालिकाओं के जीवन में विवाह संस्कार का महत्व पूर्ण स्थान है। क्यों कि मनु के अनुसार उनके लिए यज्ञोपवीत विवाह विधि ही है तथापि पतिगृह गुरुकुल सा ही है ।*86. यहाँ यहभी उल्लेखनीय है कि बालिकाओं के समस्त संस्कार मन्त्रविहीन होते है ।*87.

---

*85. केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते ।
राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः ।। मनुस्मृति 2/65.

*86. वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकःस्मृतः ।
पतिसेवा गुरौ वासो, गृहार्थो ऽग्निपरिक्रमा ।। मनुस्मृति 2/67.

*87 अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः ।
संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम् ।। मनुस्मृति 2/66.

:: जीवनोपरान्त संस्कार :: 33

अन्त्येष्टि संस्कार : नश्वर संसार में आर्य जीवन का अंतिम संस्कार अन्त्येष्टि है। इसके द्वारा व्यक्ति का परलोक सुधारने का प्रयास किया जाता है । मृत्यु के आगमन तथा दाहक्रिया से पहले अनेक क्रियायें करनी पड़ती है।मृत्यु के आगमन पर वह अपने भावी कल्याण के लिए ब्राह्मणों और गरीबों को दान देता है।

आचरण सम्बन्धी जिन मान्यताओं का प्रतिपादन मनु ने किया है वे समाज के सद् संचालन में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। सद् आचरण के महत्त्व को सम्पादित करते हुए मनु कहते है कि सद् आचरण से दीर्घ आयु मिलती है, अच्छी सन्तानें होती है,आचार से अक्षय धन लाभ होता है, तथापि आचार से अशुभ लक्षणों का नाश होता है।*88. मनु ने मानव जीवन में सदाचार की महत्ता को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया, वे यहाँ तक कहते है कि सब लक्षणों से हीन होने पर भी जो पुरूष सदाचारी और श्रद्धालु होताहै, तथा दूसरों के दोष नही कहा करता वह सौ वर्ष तक जीता है।*89. इतना ही नहीं वे सदाचार को धर्म का मूल भी मानते है ।*90. इस कारण आत्मवान् द्विजों को इस आचरण में सदा यत्नवान् रहने का सन्देश दिया है।*91. इस कारण इतना ही नहीं

---

*88. आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ।। मनुस्मृति 4/156.

*89. सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः ।
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ।। मनुस्मृति 4/158.

*90. श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यङ्निबद्धं स्वेषु कर्मसु ।
धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतन्द्रितः ।। मनुस्मृति 4/155.

*91. आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च ।
तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः।। मनुस्मृति 1/108.

यह भी बताया है कि आचार से हीन ब्राह्मण, वेद का फल नहीं पाता है तथापिजो आचार से युक्त है, वह सम्पूर्ण फल का भागी है।[*92.] मनु केअनुसार आचरण ही सब तपस्याओं का मूल है ।[*93.] आचरण का इतना प्रभावी स्वरूप देखकर सहज ही यह जिज्ञासा होती है कि आखिर आचरण के अन्तर्गत मनु ने किन तथ्यों या विचारों को शामिल किया है ?अतः यहां उन तथ्यों का विवरण देना नितान्त समीचीन होगा जिन्हें सदाचार के अन्तर्गत मनु ने शामिल किया है।

सत्य : अनादि काल से सत्य, अपने शाश्वत स्वरूप में समाज संचालन में सहयोग करता चलाआ रहाहै । समाज और सदाचार दोनों के लिए सत्य अपेक्षित ही नहीं, अपितु अनिवार्य भी है । मनु ने झूठ का निषेध करते हुए, सत्य के महत्व को प्रतिपादित किया है।[*94.]

संयम : सदाचार और संयम, आज के परिप्रेक्ष्य में एक दूसरे के पर्याय कहे जा सकते है। मनु स्मृति में व्यक्ति की प्रारम्भिक अवस्था अर्थात् ब्रह्मचारी को मधु, मांस, सुगन्ध, माला, रस, स्त्री, सहवास, सबप्रकार के आसवादि (सिरके) और प्राणियों की हिंसा,

---

*92. आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते ।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफल भाग्भवेत् ।। मनुस्मृति 1/109.

*93. एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम् ।
सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम् ।। मनुस्मृति 1/110.

*94. द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथानृतम् ।
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च ।। मनुस्मृति 2/179.

ये सब त्यागने का सुझाव दिया है।[95] संगीत, शारीरिक आकर्षण तथा काम, क्रोध लोभ से भी बचने को भी संयम के अन्तर्गत शामिल किया है।[96] जीवनदायिनी शक्ति, शारीरिक संयम भी मनु के सदाचार में शामिल है।[97] यदि भूल से उसका शारीरिक संयम टूटता है, तो उसे प्रार्थना करने का सुझाव है।[98]

अहिंसा : अहिंसा, मनुस्मृति हीनहीं, अपितु समस्त प्राचीनभारतीय वाङ्मय का
****
मुख्य प्रतिपाद्य रहा है। यहीं प्राचीन भारतीय संस्कृति की अनुपम विशेषता रही है। मनु ने अहिंसा के पालन में अत्यन्त गहरायी से चिन्तन किया है। वे यहाँ तक कहते है कि शिष्यों के कल्याण के लिए जो अनुशासन करनाहो, वह भी अहिंसा युक्त हो।[99] दूसरी ओर ब्रह्मचारी को भी जीवों की हिंसा न करने कासंदेश दिया है।[100]

---

*95. वर्जयेन्मधुमांसं च गन्धं माल्यं रसान्स्त्रियः ।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम् ।। मनुस्मृति 2/177.

*96. अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्र – धारणम् ।
कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनम् गीतवादनम् ।। मनुस्मृति 2/178.
तथा वही मनुस्मृति 2/179.

*97. एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित्।
कामाद्धि स्कन्दयन्रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः ।। मनुस्मृति2/180.

*98. स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः ।
स्नात्वार्कमर्चयित्वा त्रिः पुनर्मामित्यृचं जपेत् ।। मनुस्मृति 2/181.

*99. अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोनुशासनम् ।
वाक्चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता ।। मनुस्मृति 2/159.

*100. प्राणिनां चैवहिंसनम् ।। मनुस्मृति 2/177 ~~तथा मनुस्मृति~~ वही 4/162.

अकामता : स्मृतिकार मनु ने सदाचार पालन हेतु अकामता पर बल दिया है। इसके
****
संरक्षण हेतु विभिन्न उपाय बताये हैं। तथापि कुशिष्टाचारों का निषेध किया है।[*101.] इतना ही नहीं मनु सजग करते हुए बताते हैकि कामाकर्षण स्त्रियों का स्वभाव है। तथा ज्ञानी पुरुष, स्त्रियों के सम्बन्ध में सावधान रहते है।[*102.] कामताको कुमार्ग बताते हुए स्त्री को, पुरुष को इस ओर ले जाने में समर्थ बतायाहै।[*103.] पारिवारिक व सामाजिक सम्बन्धों व शिष्टाचारों में सतर्क रहने को बताया है। युवाबहन बेटी के साथ एकान्त में एक खाट पर बैठने काभी निषेध किया है।[*104.]

आहार - विहार : यह सर्वमान्य तथ्य है कि व्यक्ति जैसा भोज्य पदार्थ ग्रहण करता है,
****
अर्थात् उसका पर्यावरण उसकेआचरण का नियामक होताहै। मनु ने व्यक्ति के खान-पान तथा घूमने फिरने का भी विवेचन किया है। मनु के अनुसार यदि ब्रह्मचारी सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सोता है,तो वह महापाप का भागीदार होता है।[*105.] इच्छावश सोने पर प्रायश्चित स्वरूप दिन भर उपवास करके गायत्री मन्त्र जपे,

- -

*101. गुरुपत्नी तु युवतिर्नाभिवाद्येह पादयोः ।
पूर्ण विंशतिवर्षेण गुणदोषौ विजानता ॥ मनुस्मृति 2/212.

*102. स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषणम् ।
अतोऽर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः ॥ मनुस्मृति 2/213.

*103. अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः ।
प्रमदा ह्युत्पथं नेतुं कामक्रोधवशानुगम् ॥ मनुस्मृति 2/14.

*104. मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ मनुस्मृति 2/215.

*105. सूर्येण ह्यभिनिर्मुक्तः शयानोऽभ्युदितश्च यः ।
प्रायश्चित्तमकुर्वाणो युक्तः स्यान्महतैनसा ॥ मनुस्मृति 2/221.

उसके न जानने पर उपवास रखे । *106. उसके स्वरूप के सन्दर्भ में बताया है कि ब्रह्मचारी सिर मुड़ाये अथवा जटा रखाये हो अथवा शिखा की ही जटा बनाये हो पर उसके गाँव में रहते हुए कभी सूर्योदय व सूर्यास्त नहीं होनाचाहिये । *107.

दुराचार की निन्दा : दुराचरण की निन्दा, मनुस्मृति का सामाजिक प्रतिपाद्य
****
विषय रहा है। मनु ने दुराचरण के परिणाम रेखांकित किये हैं। ---

> दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
> दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ।। मनुस्मृति 4/157.

अर्थात् दुराचारी पुरुष संसार में निन्दित, सर्वदा दुःखी, रोगी और अल्पायु होताहै।

****
:: विविध सामाजिक अपराध ::
****

किसी भी समाज में, किसी व्यक्ति के द्वारा, उस समाज विशेष की परम्पराओं और रीतियों के विरुद्ध किया गया कोई ऐसा कृत्य जिससे उस समाज को हानिहो, सामाजिक अपराध की श्रेणी में आता है। प्रारम्भ से ही समाज को इस बात का पूर्ण अधिकार रहा है कि यदि कोईमनुष्य विधि निहित नियमों के विरुद्ध कार्य करे तो उसे दण्ड दिया जाये, ताकि पुनः उस अपराध की पुनरावृत्ति न हो। दण्ड के पीछे यह

- -

*106. तं चेदभ्युदियात्सूर्यः शयानं कामचारतः ।
निम्लोचेद्वाप्यविज्ञानाज्जपन्नुपवसेद्दिनम् ।। मनुस्मृति 2/220.

*107. मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथवा स्याच्छिखाजटः ।
नैनं ग्रामेऽभिनिम्लोचेत्सूर्यो नाभ्युदियात्क्वचित् ।। मनुस्मृति 2/219.

भावना थी कि अन्य व्यक्ति उस कृत्य को न करे । इस प्रकार के कृत्यों को सामान्यतः दो रूप में विभाजित करके, विवेचना कर सकते है। यथा (1) व्यक्ति के विरुद्ध (2) राज्य और समाज के विरुद्ध । मनु ने इन्हें महापातक और उपपातक के रूप में परिभाषित किया है। प्रायः महापातक पाँच है — ब्रह्महत्या, मद्यपान, चोरी, गुरुपत्नी गमन, तथा इनके साथ रहने वाला व्यक्ति भी महापातक कहलाता है।*108. मनुस्मृति में मुख्यतः जिन अपराधों की विवेचना हुई है, वे इस प्रकार है —

ब्रह्म, गुरु आदि की हत्या — मनु ने सामाजिक अपराधों एवं तत्सम्बन्धित दण्डों का विवेचन वर्ण व्यवस्था को दृष्टि में रखकर किया है। ब्रह्म हत्या, महापाप के रूप में वर्णित हुई है।*109. चूँकि ब्राह्मण समाज के धार्मिक, आध्यात्मिक तथा सात्विक समुत्कर्ष हेतु अपने सदाचार के द्वारा त्यागपूर्ण सरल आदर्शमय जीवन का उदाहरण प्रस्तुत करके समाज के उचित दिशा निर्देशक का कार्य करता था। अतः स्मृतिकार मनु ने ब्राह्मण की महत्ता को ध्यान में रखते हुए ठीक ही ब्रह्महत्या को महापाप की श्रेणी में रखा है। इसके अतिरिक्त अपनी बड़ाई के लिए झूठ बोलना, राजा से किसी की ऐसी चुगली करना, कि उसके प्राणों पर ही आ पड़े, गुरु की झूठी निन्दा करना आदि अन्य अपराध भी मनु ने ब्रह्म हत्या के समान माने हैं ।*110.

सुरापान : मनु ने सुरापान को भी पाँच महापातकों के अन्तर्गत वर्णित किया है।*111 स्मृतिकार मनु की भाँति गौतम ने भी मद्यपान को सामाजिक अपराधों की श्रेणी में रखा है। तथा महापातक की श्रेणी में परिगणित किया है।*112. सुरापान

---

*108. ब्रह्महत्या, सुरापान-स्तेय गुर्वङ्गनागमः ।
महान्तिपातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ।। मनुस्मृति 11/54

*109. वही. तथा मनुस्मृति 9/235.

स्वयं में कोई अपराधी नही है किन्तु उसके दुष्परिणामों से समाज प्रभावित होता है तथा व्यक्ति को शारीरिक एवं मानसिक रूप से विकृत कर देता है। मनुष्य इतना विवेक शून्य हो जाता है कि उसे व्यसनपूर्ति के सिवाय अन्य सब कुछ निरर्थक प्रतीत होता है। व्यसन की पूर्ति तथा धन की आवश्यकता उसे अपराध की ओर प्रेरित करती है। यथार्थतः व्यसनी व्यक्ति जान बूझकर अपराधी बनने की इच्छा नही रखता है, परन्तु वह उक्त परिस्थितियों के कारण अनजाने में ही अपराधिक जीवन में प्रवेश कर जाता है। व्यसनी बन जाने के कारणों को स्पष्ट करते हुए "लिण्डस्मिथ" महोदय का कथन है कि -"मनुष्य में इन मधद्रव्यों के सेवन की आदत अनेक कारणों से बढ़ जाती है जो आगे चलकर व्यसन का रूप धारण कर लेती है। अनेक व्यक्ति इन मादक पदार्थों का सेवन अनभिज्ञता के कारण आरम्भ करते है, जबकि कुछ व्यक्ति इसका सेवन कौतूहल वश आरम्भ करते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ व्यक्तियों को आरम्भ में इन द्रव्य पदार्थों को औषधि रूप में लेना आवश्यक होता है जो दीर्घ समय तक सेवनोपरान्त आदत या व्यसन का रूप धारण करलेता है।*113. भावुक व्यक्ति प्रायः अपने जीवन की दुःखद घटनाओं को भुलाने के लिए भी इसका

---

*110. अन्ततं च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम् ।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया ।। मनुस्मृति 11/55.

*111. ब्रह्महा च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ।
ऐते सर्वे पृथक्ज्ञेया महापातकिनो नराः ।। मनुस्मृति 9/235.

*111. तथा
ब्रह्महत्या सुरापान स्तेय गुर्वङ्गनागमः ।
महान्तिपातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैःसह।। मनुस्मृति 11/54.

*112. गौतम धर्म सूत्र 3/3/1.

*113. लिण्डस्मिथ, ए०आर० ओपिएट एडिक्शन, 1947.

सेवन करने लगते है। धार्मिक एवं सामाजिक उत्सवों में मदिरापान करना सम्भ्रान्त रीति का परिचायक समझा जाताहै। मनु ने भी इस तथ्य का संकेत किया है। मनु के अनुसार जो स्त्री मना करने पर विवाहादि उत्सवों में नाचे, गाये तथामद्यपान करे, उसे अपराधिनी माना जाता है।[*114] संक्षेप में मद्यपान ,प्राचीन काल से निन्दनीय अपराध के रूप में, वैयक्तिक, सामाजिक ,पारिवारिक एवं राष्ट्रीय विघटन का द्योतक है। आज भी मद्यपान भारत में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में एक अपराध के रूप में परिभाषित होता है । अतः मनु जैसे स्मृतिकारों की मद्यपान अपराध विषयक अवधारणा सर्वथा सार्थक सिद्ध होती हैं।

चोरी एवं डकैती : चोरी एवं डकैती प्राचीन वैदिक समाज में भी प्रचलित थे । मनु ने चोरों से प्रजा की रक्षा करना राजा का मुख्य कर्तव्य माना है।[*115] मनु चोरी और डकैती को स्तेय एवं साहस के रूप में परिभाषित करते है। उनके अनुसार स्तेय एवं साहस दो भिन्न अपराध है। स्वामी के सामने बलात् किसी वस्तु का अपहरण करना साहस (डकैती) और स्वामी के परोक्ष में (नहीं रहने पर चुपके से) किसी वस्तु का अपहरण करके भाग जाना (या अपहरण के बाद अस्वीकार करना) स्तेय कहलाता है।[*116] स्तेय शब्द ऋग्वेद में भी आया है।[*117] चोर के लिये तायु[*118] एवं तस्कर[*119] शब्दों का

---

*114. प्रतिषिद्धापि चेधा तु मद्यमभ्युदयेष्वपि ।
प्रेक्षासमाजं गच्छेद्वा सा दण्ड्या कृष्णलानि षट् ।। मनुस्मृति 9/84.

*115. परमं यत्नमातिष्ठेत्स्तेनानां निग्रहे नृपः ।
स्तेनानां निग्रहादस्य यशो राष्ट्रं च वर्धते ।। मनुस्मृति 8/302-309.

*116. स्यात्साहसं त्वन्वयवत्प्रसभं कर्म यत्कृतम् ।
निरन्वयं भवेत्स्तेयं हृत्वापव्ययते च यद् ।। मनुस्मृति 8/332.

*117. ऋग्वेद, 8/67/14, 6/18/7, 7/55/3

*118. वही. 4/38/5.

*119. वही. 10/4/6, 6/28/3, 8/29./6.

प्रयोग हुआ है । निरूक्त में तायु शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है, तायु चोर वाचक है, चोर में पाप इकट्ठा होकर रहता है। अतः स्तेन कहलाता है।[*120.] ऋग्वेद में आये इन शब्दों के विषय में काणे महोदय का विचार है - "यहाँ स्तेन का अर्थ वह चोर जो सम्पत्ति को गुप्त रूप से उठा ले जाता है तथा तस्कर वह है जो खुले आम चोरी करता है।[*121.] चोरी की गयी वस्तु के मूल्य के आधार पर स्तेय के तीन भेद किये गये है, क्षुद्र, मध्यम और उत्तम। नारद ने इन वस्तुओं का स्पष्ट भेद किया है।[*122.] याज्ञवल्क्य भी छोटी-मध्यम चोरी को मूल्य के अनुसार निश्चित करते है।[*123.] स्मृतिकार मनु ने चोरों के दो प्रकारों का उल्लेख किया है। प्रकाश तस्कर एवं परोक्ष तस्कर।[*124.] इन चोरों को परिभाषित करते हुए मनु कहते है कि उन दो प्रकार के चोरों में से मूल्य तथा तौल या नाप में लोगों के देखते देखते सोना, कपड़ा, आदि बेचते समय ठगने वाले प्रथम (प्रत्यक्ष) चोर है तथा सेंध लगाकर या जंगल आदि में छिपकर रहते हुए दूसरों के धन को चुराने वाले द्वितीय (परोक्ष) चोर है ।[*125.] इसी प्रकार घूसखोर, डराकर धन लेने वाले ठग,

---

*120. निरूक्त 4/4.

*121. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 3 पृष्ठ 24.

*122. नारद स्मृति 14/13-6.

*123. क्षुद्र-मध्यमहाद्रव्यहरणे सारतोदमः ।
देशकालवयः शक्ति संचिन्त्यं दण्डकर्मणि ।। याज्ञवल्क्य स्मृति 2/275.

*124. द्विविधांस्तस्करान्विद्यात्परद्रव्यापहारकान् ।
प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्च चारचक्षुर्महीपतिः ।। मनुस्मृति 9/256.

*125. प्रकाशवञ्चकास्तेषां नानापण्योपजीविनः ।
प्रच्छन्नवञ्चकास्त्वेते ये स्तेनाटविकादयः ।। मनुस्मृति 9/257.

जुआरी, धन या पुत्रादि के लाभ होने की असत्य बातें कहकर लोगों से धन लेने वाले भद्रवेश धारण करके अपने दूषित कुकर्म को छिपाकर लोगों से धन लेने वाले, हस्तरेखा आदि को देखकर नहीं जानते हुए भी फल को बताकर धन लेने वाले, अशिक्षित हाथीवान, अशिक्षित चिकित्सक, चित्रकार, शिल्पी, परद्रव्यापहरण में चतुर वेश्या, इन्हें तथा इस प्रकार के अन्य लोगों को तथा ब्राह्मणादि का वेश धारण कर गुप्त रूप से जनता को ठगने वाले शूद्र आदि को प्रत्यक्ष कण्टक (प्रकट रूप से चोर) जानना चाहिए।*126.

जुआ एवं बाजी लगाना : जुआ एवं बाजी लगाना प्राचीन समाज के प्रत्येक वर्ग के मनोरंजन का अत्यन्त लोकप्रिय साधन था, किन्तु इसके दुष्परिणामों को देखते हुए इससे मिलने वाला आनन्द कुछ भी नहीं था। ऋग्वेद में भी एक हारे हुए जुआरी को विलाप करते हुए दिखाया गया है।*127. अथर्ववेद में जुआ के पासों एवं ग्लह का उल्लेख आया है।*128. वैदिक वाङ्मय में जुआ एवं बाजी लगाने के लिए द्यूत एवं समाह्वय शब्दों का उल्लेख हुआ है। द्यूत एवं समाह्वय में भेद करते हुए मनु लिखते है कि अप्राणि जैसे अक्ष, शलाका आदि के द्वारा द्यूत एवं प्राणी कुक्कुट, मेष आदि से बलपूर्वक खेले जाने को समाह्वय कहते हैं।*129. पूर्व काल में यह द्यूत बड़ा वैमनस्य उत्पन्न करने वाला देखा गया है। इस कारण बुद्धिमान् व्यक्ति को मनबहील के लिए भी द्यूत नहीं खेलना चाहिये।*130. कात्यायन कहते है कि यदि जुआ खेला, तो प्रकट रूप में द्वार पर तोरण

---

*126. मनुस्मृति 9/257--260.

*127. ऋग्वेद 10/34.

*128. अथर्ववेद, 4/16/5, 4/38.

*129. अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते ।
प्राणिभिः क्रियते यस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः ।। मनुस्मृति-9/223.

*130. महाभारत पर्व, उद्योग पर्व, 37/19. तथा मनुस्मृति 9/227.
द्यूतमेतत्पुरा कल्पे दृष्टं वैरकरं महत् ।
तस्माद्द्यूतं न सेवेत् हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ।।

बांधा जाय तथा उनसे कर लिया जाय ।[*131.] याज्ञवल्क्य का विचार है कि द्यूत राज्य कर्मचारियों की देखरेख में खेला जाना चाहिए — क्यों कि इससे चोरों को पकड़ने में सहायता मिलती हैं।[*132.] आपस्तम्ब ने इसकी बुराइयों को स्वीकार करते हुए इसे राज्य के संरक्षण में लाने को कहा है।[*133.] कौटिल्य भी इस प्रकार राज्य का एकाधिकार होने की बात कहते है ।[*134.] लेकिन मनु द्यूत तथा समाह्वय दोनों का समान रूप से निषेध करते है। उनके अनुसार राजा को अपने राज्य से इन दोनों व्यसनों को दूर कर देना चाहिए, क्यों कि ये दोनों दोष राजा के राज्य को नष्ट कर देते है । द्यूत एवं समाह्वय को आम चोरी के समान है। अतः राजा को उनको रोकने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए ।[*135.] जो मनुष्य द्यूत एवं समाह्वय खेले अथवा खिलावे, उनके राजा हाथ आदि कटवाकर दण्डित करे अथवा राज्य से शीघ्र निष्कासित कर दे ।[*136.]

व्यभिचार : सामाजिक मान्यताओं के विपरीत यदि पुरूष अथवा स्त्री का परस्पर संग्रहणरत होना सामाजिक दृष्टि से व्यभिचार माना जाता हैं ।

व्यभिचार कोटि में आने वाले अपराधों में कई प्रकार के हेतु होते है। एक निश्चित और

---

*131. कात्यायन, विवादरत्नाकर, पृष्ठ 611 में उद्धृत ।

*132. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/203.

*133. आपस्तम्ब, 2, 10, 15/12.

*134. अर्थशास्त्र, 3/74-15/20

*135. द्यूतं समाह्वयं चैव राजा राष्ट्रान्निवारयेत् ।
राजान्तकरणावेतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम् ।। मनुस्मृति 9/221-222.

*136. द्यूतं समाह्वयं चैव यः कुर्यात्कारयेत वा ।
तान्सर्वान्घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः ।। मनुस्मृति 9/224.

** कितवान्कुशीलवान्क्रूरान्पाषण्डस्थांश्च मानवान् ।
विकर्मस्थां, शौण्डिकांश्च क्षिप्रं निर्वासयेत्पुरात् ।। मनुस्मृति 9/225.

स्वस्थ्य आयु पाकर मनुष्य के शरीर में काम तन्तुओं का सहज उन्मेष होता है तथा अथवा अज्ञात भाव से भोगेच्छा के प्रति मनुष्य प्रवृत्त होता है। स्मृतिकार मनु ने व्यभिचारियों के लिए, न केवल दण्ड की व्यवस्था की वरन् इस समस्या का सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवेश में अध्ययन भी किया। स्त्री अथवा पुरूष क्यों व्यभिचारी होता है ? यहभी देखने का प्रयास किया। वे इस तथ्य से भली भाँति परिचित थे कि अभाव अतृप्ति को जन्म देता है और अतृप्ति अपराध को। यह अभाव एवं मानसिक एवं शारीरिक दोनों ही प्रकार का हो सकता है। व्याभिचारिता सम्भोगादि की अतिशय इच्छा होने से यत्नपूर्वक पति द्वारा सुरक्षित स्त्रियाँ भी पति से विमुख हो जाती है।[137] अतः पतियों को चाहिये कि वे उनका सम्मान करें।[138] व्यभिचार के लिये अपराध मानते समय भी स्त्री पुरूषकी जाति, स्त्री विवाहिता है अथवा अविवाहिता, पति अथवा अभिभावक द्वारा सुरक्षित है अथवा नहीं है। मनु ने इन बातों पर विस्तृत विचार करके ही उनका निर्धारण किया है। व्यभिचार वर्ण संकरता को जन्म देता है, जो पाप का कारण है।[139] बोधायन ने व्याभिचार कोटि में आने वाले अपराधों को उपपातक माना है। उन्होंने गुरू पत्नी के

- -

*137. पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च नैस्नेह्याच्च स्वभावतः ।
रक्षिता यत्नतोऽपीह भर्तृष्वेता विकुर्वते ।। मनुस्मृति 9/15.

*138. प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ।। मनुस्मृति 9/26.

*139. तत्समुत्थो हि लोकस्य जायते वर्णसंकरः ।
येन मूलहरोऽधर्मः सर्वनाशाय कल्पते ।। मनुस्मृति 8/353.

अतिरिक्त अन्य स्त्रियों के साथ अनैतिक और अनधिकृत सम्बन्धों को उस सीमा तक अपराध नहीं माना है, जितना गौतम ने माना है। बौधायन ने माता की सखी, गुरू अर्थात् पिता की सखी, अपपात्र स्त्री (शूद्रा) और पतिता के साथ अवैध सम्बन्ध की वर्जना कीहै।[*140]

मनु के अनुसार यदि न चाहती हुई ब्राह्मणी के साथ शूद्र संभोग करता है, तो अपराध गंभीरतम होता है।[*141.] यद्यपि मेधातिथि ने मनुस्मृति में आये अब्राह्मण का अर्थ क्षत्रियादि किया है।[*142.] परन्तु कुल्लूक और गोविन्दराज ने दण्ड की अधिकता के कारण अब्राह्मण का अर्थ शूद्र ही लगाया है।[*143.] जो उचित प्रतीत होता है । पति द्वारा सुरक्षित ब्राह्मणी के साथ यदि ब्राह्मण संभोग करें, तो उसका अपराध संभोग की इच्छा करने वाली ब्राह्मणी की अपेक्षा अधिक होता है । इसी प्रकार रक्षित क्षत्राणी के साथ वैश्य और वैश्य स्त्री के साथ क्षत्रिय संभोग करे तो अरक्षित ब्रम्हमणी ब्राह्मणी के साथ संभोग करने के बराबर अपराध होता है।[* 144.]

ब्राह्मण द्वारा व्यभिचार के संदर्भ में मनु का कथन है कि अरक्षित क्षत्राणी, वैश्या एवं शूद्रा के साथ सम्भोग करने वाले ब्राह्मण का अपराध गहन होता है। किन्तु यदि वह

---

*140. बौधायन धर्मसूत्र 2/1/2/5.

*141. अब्राह्मणः संग्रहणे, प्राणान्तं दण्डमर्हति ।
चतुर्णामपि वर्णानां दारा रक्ष्यतमाः सदा ।। मनुस्मृति - ।। 8/359.

*142. अब्राह्मणः क्षत्रियादिः, चतुर्णमपि वर्णानां ... मनुस्मृति 8/359 पर. मेधातिथि ।

*143. मनुस्मृति 8/359 पर कुल्लूक और गोविन्दराज ।

*144. वैश्यश्चेत्क्षत्रियां गुप्तां वैश्यां वा क्षत्रियो व्रजेत् ।
यो ब्राह्मण्यामगुप्तायां तावुभौ दण्डमर्हतः ।। मनुस्मृति 8/382.

अन्त्यज स्त्री के साथ संम्भोग करता है तो उसका अपराध उपर्युक्त अपराध से दो गुना हो जाता है।[*145.] यदि पति से सुरक्षित क्षत्राणी या वैश्या के साथ ब्राह्मण संभोग करे, तो अरक्षित स्त्रियों से संभोग करने की अपेक्षा अधिक गम्भीर अपराध है।[*146.] याज्ञवल्क्य, नारद आदि अन्य स्मृतियों का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि ब्राह्मण द्वारा व्यभिचार कृत्य का अलग से वर्णन मनु के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्मृतिकार ने नहीं किया है।

ब्राह्मणी के साथ यदि क्षत्रिय, वैश्य संभोग करें तथा वह सुरक्षित व गुणवती हो, तो मनु उसे गम्भीर अपराध मानते हैं। परन्तु यदि असुरक्षित ब्राह्मणी के साथ संभोग करे, तो उक्त अपराध की अपेक्षा कम गम्भीर होता है।[* 147.]

स्त्री द्वारा व्यभिचार के संदर्भ में मनु का कथन है कि यदि काम के वशीभूत होकर कोई स्त्री पुरुष के पास स्वयं जाये तो स्त्री गम्भीर रूप से अपराधिनी मानी जायेगी।[*148] अप्राकृतिक व्यभिचार के संदर्भ में मनुस्मृति में मिले है। गौतम और मनु ने ऐसी स्त्री या कन्या को अपराधिनी माना है जो किसी दूसरी कन्या की योनि दूषित करती हैं।[*149.]

- -

*145. अगुप्ते क्षत्रिया वैश्ये शूद्रां वा ब्राह्मणो व्रजन् ।
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यात्सहस्रं त्वन्त्यजस्त्रियम् ।। मनुस्मृति 8/385.

*146. सहस्रं ब्राह्मणो दण्डं दाप्यो गुप्ते तु ते व्रजन् ।
शूद्रायां क्षत्रियविशोः साहस्रो वै भवेद्दमः ।। मनुस्मृति 8/383.

*147. उभावपि तु तावेव ब्राह्मण्या गुप्तया सह ।
विप्लुतौ शूद्रवद्दण्ड्यौ दग्धव्यौ वा कटाग्निना।। मनुस्मृति 8/377.

** ब्राह्मणीं यद्यगुप्तां तु गच्छेतां वैश्यपार्थिवौ ।
वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात्क्षत्रियं तु सहस्रिणम् ।। मनुस्मृति 8/376.

*148. भर्तारं लङ्घयेद्या तु स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिता ।
तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते ।। मनुस्मृति 8/371.

*149. कन्यैव कन्यां या कुर्यात्तस्याः स्याद्द्विशतो दमः ।
शुल्कं च द्विगुणं दद्याच्छिफाश्चैवाप्नुयाद्दश ।। मनुस्मृति 8/369.

:: मनु द्वारा निरूपित दण्ड व्यवस्था ::

मनुष्य का विशृंखलित अहंकारी मन अपराध में एक प्रकार की मानसिक तुष्टि का अनुभव करता है। मानव की मानसिकता अनन्त विविधता से ओत प्रोत है। मनोवैज्ञानिक आधार पर विकृत मानसिकता का अनुमान या अनुसंधान किया जाता है। किन्तु मनुष्य के अपराधी मन की गहराई नापने के लिए कोई मानदण्ड स्थापित नहीं हो पाया है। इसी के समानान्तर "दण्ड" एक व्यवस्था है और उसकी सीमा या मात्रा भी निर्धारित है।

"दण्ड" शब्द का प्रयोग प्राचीन ग्रन्थों में विविध अर्थों में हुआ है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में शत्रुओं के दमन के अर्थ में दण्ड शब्द का प्रयोग हुआ है।[*150] इस मन्त्र का भाष्य लिखते हुए सायणाचार्य कहते है— "दमः दमनम्।" बाधनमिच्छन्[*151] निरूक्तकार यास्क ने "दण्ड" शब्द की व्युत्पत्ति धारणार्थक "दद" धातु से मानी है। दण्ड द्वारा हीसारी प्रतिभाओं को धारण किया जाता है। यास्क के ही अनुसार "दम" धातु से भी दण्ड शब्द की व्युत्पत्ति सिद्ध होती है, जिसके द्वारा अपराधियों का दमन किया जाता है, उसे दण्ड कहते है। अपनी इस व्युत्पत्ति के समर्थन में यास्क ने उपमन्यु के पुत्र औपमन्यवको भी उद्धृत किया है।[*152] धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में भी "दण्ड" शब्द का प्रयोग धारण तथा दण्डन के अर्थ में हुआ है। गौतम धर्मसूत्र में दमन करने के कारण ही दण्डविधि को दण्ड कहा गयाहै। जिसके द्वारा निरंकुश लोगों को वश में किया जाता है।[*153] मनु के अनुसार प्राणियों की रक्षा

---

*150. ऋण्वे वीर उग्रमुग्रं दमायन्नन्यमतिनेनीयमानः । ऋग्वेद 6/47/16.

*151. ऋग्वेद 6/47/16 पर सायण भाष्य ।

*152. दण्डो ददतेधरियतिकर्मणः । दमनादित्यौपमन्यवः । निरूक्तम् पृष्ठ 68.

*153. दण्डो दमनादित्याहुस्तेनादान्तान्दमयेत् । गौतम धर्म सूत्र2/2/28.

के लिए सभी जीवों के रक्षक ब्रहमतेजोमय दण्ड को ईश्वर ने अपने धर्मपुत्र के रूप में पैदा किया है।*154. उनके अनुसार दण्ड ही प्रजा का शासन चलाता है। दण्ड ही रक्षा करता है, दण्ड ही सभी के सोने पर जागता है, इसीलिए विद्वान् लोग दण्ड को ही धर्म कहते है।*155. मनु स्मृति के इस श्लोक पर टिप्पणी करते हुए कुल्लूक भट्ट ने लिखा है कि धर्म का कारण होने से ही दण्ड को धर्म कहा जाता है।*156. दण्ड के प्रयोजन पर मनु ने गम्भीरता पूर्वक विचार किया है।प्राय: उन्होने प्रतिशोध की भावना के समापन हेतु अपराध की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए, भय उत्पन्न करने के लिए तथा अपराधी को सुधारने के लिए तथा समाज में सुख-शान्ति की स्थापना के लिए इस दण्ड व्यवस्था का प्रतिपादन किया है। प्रतिशोध की भावना के शमनार्थ ही "दण्ड-व्यवस्था" धर्मसूत्रों एवं शास्त्रों में पूर्ण रूप से व्याप्त थी। उक्त प्रयोजन की पुष्टि मनुस्मृति व नारद स्मृति में पायी जाती है। यदि हीनवर्ण का व्यक्ति, ब्राहमण के किसी अंग को चोट पहुँचाये तो उसके चोट पहुँचाने वाले अंग को काट देना चाहिए।*157. मनुस्मृति में निरूपित दण्डों का विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत

---

*154. तस्यार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम् ।
ब्रहमतेजोमयं दण्डमसृजत्पूर्वमीश्वर: ।। मनुस्मृति 7/14.

*155. दण्ड: शास्ति प्रजा: सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ।
दण्ड: सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधा: ।। मनुस्मृति 1/18.

*156. मनुस्मृति 7/18 पर कुल्लूक की टीका ।

*157. येन केनचिदङ्गेन हिंस्याच्चेच्छ्रेष्ठमन्त्यज: ।
छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम् ।। मनुस्मृति 8/279.

** पाणिमुद्यम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति ।
पादेन प्रहरन्कोपात्पादच्छेदनमर्हति ।। मनुस्मृति 8/280.

*** तथा येनाङ्गेनावरो वर्णो ब्राहमणस्यापराध्नुयात् ।
तदङ्गं तस्य छेत्तव्यमेवं शुद्धिमवाप्नुयात् ।। नारद स्मृति 18/25.

जासकता है।

आर्थिक दण्ड : मनुस्मृति में जहाँ साधारण अपराधों के लिए वाग्दण्ड एवं धिग्दण्ड का प्रयोग किया गया है, वहीं गम्भीर अपराधों के लिए धनदण्ड एवं मृत्यु दण्ड का विधान किया गया है। आर्थिक दण्ड के दो प्रकार है :——

* निश्चित दण्ड तथा ** अनिश्चित । निश्चित दण्ड में निर्धारित मात्रा में अर्थदण्ड लगाया जाता है। तथा अनिश्चित दण्ड में सम्पूर्ण सम्पत्ति के अपहरण का विधान है।

धर्मशास्त्र साहित्य में निरूपित आर्थिक दण्ड प्रमुख रूप से तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है- प्रथम साहस, मध्यम साहस एवं उत्तम साहस । स्मृतिकारों ने इसकी व्याख्या कई प्रकार से की है। मनुस्मृति के साथ साथ विष्णु धर्म सूत्र में इनका क्रम इसप्रकार है - प्रथम साहस के लिए 250 पण, मध्यम साहस के लिए 500 पण तथा उत्तम साहस के लिए 1000 पण की व्यवस्था है।[*158.] मिताक्षरा का कथन है कि मनु की संख्यायें बिना किसी निश्चित उद्देश्य के लिए किये गये अपराधों के लिए है।[*159.] साहस संबंधी अपराधों के निमित्त अर्थदण्ड का विधान किया गया है।

फसल नष्ट करने सम्बन्धी आर्थिक दण्ड : मनु का मत है यदि किसान के दोष से उसी के पशु द्वारा खेत चरा जाय अथवा असमय में बोये जाने के कारण हानि हो तो जितने राजदेय भाग की हानि हो उसका दस गुना

---

*158. पणानां द्वे शते सार्धे प्रथमः साहसः स्मृतः ।
मध्यमः पञ्च विज्ञेयः सहस्रं त्वेव चोत्तमः ।। विष्णु धर्म सूत्र 4/14.
एवं मनुस्मृति 8/138.

*159. याज्ञवल्क्य व मनु के संदर्भ में मिताक्षरा.

दण्ड किसान पर होता है और यदि उसके नुकसान से या नौकरों के दोष से हानि हो तो, पाँच गुना दण्ड होता है।*160. इसी प्रसंग में यदि गाँव के समीप खेत में यदि चरवाहा के रहने पर पशु फसल नष्ट करे तो 100 पण का दण्ड दें।*161. मनु ने भय दिखाकर किसी का घर, तड़ाग, बगीचा और खेत अपहरण कर लेने पर 500 पण का दण्ड और खेत के स्वामी की अज्ञानता की स्थिति में ऐसा करने पर 200 पण का दण्ड निर्धारित किया है।*162.

वाहन चालकों को दिये जाने वाले अर्थदण्ड : मनु ने सारथि के अपराधों का वर्णन करते हुये अपराध की लघुता व गंभीरता के आधार पर अर्थदण्ड का विधान किया है। यदि सारथी की मूर्खता से कोई व्यक्ति मर जाये तो मूर्ख सारथी रखने के लिए 200 पण का दण्ड सारथी के स्वामी पर होता है। लेकिन यदि सारथी चतुर है, तो उस सारथी पर ही 200 पण का दण्ड होता है तथा यदि सारथी चतुर नहीं है, तो उस परसारथी की सवारी पर चढ़ने वालों पर 100-100 पण का दण्ड होता है।*163. मनु का कथन है कि यदि सारथी की —

---

*160. क्षेत्रियस्यात्यये दण्डो भागाद्दशगुणो भवेत् ।
ततोऽर्धदण्डो भृत्यानामज्ञानात्क्षेत्रिकस्य तु ।। मनुस्मृति 8/243.

*161. पथिक्षेत्रे परिवृत्ते ग्रामान्तीयेऽथवा पुनः ।
स पालः शतदण्डार्हो विपालान्वारयेत्पशून् ।। मनुस्मृति 8/240.

*162. गृहं तडागमारामं क्षेत्रं वा भीषया हरन् ।
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादज्ञानाद्विशतो दमः ।। मनुस्मृति 8/264.

*163. यत्रापवर्तते युग्यं वैगुण्यात्प्राजकस्य तु ।
तत्र स्वामी भवेद्दण्ड्यो हिंसायां द्विशतं दमम् ।। मनुस्मृति 8/293.

** प्राजकश्चेद्भवेदाप्तः प्राजको दण्डमर्हति ।।
युग्यस्थाः प्राजकेऽनाप्ते सर्वे दण्ड्याः शतं शतम् ।।। मनुस्मृति 8/294.

असावधानी से मनुष्य मर जाय, तो उस पर उत्तम साहस अर्थात् 1000 पण का दण्ड होता है तथा बड़े जीव ऊँट, गाय, बैल, हाथी, घोड़ा आदि के मरने पर आधा अर्थात् 500 पण का दण्ड होता है। छोटे कद के पशुओं के मर जाने पर 200 पण का दण्ड तथा शुभ मृग और शुभ पक्षी के मर जाने पर 50 पण का दण्ड एवं गधा, बकरी, भैंड़ के मर जाने पर पाँच मासे का तथा कुत्ता सुअर के मर जाने पर एक मासा चाँदी का दण्ड विहित है।*164.

झूँठी गवाही सम्बन्धी अर्थदण्ड : ग्रामों के बीच के सीमा के निर्धारण के विषय में झूँठ बोलने वाले सीमान्तादि (समीपस्थ ग्रामवासी) में 500 पण का दण्ड निर्धारित किया है।*165. लेकिन याज्ञवल्क्य इसके लिए 540 पण का दण्ड निर्धारित किया है।*166.

चोरी करने पर अर्थ दण्ड : यद्यपि धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में स्तेय अपराध के सन्दर्भ में बध एवं अंगच्छेन और दग्धन जैसे कठोर दण्डों का

---

*164. मनुष्यमारणे क्षिप्तं चौरवत्किल्विषं भवेत् ।
प्राणभृत्सु महत्स्वर्धं गोगजोष्ट्रहयादिषु ।। मनुस्मृति 8/296.

** क्षुद्रकाणां पशूनां तु हिंसायां द्विशतो दमः ।
पञ्चाशत्तु भवेद्दण्डः शुभेषु मृगपक्षिषु ।। मनुस्मृति 8/297.

*** गर्दभाजाविकानां तु दण्डः स्यात्पञ्चमाषिकः ।
माषिकस्तु भवेद्दण्डः श्वसूकर निपातने ।। मनुस्मृति 8/298.

*165. सामन्ताश्चेन्मृषा ब्रूयः सेतो विवदतां नृणाम् ।
सर्वे पृथक्पृथग्दण्ड्या राज्ञा मध्यमसाहसम् ।। मनुस्मृति 8/263.

*166. याज्ञवल्क्य स्मृति - 2/153.

विधान किया है- लेकिन यथावसर अपराध के अनुसार अर्थदण्ड का भी विधान है। मनु के अनुसारचोरी करने वाले शूद्र परआठ गुना, वैश्य पर सोलह गुना, क्षत्रिय पर बत्तीसगुना, तथा ब्राह्मण पर चौसठ गुना या सौ गुना या एक सौ अट्ठाइस गुना दण्ड होता है। *167. गौतम *168. तथा नारद *169. ने इसका समर्थन भी किया। मनु ने चोरित वस्तु के आधार पर लम्बी तालिकाप्रस्तुत की है। बहुमूल्य धातु एवं वस्त्र सक पण में 500पण तक के चुराने पर वस्तु की कीमत का ग्यारह गुना दण्ड विहित है। *170. सूत, कपास, बांस के वर्तन, मछली, मांस, मधु आदि 12 प्रकार के मादक द्रव्य चुराने पर दुगना दण्ड विहित है। *171. कुएँ की रस्सी या घड़ा चुराने वाले को एक माष सुवर्ण का दण्ड तथा चोरित रस्सी एवं घड़े को वापस लाने का दण्ड विहित है। *172. फूल, खेत के हरे धान, गुल्म, लता, पेड़ और पुरूष के ढोने योग्य अन्य वस्तु चुराने पर पाँच कृष्णल {एक आना} दण्ड करना चाहिए। *173. अच्छा धान्य, शाक, मूल, फल, चुराने वाला यदि परिवादी यासम्बन्धी है, तो 50 पण का दण्ड तथा साधारणतय: 100 पण का दण्ड लेना चाहिए। *174. तथा

---

*167. अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषम् ।
षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य च ।। मनुस्मृति 8/337.

*168. ब्राह्मणस्य चतुः षष्टिः पूर्णं वापि शतं भवेत् ।
द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तद्दोषगुणविद्धि सः ।। मनुस्मृति 8/338.

*168. गौतम धर्म सूत्र 2/3/12-13.

*169. नारद स्मृति 21/51, 52.

*170. पञ्चाशतस्त्वभ्याधिके हस्तच्छेदनमिष्यते ।
शेषे त्वेकादशगुणं मूल्याद्दण्डं प्रकल्पयेत् ।। मनुस्मृति 8/332.

*171. मनुस्मृति, 8/326- 329.

*172. यस्तु रज्जुं घटं कूपाद्धरेच्छिद्याच्च यः प्रपाम् ।
स दण्डं प्राप्नुयान्माषं तच्च तस्मिन्समाहरेत् ।। मनुस्मृति 8:319.

*173. पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीनगेषु च ।
अन्येष्व परिपूतेषु दण्डः स्यात्पञ्चकृष्णलः ।। मनुस्मृति 8:330.

*174. परिपूतेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च ।
निरन्वये शतं दण्डः सान्वयेऽर्धशतं दमः ।। मनुस्मृति 8/331.

उपभोग्य सूत्रादि वस्तुओं को तथा अग्निहोत्र से त्रेताग्नि की चोरी करने वाले व्यक्ति को प्रथम साहस का दण्ड देना विहित है।*175.

व्यभिचार के परिप्रेक्ष्य में अर्थदण्ड : व्यभिचार के लिए मनु ने अर्थदण्ड का निर्धारण वर्ण व्यवस्था के आधार पर इसप्रकार की है-- संरक्षित ब्राह्मणी के साथ किसी ब्राह्मण के बलात्कार पूर्वक संभोग करने पर 1000 पण और संभोग की इच्छा करने वाली के साथ संभोग करने पर 500 पण का दण्ड होता है।*176. सुरक्षित क्षत्राणी के साथ वैश्य तथा वैश्य स्त्री के साथ क्षत्रिय संभोग करे, तो 500 एवं 1000 पण का दण्ड होता है।*177. यदि ब्राहमण रक्षित क्षत्राणी और वैश्या के साथ व्यभिचार करे तो उसे 1000 पण दण्ड दे और क्षत्रिय तथा वैश्यरक्षित शूद्रा से रमण करे, तो उन्हेंभी एक हजार पण जुर्माना देना चाहिये।*178. अरक्षित क्षत्राणी से गमन करने पर वैश्य को पांच सौ पण दण्ड देना होगा।यदि क्षत्रिय उससे गमन करें तो गधे की पेशाब से उसके सिर के बाल मुड़ा दें तथा पांच सौ पण का दण्ड ले।*179. यदि ब्राहमण अरक्षित क्षत्राणी, वैश्या या शूद्रा

---

*175. यस्त्वेतान्युपक्लृप्तानि द्रव्याणि स्तेनयेन्नरः ।
तमाद्यं दण्डयेद्राजा युश्चाग्निं चोरयेद्गृहात् ।। मनुस्मृति 8/333

*176. सहस्रं ब्राहमणो दण्ड्यो गुप्तां विप्रां बलोद्व्रजन् ।।
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादिच्छन्त्या सहसंगतः ।।। मनुस्मृति 8/378.

*177. वैश्यश्चेत्क्षत्रियां गुप्तां वैश्यां वा क्षत्रियो व्रजेत् ।
यो ब्राहमण्यामगुप्तायां तावुभौ दण्डमर्हतः ।। मनुस्मृति 8/382.

*178. सहस्रं ब्राहमणो दण्डं दाप्यो गुप्ते तु ते व्रजन् ।
शूद्रायां क्षत्रिय विशोः सहस्रो वै भवेद्दमः ।। मनुस्मृति 8/383.

*179. क्षत्रियायामगुप्तायां वैश्ये पञ्चशतं दमः ।
मूत्रेण मौण्ड्यमिच्छेत्तु क्षत्रियो दण्डमेव वा ।। मनुस्मृति 8/384.

से गमन करे , तो 500 पण का दण्ड दे और चाण्डाल स्त्री के साथ संभोग करने पर 1000पण का दण्ड विहित है।*[180] सुरक्षित ब्राह्मणी के साथ क्षत्रिय के संभोग करने पर मूत्र मुंडन तथा 1000 पण का दण्ड होता है तथा अरक्षित ब्राह्मणी के साथ संभोग करने पर मात्र 1000 पण यदि वैश्य उपर्युक्त अपराध करे तो 500 पण के दण्ड का विधान है।*[181] मनु और याज्ञवल्क्य ने पति आदि के मना करने परभी पर पुरूष से बातचीत करने वाली स्त्री पर 100 सुवर्ण का दण्ड विहित है। इसी प्रकार निषेध किये जाने पर परस्त्री से सम्बन्ध रखने वाले पुरूष को याज्ञवल्क्य ने 200 पण से दण्डित करने का विधान किया है।*[182] किन्तु मनु ने व्यभिचार के विषय में अनिन्दित भी पुरूष को अरण्य में, घने वृक्षादि से युक्त वन में, नदीके किनारे एकान्त में परस्त्री से बातचीत करने पर 1000 पण से दण्डिनीय है कहा है।*[183]

कन्या सम्बन्धी व्यभिचार -- कर्म के विषय में अर्थदण्ड का विधान करते हुए मनु कहते है कि समवर्णी, कामुक कन्या के साथ संभोग न करके, मात्र उसे दूषित करने पर पुरूष पण के दण्ड का भागीदार होता है। यहां पर उसका अंगुलिच्छेदन नहीं होगा, क्यों कि इस संदर्भ में "अभिविध्य" (बलपूर्वक) शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। कुल्लूक भट्ट के अनुसार इस अर्थदण्ड का प्रयोजन उस प्रसंग की पुनरावृत्ति को रोकना मात्र है।*[184] किन्तु यदि कन्या

- -

*180. अगुप्ते क्षत्रियावैश्ये शूद्रां वा ब्राह्मणो व्रजन् ।
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यात्सहस्त्रं त्वन्त्यजस्त्रियम् ।। मनुस्मृति 8/385.

*181. वैश्यः सर्वस्वदण्डः स्यात्संवत्सरनिरोधतः ।
सहस्त्रं क्षत्रियो दण्ड्यो मौण्ड्यं मूत्रेण चार्हति ।। मनुस्मृति 8/375.

*182. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/285 तथा
न संभाषां परस्त्रीभिः प्रतिषिद्धः समाचरेत् ।
निषिद्धो भाषमाणस्तु सुवर्णं दण्डमर्हति ।। मनुस्मृति 8/361.

*183. परस्त्रियं योऽभिवदेत्तीर्थेऽरण्ये वनेऽपि वा ।
नदीनां वापि संभेदे स संग्रहणमाप्नुयात् ।। मनुस्मृति 8/356.

*184. मनुस्मृति 8/368, तथा उस पर कुल्लूक की टीका ।

कन्या की योनि दूषित करे तो 200 पण राजा को दे तथा दो गुना उस लड़की के बाप को दे।[*185.] दोषयुक्त कन्या का दोष न बताकर दान कर देने पर 96 पण तथा द्वेष के कारण कन्या को क्षतयोनि कहने पर और दोष को न प्रमाणित करने पर 100 पण का दण्ड विहित है।[*186.]

गाली-गलौच (वाक्पारुष्य) के परिपेक्ष्य में अर्थदण्ड :
++

कठोर बचन अथवा गाली गलौच के परिपेक्ष्य में मनु ने वर्णभेद का आधार पर तालिका प्रस्तुत की है। यदि कोई क्षत्रिय ब्राह्मण को कटु बचन कहता है, तो उस पर 100 पण, वैश्य पर लघुता एवं गुरुता के आधार पर क्रमशः 150 या 200 पण और इसी प्रकार यदि ब्राह्मण क्षत्रि को कटुवचन कहे, तो 50 पण, वैश्य को कहता है तो 25 पण और शूद्र को कहने पर 12 पण के अर्थदण्ड का विधान है।[*187.] मनु ने समान वर्ण वालों को आपस में गालीगलौच करने पर 12 पण तथा ज्यादा उग्र रूप करने पर दो गुना अर्थात् 24 पण का दण्ड निर्धारित किया है।[*188.] नारद भी ऐसी ही व्यवस्था बताते है।[*189.]

- -

*185. कन्यैव कन्यां या कुर्यान्तस्याः स्याद्द्विशतो दमः ।
शुल्कं च द्विगुणं दद्याच्छिफाश्चैवाप्नुयाद्दश ।। मनुस्मृति 8/369.

*186. यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति ।
तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवतिं पणान् ।। मनु0 8/224.
अकन्येति तु यः कन्यां ब्रूयाद्द्वेषेण मानवः ।
स शतं प्राप्नुयाद्दण्डं तस्या दोषमदर्शयत् ।।मनु0 8/225.

*187. शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति ।
वैश्योऽप्यर्धशतं द्वे वा शूद्रस्तु बधमर्हति ।। मनु08/267.
पञ्चाशद्ब्राह्मणो दण्ड्यः क्षत्रियस्याभिशंसने ।
वैश्ये स्यादर्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः ।। मनु0 8/268.

*188. समवर्णे द्विजातीनां द्वादशैव व्यतिक्रमे ।
वादेष्ववचनीयेषु तदेव द्विगुणं भवेत् ।। मनु0 8/269.

*189. नारद स्मृति 18/17.

मनु की एकअन्य व्यवस्था के अनुसार - यदि ब्राह्मण क्षत्रिय एक दूसरे पर पातक सम्बन्धी निन्दा करें, तो क्षत्रिय की निन्दा करने वाले ब्राह्मण पर प्रथम साहस कादण्ड और ब्राह्मण की निन्दा करने वाले क्षत्रिय पर मध्यम साहस का दण्ड होता है। इसी तरह यदि वैश्य तथा शूद्र एक दूसरे पर पातक सम्बन्धी निन्दा करे, तो उपर्युक्त साहस नियमानुसार ही शूद्र की निन्दा करने वाले वैश्य पर प्रथम साहस और वैश्य की निन्दा करने वाले शूद्र पर मध्यम साहस का दण्ड विहित है।[*190.] कुल्लूक भट्ट ने इससे यह आशय लिया है कि इस व्यवस्था के फलस्वरूप ब्राह्मण व क्षत्रिय को शूद्र द्वारा अपशब्द कहने पर जिव्होच्छेदन का दण्ड दिया जाना युक्ति युक्त प्रतीत होता है।[*191.] यथार्थ में काना, लंगड़ा, अन्धा होने पर उन्हें ऐसा कहने पर एक पण का ही दण्ड विहित करते है। नारद इसका समर्थन करतेहै।[*192] मनु का कथन है कि श्रुत, देश, जाति, कर्म को अभिमान से असत्य कहने वाले समवर्णी को 200 पण का अर्थदण्ड होता है।[*193.] टीकाकारों ने मनु के इसकथन पर भिन्न व्याख्यायें

- -

*190. ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां तु दण्डः कार्यो विजानता ।
ब्राह्मणे साहसः पूर्वः क्षत्रिये त्वेव मध्यमः ।। मनु0 8/276.
विट्शूद्रयोरेवमेव स्वजातिं प्रति तत्त्वतः ।
छेदवर्जं प्रणयनं दण्डस्येति विनिश्चयः ।। मनु08/277.

*191. मनु स्मृति 8/277 पर कुल्लूक की टीका ।

*192. काणं वाप्यथवा खञ्जमन्यं वापि तथाविधम् ।
तथ्येनापिब्रुवन्दाप्यो दण्डं कार्षापणावरम् ।। मनु0 8/274.
तथा नारद स्मृति 18/18.

*193. श्रुतं देशं च जातिं च कर्म शारीरमेव च ।
वितथेन ब्रुवन्दर्पाद्दाप्यः स्याद्द्विशतं दमम् ।। मनु0 8/273.

उपस्थित की है। मेधातिथि का मत है कि यह दण्ड विधान सभी के लिए है।परन्तु कुछ आचार्यों का मत है कि केवल शूद्र के लिए है।[*194.] नारायण का कहना है कि श्रुतादि के विषय में अभिमान वश कहता हुआ द्विज ही दण्डनीय है। शूद्र नहीं। उसका तो वध करना चाहिये।[*195.] कुल्लूक और राघवानन्द का मत है- दण्ड की लघुता होने के कारण यह दण्ड विधान समवर्णों के विषय में ही हैं।[*196.] मनु के अनुसार माता, पिता, स्त्री, भाई तथा गुरू पर पातकादि दोष लगाकर निन्दा करने पर 100 पण का अर्थदण्ड होता है।[*197.]

मार - पीट (दण्डपारुष्य) करने पर में अर्थदण्ड : मनु ने मारपीट करने के अपराध में भी वर्ण भेदानुसार अर्थदण्ड का विधान किया है। यदि समान वर्ण वाला व्यक्ति यदि मार मार कर चमड़ी निकाल दे अथवा यदि रक्त निकाल दें,तो 100 पण का दण्ड यदि मांस निकाल दे तो छः निष्क का दण्ड होता है।[*198.] नारद का भी यही मत है।[*199.]

---

*194. कस्य पुनरयं दण्डः । सर्वेषामिति पूर्वः । शूद्राधिकाराद् शूद्रस्यैवेति ।
मनुस्मृति 8/273 पर मेधातिथि ।

*195. मनुस्मृति 8/273 पर नारायण की टीका ।

*196. समान जातिविषयमिदं दण्डलाघवान्न तु शूद्रस्य द्विजात्याक्षेपविषयम् ।
—— मनुस्मृति 8/273 पर कुल्लूक की टीका तथाइसी पर राघवानन्दकी टीका।

*197. मातरं पितरं जायां भ्रातरं तनयं गुरुम् ।
आक्षारयञ्छतं दाप्यः पन्थानं चाददद्गुरोः ॥ मनु0 8/275.

*198. त्वग्भेदकः शतं दण्ड्यो लोहितस्य च दर्शकः ।
मांस भेत्ता तु षाण्निष्कान्प्रवास्यस्त्वस्थिभेदकः ॥ मनु0 8/284.

*199. नारद स्मृति 18/29.

पशुओं के प्रति भी मनु ने दण्डपारुष्य में कोई निश्चित अर्थ दण्ड का विधान नहीं किया है। मनु का कथन है कि पशुओं को दुःखित करने के लिए मारने पर जैसी पीड़ा हो, उस पीड़ा के अनुसार अर्थदण्ड का विधान होना चाहिए।[*200] तथा वृक्षों आदि के फल, फूल, पत्ता तथा लकड़ी आदि का जैसा जैसा उपभोग होता हो उनको नष्ट करने वाले अपराधी पर वैसा वैसा ही दण्ड देना चाहिये।[*201]

सम्पत्ति अपहरण : मनु ने निश्चित आर्थिक दण्ड के अतिरिक्त सम्पूर्ण या कुछ सम्पत्ति के अपहरण का विधान भी प्रस्तुत किया है। अर्थदण्ड एवं सम्पत्ति अपहरण में मूलभूत अन्तर यह है कि अर्थदण्ड में किसी अपराध विशेष के लिए निश्चित परिमाण में अर्थदण्ड का विधान होता है परन्तु सम्पत्ति अपहरण में अपराधी की समस्त या कुछ सम्पत्ति अपहृत करने की व्यवस्था होती है।

मनु ने उन राज्याधिकारियों की समस्त सम्पत्ति का अपहरण करने का विधान किया है जो उत्कोच के धन से गर्वित होकर कार्य नहीं करते है। इसके अतिरिक्त राजा से सम्बद्ध बिक्री योग्य मूल्यवान सामान तथा निर्यात के लिए मना किये गये पदार्थ को लोभ वश दूसरे देशों ले जाने वाले व्यापारी की सम्पूर्ण सम्पत्ति को राजा द्वारा अपहृत कर लेने का भी निर्देश है।[*202] यदिशूद्र पति से सुरक्षित या अरक्षित द्विजाति स्त्री के साथ

---

*200. मनुष्याणां पशूनां च दुःखाय प्रहृते सति ।
यथायथा महद्दुःखं दण्डं कुर्यात्तथातथा ।।मनु0 8/286.

*201. वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगं यथायथा ।
तथातथा दमः कार्यो हिंसायामिति धारणा ।। मनु0 8/285.

*202. राज्ञः प्रख्यातभाण्डानि प्रतिषिद्धानि यानि च ।
तानि निर्हरतो लोभात्सर्वहारं हरेन्नृपः ।मनु0/ 8/399.

ये कार्यिकेभ्योऽर्थमेव गृह्णीयुः पापचेतसः ।
तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम् ।। मनु0 7/124.

व्यभिचार कर्म करता है तो बध दण्ड के साथ साथ उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति का अपहरण भी कर लेना चाहिए। पति आदि को सुरक्षित ब्राह्मणी के साथ मैथुन करने वाले वैश्य का भी सभी कुछ हरण कर लेना चाहिए।[*203.] यदि सुरक्षित ब्राह्मणी के साथ मैथुन करने वाले वैश्य एवं क्षत्रिये का भी सर्वस्व हरण करने का विधान है।[*204.] मनु के मतानुसार अनिच्छा - पूर्वक मद्यपान, सुवर्ण चोरी तथा गुरु पत्नी के साथ संभोग में प्रवृत्त होने वाले क्षत्रियों, वैश्यों, तथा शूद्रों की सम्पूर्ण सम्पत्ति का अपहरण कर लेना चाहिए।[*205.]

:: शारीरिक दण्ड ::

स्मृतिकार मनु ने विविध अपराधों में विभिन्न तरह के शारीरिक दण्ड सुझायें है। जिनका विवरण इस प्रकार है।

अङ्गच्छेदन : मनु ने अपनी दण्ड व्यवस्था में अंगच्छेदन का विधान कई अपराधों में निर्दिष्ट किया है। प्रधानतः इस दण्ड का निर्देश, व्यभिचार, चोरी एवं शूद्रों द्वारा किये गये विविध अपराधों में निमित्त किया गया हैं।

व्यभिचार में अंगच्छेदन : पति के द्वारा रक्षित या अरक्षित ब्राहमणी के साथ संभोग करने वाले शूद्र को लिङ्गच्छेदन का दण्ड मनु ने विहित किया है।[*206]

---

*203. शूद्रो गुप्तमगुप्तं वा द्वैजातं वर्णमावसन् ।
अगुप्तमङ्गसर्वस्वैर्गुप्तं सर्वेण हीयते ।। मनुस्मृति 8/374.
वैश्यः सर्वस्वदण्डः स्यात्संवत्सरनिरोधतः ।
*000. सहस्रं क्षत्रियो दंड्यो मौण्ड्यं मूत्रेण चार्हति ।। मनुस्मृति 8/375.

*204. उभावपि तु तावेत ब्राहमण्या गुप्तया सह ।
विप्लुतौ शूद्रवद्दण्ड्यौ दग्धव्यौ वा कटाग्निना ।। मनुस्मृति 8/377.

*205. इतरे कृतवन्तस्तु पापान्येतान्यकामतः ।
सर्वस्वहारमर्हन्ति कामतस्तु प्रवासनम् ।। मनुस्मृति 9/242.

*206. मनुस्मृति 8/374.

यदि कोई ब्राह्मणेत्तर जाति का पुरुष संभोग की इच्छा न रखती हुई कन्या से संभोग करे तो उसको लिंगच्छेदन दण्ड से दण्डित करना चाहिए। वृहस्पति ने भी उक्त दण्ड व्यवस्था में मनु का समर्थन किया है और लिंगच्छेदन के साथ अण्डकोष काटने का भीविधान किया है।*207. यदि समवर्णी कन्या के साथ संभोग न करके, बलात् उसकी योनि को अंगुलि प्रक्षेपण द्वारा दूषित करे तो उसका अविलम्ब अंगुलि विच्छेदन कर देना चाहिये।*208. मनु ने किसी कन्या की योनि को अंगुलिप्रक्षेपण द्वारा दूषित करने वाली स्त्री की अंगुलि काटने तथा सिर मुंड़ाकर गधे पर घुमाने की व्यवस्था दी है।*209. अभिमानवश परपुरुष के साथसंगति करके पति का अपमान करने वाली स्त्री के लिए कुत्ते से नुचवाने का दण्ड निर्धारित किया है।*210. गौतम प्रायश्चित न करने पर इसे आरोपित करते हैं।*211.

चोरी के अपराध में अंगच्छेदन : स्मृतिकार मनु ने स्तेय के विषय में प्रतिपादित किया,
****
कि चोर जिस जिस अंग से चोरी तथा सेंध मारना आदि दुष्कर्म करें, फिर वैसा न कर सके, अतः चोर के उस अंग विशेष को कटवा दें।,*212.

- -

*207. मनुस्मृति 8/364 तथा वृह. स्मृति - उद्धृत स्मृतिचन्द्रिका भाग-2 पृ. 742.

*208. नारद स्मृति 15/73-74. तथा मनु स्मृति 8/370.
यातु कन्यां प्रकुर्यात्स्त्री सा सद्यो मौण्ड्यमर्हति ।
अंगुल्योरेव वा छेदं खरेणोद्वहनं तथा ।।

*209. मनु स्मृति 8/370.

*210. भर्तारं लङ्घयेता तु स्त्री ज्ञाति गुणदर्पिता ।
तां श्वभि खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते ।। मनु० 8/371.

*211. गौतम धर्म सूत्र 3/5/14-15.

*212. येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते ।
तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ।। मनुस्मृति 8/334.

नारद भी ऐसा ही नियम प्रतिपादित करते है।[*213.] मनु एवं याज्ञवल्क्य ने जेबकतरों {पाकेटपिक} को प्रथमबार पकड़ने पर अंगूठा एवं तर्जनी कटवा देने का निर्देश दिया है तथा दूसरी बार पकड़ने पर एक हाथ तथा एकपैर काटने का विधान किया है।[*214.] मनु ने रात में सेंध मारकरचोरी करने वाले चोर के लिए दोनोंहाथों को कटवाकर शूली पर चढ़ाने का विधान किया है।[*215 {अ}] मनु ने ब्राह्मण कीगाय चुराने पर, बन्ध्या गाय कोलाइने केलिए नाथने पर और यज्ञार्थ लाये गये बकरे आदि पशु चुराने परचोर का आधा पैर कटवा देने का विधान किया है। मनु ने कुछ बहुमूल्य वस्तुओं को 50 पण से अधिक 100पण तक चुराने वाले का हाथ काटने का दण्ड विहित किया है।[{ब}]

शूद्र के अपराधों में अंगच्छेदन : मनु ने शूद्र द्वारा द्विज को मारने पर उस अंगविशेष के छेदन कराने का विधान किया है। यदि हाथ उठाकर या डण्डे से मारे तो हाथ काट लेनाचाहिए और पैर से मारने पर, पैर काट लेना चाहिए।[*216.] जुआ खेलने वाले तथा यज्ञोपवीत धारण करने वाले शूद्रों के भी हस्तादि कटवाने काविधान हैं। यदि कोईशूद्र ब्राह्मण के साथ उसी आसन पर बैठने की इच्छा करता

---

*213. नारद स्मृति 21/34.

*214. मनुस्मृति 9/277. तथा याज्ञवल्क्य स्मृति 2/274.

*215. {अ} मनुस्मृति 9/276.

{ब} पञ्चाशतस्त्वभ्यधिके हस्तच्छेदनमिष्यते ।
शेष त्वेकादशगुणं मूल्याद्दण्डं प्रकल्पयेत ।। मनु0 8/322.
गोषु ब्राह्मणसंस्थासु छूरिकायाश्च भेदने ।
पशूनां हरणे चैव सद्यः कार्योऽर्धपादिकः ।। मनुस्मृति 8/325.

*216. येन केनचिदङ्गेन हिंस्याच्चेच्छ्रेष्ठमन्त्यजः ।।
छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम् ।। मनुस्मृति 8/279.
पाणिमुद्यम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति ।
पादेन प्रहरन्कोपात्पादच्छेदनमर्हति ।। मनुस्मृति 8/280.

है तो उसके कमर में तप्त लौह छड़ से अंकित कर राज्य से निकाल देना चाहिए अथवाउसके नितम्ब को इस प्रकार काटे कि वह मरने न पाये।*217. विष्णु धर्म सूत्र मेंभी इसका उल्लेख है।*218. इसी प्रकार शूद्र यदि अभिमानवश ब्राह्मण के ऊपर थूकता है तो उसके दोनों ओष्ठों को, मूत्र फेंकने के द्वारा तिरस्कृत करताहै तो उसकी मूत्रेन्द्रिय को और अपानवायु के द्वारा अपमानित करता है तो उसकी गुदा को कटवा देना चाहिए तथा अंहकारवश ब्राह्मण के बालों, पैरो, दाड़ी, ग्रीवा और अण्डकोष पकड़ता है तो पीडा के विषय में विचारे बिना अविलम्ब शूद्र के दोनों हाथों को काट डाले। नारद तथा बृहस्पति ने मनु का समर्थन किया है।*219. मनु {8/281} के कथन में आये "उत्कृष्टस्य" और "अपकृष्टजः" पदों के आधार पर विभिन्न टीकाकारों ने विभिन्न मत दिये हैं। मेधातिथि, कुल्लूकभट्ट तथा गोविन्दराज के अनुसार यह विधान ब्राह्मण और शूद्र के विषय में है, जबकि राघवानन्द इसे शूद्र और आर्य के विषय में मानते हैं।*220.

जो अल्पज्ञान के आधार पर ब्राह्मण को यह उपदेश दे कि "यह तुम को इस प्रकार करना चाहिए" ऐसे शूद्र के मुख तथा कानों में गर्म तेल डाल देना चाहिए ऐसा मनु एवं नारद दोनों का मत है।*221. शूद्र द्वारा ब्राह्मण पर महापातकों का आरोप लगाने पर तथा दारूण वाणी से पीड़ित करने पर उसके जिह्वाच्छेदन का विधान मनु ने दिया है।*222.

---

*217. मनु स्मृति 8/281.

*218. विष्णु धर्म सूत्र 5/20.

*219. मनुस्मृति 8/282-283 तथा बृहस्पति स्मृति- स्मृतिचन्द्रिका, भाग-2 पृष्ठ 763 नारद स्मृति 18/26-28.

*220. मनुस्मृति {8/281} पर मेधातिथि, कुल्लूक, गोविन्दराज तथाराघवानन्द।

*221. मनुस्मृति 8/272 एवं नारद स्मृति-18/24.

*222. मनुस्मृति 8/270.

नारद भी इसका उल्लेख करते है ।[*223.] उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि शूद्र को अंगच्छेदन जैसे यातनामय दण्ड देने का आधार "जघन्यप्रभवो हि सः" हैं। मेधातिथि का कहना है कि "जघन्यप्रभव" पद का प्रयोग मनु ने "प्रतिलोमों" को भी ग्रहण करने के लिये किया है। क्यों कि वे भी जघन्यप्रभव ही हैं।[*224.] विवादरत्नाकर का मत है कि उक्त विधान के अनुसार संकरजाति वाले व्यक्तियों को भी द्विजातियों पर दारूण आपेक्ष करने पर यही दण्ड मिलता हैं।[*225.]

ताड़न : धर्मशास्त्रों में कर्तव्य पूरा न करने वाले और श्रमजीवियों को ताड़न के दण्ड का पात्र माना गया है। स्मृतिकार मनु ने भी इस दण्ड प्रकार से दण्डित करने का विधान किया है। यदि कोई कन्या, किसी कन्या की योनि में अंगुलि प्रक्षेपण करें तो उस अपराधी कन्या को दस कोड़े या बेत से ताड़ित (पीटना) करना चाहिए ।[*226.] मनु का कथन है कि सपत्नी, पुत्र, दास, नौकर और सहोदर भाई को उनके दुर्व्यवहार के लिए शारीरिक दण्ड देने का निषेध किया है, किन्तु शिक्षार्थ दण्ड देना अनिवार्य ही हो, तो पतली छड़ी या रस्सी ही उनकी पीठ पर ताड़ित करने का विधान किया गया है, किन्तु मस्तक या सिर पर नहीं ।[*227.] अर्थदण्ड देने में असमर्थ स्त्री, बालक, उन्मत्त, वृद्ध, रोगी मनुष्यों को पेड़ों की या बांस की छड़ी से ताड़ित करने का विधान किया है।[*228.]

---

*223. नारद स्मृति- 18/22.

*224. हेत्वाभिधानं प्रतिलोमानामपि ग्रहणार्थम् - मनुस्मृति (8/270) परमेधातिथि.

*225. मनुस्मृति 8/270 पर विवाद रत्नाकर.

*226. मनुस्मृति 8/369.

*227. मनुस्मृति 8/299-300.

*228. स्त्रीबालोन्मत्तवृद्धानां दरिद्राणां च रोगिणाम् ।
शिफाविदलरज्ज्वाद्यैर्विदध्यान्नृपतिर्दमम् ।।मनुस्मृति 9/230.

दग्धन-अंकन : प्राचीन समाज में दग्धन एवं अंकन भी शारीरिक दण्ड के रूप में प्रचलित था। मनु ने गुरु पत्नी के साथ संभोग करने वाले के ललाट पर भग का चिन्ह तथा ब्रह्महत्या के लिए अपराधी के मस्तक पर मनुष्य के धड़ का चिन्ह तप्तलोहे से अंकित करने का विधान किया है, तथा मद्यपायी एवं ब्राह्मण के सुवर्ण चोरी करने पर सुरापात्र एवं कुत्ते के पैर का चिन्ह अंकित करने का विधान किया है।*229. व्यभिचारी पुरुष को लोहे की तप्त खाट पर लिटाकर लकड़ी डालकर जलाने का विधान बताया है।*230. इसके अतिरिक्त यदि वैश्य व क्षत्रिय अभिरक्षित एवं गुणवती ब्राह्मणी से मैथुन करें तो वे शूद्र के समान दण्डनीय है। अतः उन्हें तृणाग्नि से जलाना चाहिए। मनु एवं नारद के अनुसार यदि कोई नीच जाति का मनुष्य ब्राह्मण आदि उच्च जाति के व्यक्ति के साथ बैठ जाय तो उसकी कमर तप्त लौहखण्ड से दग्ध कर देनी चाहिए।*231.

कारागार (निग्रह) : धर्मशास्त्रों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि दण्ड स्वरूप बन्धन (निग्रह) की व्यवस्था भी थी। मनु का कथन है कि जो अधार्मिक हों अर्थात् चोर आदि हों, उन्हें तीन उपायों से नियमित करना चाहिए- निरोध द्वारा बन्धन तथा विभिन्न प्रकार के बधों द्वारा।*232. मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूक के अनुसार निरोध से तात्पर्य कारागार प्रवेश, बन्ध से तात्पर्य (बेड़ी, हथकड़ी) आदि के बन्धन तथा बध से तात्पर्य पीटने, हाथ पैर काटने आदि नाना प्रकार की हिंसाओं से है।*233.

---

*229. गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः ।
स्तेये च श्वपदं, कार्यं ब्रह्महण्यशिराः पुमान्।। मनुस्मृति 9/237.

*230. पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे ।
अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत ।।मनुस्मृति 8/372.

* संवत्सराभिशस्तस्य दुष्टस्य द्विगुणो दमः ।
व्रात्यया सह संवासे चाण्डाल्या तावदेव तु ।।मनुस्मृति 8/373.

*231. उभावपि तु तावेव ब्राह्मण्या गुप्तया सह ।
विप्लुतौ शूद्रवद्दण्ड्यौ दग्धव्यौ वा कटाग्निना।। मनुस्मृति 8/377.

*232. अधार्मिकं त्रिभिर्न्यायैर्निगृह्णीयात्प्रयत्नतः ।
निरोधनेन बन्धेन विविधेन बधेन च ।। मनुस्मृति 8/310.

मनु ने सभीप्रकार के कारागारों को राजमार्ग पर बनाने का विधान कियाहै, जिससे भूख प्यास से व्याकुल, दाढ़ी मूँछ आदि से विकृत पापी बंदियों को लोग प्रत्यक्ष देख सकें।*234. कुल्लूक के अनुसार ऐसा करने से अन्य लोग भयवश अपराध वृत्ति से निवृत्ति की ओर उन्मुख होगा।*235. धर्मशास्त्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि बन्धन अथवा कारागार विविध प्रकार के होते है। उदाहरणार्थ - सावधि कारागार, आजीवनकारावास, एवं निस्संग [एकाकी] कारावास। मनु के अनुसार पति से सुरक्षित ब्राह्मणी के साथ संभोग करने पर वैश्य को एक वर्ष का निग्रह दण्ड देने का विधान है।*236.

: "मृत्यु दण्ड" :

मृत्यु दण्ड दण्ड प्रक्रिया की चरमदण्ड है। सामाजिक एवं राजनैतिक दृष्टि से जघन्य अपराधियों के लिए इस दण्ड की व्यवस्था धर्मशास्त्रों से परिलक्षित होती है। मृत्यु दण्ड की व्यवस्था सामान्यतः अपराध की गम्भीरता पर निर्भर करती है। मनु ने सर्वप्रथम वाग्दण्ड, तदन्तर धिग्दण्ड तत्पश्चात् धन दण्ड औरसबसे अंत में मृत्यु दण्ड का विधान है।*237. यदि अपराधी न नियमित हो, तो ये सभी दण्ड दिये जा सकते है।*238. मनु.

---

*233. कारागार प्रवेशनेन, निगडादिबन्धनेन, करचरणच्छेदनादिनानाप्रकारहिंसनेन।
— मनुस्मृति 8/310 पर कुल्लूक की टीका।

*234. बन्धनानि च सर्वाणि राजामार्गे निवेशयेत्।
दुःखिता यत्र दृश्येरन्विकृताः पापकारिणः ।। मनुस्मृति 9/288.

*235. अन्यैरकार्यकारिभिरकार्यनिवृत्त्यर्थं दृश्येरन्।
— मनुस्मृति 9/288 पर कुल्लूक की टीका।

*236. मनु स्मृति 8/375.

*237. वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्धिग्दण्डं तदनन्तरम्।
तृतीयं धनदण्डं तु बधदण्डमतः परम् ।। मनुस्मृति 8/129.

*238. मनुस्मृति 8/130.

मनु ने सामान्यतः मृत्युदण्ड को दो भागों में विभाजित किया है {1} चित्रबध -जिसमें अपराधी को अधिक से अधिक शारीरिक कष्ट देकर मृत्यु दण्ड दिया जाता है। तथा {2} शुद्धबध- जिसमें अपराधी को किसीप्रकार का उत्पीड़न न देकर एक बार में हीमृत्यु प्रदान कर दी जाती है।[*239.] मनु ने निम्नांकित स्थितियों में मृत्युदण्ड का विधान किया है।

हत्या के लिये मृत्यु दण्ड : मनु का कथन है कि इच्छापूर्वक ब्राह्मण की हत्या करने वाले के लिए मृत्यु दण्ड दिया जाना चाहिए।[*240.] यदि शूद्र ब्राहमण को पीड़ित करे तो उसे बधदण्ड देना चाहिए।[*241.]

व्यभिचार के लिए मृत्यु दण्ड : मनु ने न चाहती हुई ब्राहमणी के साथ संभोग करने पर बध दण्ड का विधान कियाहै।[*242.] मेधातिथि ने अब्राहमण का अर्थ "क्षत्रियादि" लिया है। जबकि कुल्लूक ने दण्ड की अधिकता के कारण शूद्र लिया है, जो सर्वथा उचित प्रतीत होता है।[*243.] मनु के साथ याज्ञवल्क्य का कथन है कि यदि हीनवर्णी पुरुष यदि अपने श्रेष्ठ वर्ण की कन्या से संभोग करता है, चाहे वह सकामा हो, तो भी प्राणदण्ड देना चाहिए।[*244.] मनु, याज्ञवल्क्य, और नारद ने विभाता,

---

*239. मनुस्मृति 9/248.

*240. कूटशासनकर्तॄंश्च प्रकृतीनां च दूषकान् ।
स्त्रीबालब्राहमणघ्नांश्च हन्याद्द्विट्सेविनस्तथा ।। मनुस्मृति 9/232.

*241. ब्राहमणान्बाधमानं तु कामादवरवर्णजम् ।
हन्याच्चित्रैर्वधोपायैरुद्वेजनकैर्नृपः ।। मनुस्मृति 9/248.

*242. अब्राहमणः संग्रहणे प्राणान्तं दण्डमर्हति ।
चतुर्णामपि वर्णानां दारा रक्ष्यतमाः सदा।।मनुस्मृति 8/359.

*243. मनुस्मृति 8/359 पर मेधातिथि व कुल्लूक की टीका ।

*244. मनुस्मृति 8/366 व याज्ञवल्क्य स्मृति 2/288.

मौसी,बहिन ,बधू, गुरुपत्नी, सगोत्रा, शरणागता स्त्रियों के साथ व्यभिचार करने पर प्राण दण्ड का विधान किया है। यदि स्त्री की सम्मति हो, उसे भी प्राण दण्ड दे देनाचाहिये।*

* मनुस्मृति 11/170,171- याज्ञवल्क्य स्मृति 3/232-233,नारदस्मृति-15/73-75.

मनु ने द्विज स्त्री के साथ संभोग करने पर अन्य दण्डों के साथ मृत्यु दण्ड का विधान किया है।*245.

चोरी के लिए मृत्यु दण्ड : मनु ने चुराई गई सम्पत्ति एवं सेंध मारने के उपकरणों द्वारा चोरी प्रमाणित हो जाने पर मृत्युदण्ड का विधान किया है।*246. यहाँ तक कहते हैकि जो कोई चोर को भोजन तथा चोरी करने के उपकरण आदि दे तो राजा उसको भी बध दण्ड दें।*247. मनु ने चोरों को हाथ पैर से कुचलकर मारने की दण्ड विधि भी प्रतिपादित की है।*248. मनु के साथ साथ नारद एवं गौतम ने स्तेय अपराधके संदर्भ में एक अन्य प्रकार के मृत्यु दण्ड का विधान किया है- चोर मूसल सिर पर रखकर राजदरबार में प्रवेश करे और अपना अपराध स्वीकार करे। तत्पश्चात् राजा उस मूसल से इस प्रकार चोर पर प्रहार करे कि वह मर जाय।*249. काँटे से तौलने योग्य सोनी चाँदी आदि तथा उत्तम बस्त्र 100 पण से अधिक चुराने वाले के लिए बध दण्ड का विधान मनु ने किया है।*250. इसी प्रकार श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न स्त्रियों को, बहुमूल्य रत्नों

---

*245. मनुस्मृति 8/274.

*246. मनुस्मृति 9/270.

*247. मनुस्मृति 9/71.

*248. मनुस्मृति 8/37.

*249. मनुस्मृति 8/314. नारद स्मृति 21/46-47,गौ० ध० सू० 2/3/40-41.

*250. मनुस्मृति 7/321, मनु०.

रत्नों की चोरी करने वाले बधदण्ड का पात्र माना है।[*251.]

अन्य अपराधों में मृत्यु दण्ड : मनु के अनुसार, राजा राज्य के अन्न भण्डार, शस्त्रागार तथा देवमंदिर, तोड़ने वाले, घोड़ा हाथी और रथ चुराने वालेका बिना विचारे बध करे ।[*252.] इसी प्रकार जो मनुष्य नही जमने वाले बीज को बीज कहकर बेचे तथा अच्छे बीज में दूषित बीज मिलाकर बेचे, और सीमा को नष्ट करे, उसे विकृत बध से दण्डित करे।[*253.] मनु के मतानुसार यदि गुरु, बालक, वृद्ध, अथवाबहुश्रुत ब्राह्मण भी यदि आततायी बनकर आये तो उसे मार देना चाहिए ।[*254.] मद्यपायी, सुवर्ण चुराने वाले, गुरूपत्नी के साथ संभोग करने वाले के लिए मृत्यु दण्ड विहित हैं।[*255.]

शूद्र के अपराध में मृत्यु दण्ड : मनु का मत है कि यदि शूद्र, ब्राह्मण को कटुवचन कहे तो उसका बध कर देना चाहिए।[*256.] मनु का कथन है कि "तान् सर्वान् घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः ।"[* 257.]

:: राज्य - निर्वासन व विडम्बन ::

विडम्बन का अर्थ सामाजिक तिरस्कार है। मनु के साथ साथ याज्ञवल्क्य एवं नारद ने साहस के अपराधी ब्राह्मण को शिरोमुण्डन, नगर निर्वासन, मस्तक पर विभिन्न चिह्नों के अंकन तथा गर्दभारोहण के दण्ड का विधान किया है।[*258.] ब्राह्मण अवध्य हैं।

---

*251. मनुस्मृति 8/323,

*252. मनुस्मृति 9/280.

*253. मनुस्मृति 9/279, 9/291.

*254. मनुस्मृति 8/350.

*255. मनुस्मृति 9/242.

*256. मनुस्मृति 8/267.

*257. मनुस्मृति 9/224.

*258. मनुस्मृति ,या०स्मृति उद्धृत
स्मृति चन्द्रिका, भाग-2 पृ. 293.
नारद स्मृति 17/10.

****
* समीक्षा *
****

** प्रस्तुत अध्याय में मनु द्वारा प्रतिपादित विविध सामाजिक विषयों की विवेचना की गई है। वस्तुतः संक्रमण कालीन उस समय के भारतीय समाज की परिस्थितियों के परिवेश में इस तरह का विधानअत्यन्त आवश्यक था। मनुष्य जीवन के व्यक्तिगत एवं पारस्परिक कर्तव्या-कर्तव्यों से लेकर सम्पूर्ण सामाजिक आचरण अथवा कार्य - व्यवहार का ताना-बाना मनुस्मृति में मिलता है। पिता-पुत्र, पति-पत्नी, पुत्री,कन्या ,स्त्री एवं गुरु-शिष्य के सम्बन्धों की पूरी आचरण आश्रम व्यवस्था एवं विविध संस्कारों का प्रतिपादन अत्यन्त ही सार्थक रूपेण किया गया है। इतना हीं नही विहित विधान के विरुद्ध आचरण करने पर अपराध के अनुरूप समुचित दण्ड का प्रावधान भी मनु ने समीचीन रूप से कियाहै। मद्यपान, चोरी-डकैती, बलात्कार, व्यभिचार एवं द्यूत ﴾जुआ﴿ सट्टेबाजी इत्यादि तो वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में भी उतने ही ज्वलन्त है, जितने मनुस्मृति में प्रतिपादित है। वर्तमान में "मनुस्मृति" को लेकर विद्वज्जनों में काफी विवाद हो रहाहै। वस्तुतः इसके मूल में मनुस्मृति का एकाङ्गी मूल्यांकन है। मनु स्मृति में वर्णित "ब्राह्मण" आधुनिक जातिसूचक नहीं था बल्कि वह एक प्रकार की जीवन पद्धति का सूचक था। और समाज के दिशानिर्देशक विचारक﴾ थिन्क- टैन्क ﴿ का कार्य करता था। प्रकारान्तर से वह बुद्धिजीवीवर्ग ﴾ इन्टैलीजेन्शिया﴿ का प्रतिनिधित्व करताथा। इसी प्रकार पूरासामाजिक व्यवस्था"कार्य" पर आधारित होने से गतिशील थी । कालान्तर में इसमें शिथिलता आनेसें कई दोष उत्पन्न हो गये। अतः मनुस्मृति के सामाजिक प्रतिपाद्यों को यदि हम स्वस्थ्य मानसिकता के साथ मूल्यांकित करें तो वर्तमान संदर्भों में इसकी सार्थकता स्वतः ही सम्पुष्ट हो जायेगी ।

****

द्वितीय अध्याय

"याज्ञवल्क्य स्मृति के सामाजिक प्रतिपाद्य विषय"

द्वितीय अध्याय

याज्ञवल्क्य स्मृति के सामाजिक प्रतिपाद्य विषय और मनुस्मृति के परिप्रेक्ष्य में निरूपित विविध अपराध तथा दण्ड व्यवस्था का तुलनात्मक विवेचन.

भारतीय समाज के नियमन में तत्ववेत्ता स्मृतिकारों की अत्यन्त ही महत्वपूर्ण भूमिका रहीहै। वस्तुतः देशकाल पात्रानुसार समाज के विविध पक्षों को किसी काल विशेष में परिवर्तित परिस्थितियों में व्यवस्थित करना तात्कालिक समाज-नियन्ताओं के समक्ष एक ज्वलन्त समस्या थी। वस्तुतः "धर्म" को भारतीय सामाजिक जीवन में सबसे अधिक प्रधानता प्राप्त थी इसलिये "धर्मशास्त्र" सामाजिक ऐक्यता के सर्वाधिक के सर्वाधिक शक्तिशाली घटक सिद्ध हुए हैं। उन्होंने आर्यों के समाज को आधार दिया और सामाजिक सामञ्जस्य की सुदृढ़ प्रणाली प्रदान की। उत्तराधिकार और दीवानी तथा फौजदारी न्याय के कानून निर्धारित किए एवं जन्म से मृत्यु तक की सभी प्रमुख अवस्थाओं के नियमन के लिए विधान बनाये। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं वर्णसंकर आदि समाज के विविध वर्गों केकर्तव्यों का विस्तृत विवेचन "धर्म शास्त्रों" में मिलता है। इसी से यह भी स्पष्ट है कि "धर्मशास्त्र" में प्रयुक्त "धर्म" शब्द का अर्थ क्या है। विज्ञानेश्वर ने मिताक्षरा में वर्ण-धर्म, आश्रम-धर्म, गुण-धर्म, निमित्त-धर्म, साधारण-धर्म इत्यादि का विवेचन किया है।[1] पाश्चात्य विद्वानों ने मैक्समूलर सरीखे विद्वानों का अनुसरण करते हुए

---

1. अत्र च धर्म शब्दः षड्विध - स्मार्त - धर्म विषयः ।
   तद्यथा वर्ण-धर्मः, आश्रम-धर्मः, वर्णाश्रम धर्मः, गुणधर्म, साधारण धर्मश्चेति । — {मिताक्षरा -याज्ञवल्क्य 1/1}

समस्त भारतीय जीवन तथा विचारधाराओं को धर्म और दर्शन प्रधान माना है। ऐसी धारणा का मूल कारण धर्म के सम्बन्ध में पाश्चात्य और भारतीय दृष्टिकोणों में भिन्नता है। पाश्चात्य देशों में बहुधा मोटे रूप से धर्म अथवा'रिलीजन' ऐसे अर्थ में प्रयुक्त होताहै, जो एक प्रकार के मत दर्शन और विचारधारा का सूचक हो। इसके विपरीत भारतीय विचारधारा में धर्म मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त के कार्य कलापों, सामाजिक संगठन, व्यवहार, दर्शन, रीति-परम्पराओं, खानपान आदि समस्त प्रक्रियाओं को नियन्त्रित करता है। फलतः भारतीय विचारधारा में दण्ड और दण्ड व्यवस्था का भी इतना विशद निरूपण है और इन दोनों को आधिदैविक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण दिया गयाहै।

सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक चेतना

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में प्रतिपादित विविध अपराध एवं दण्डों का प्राविधान वैदिक ऋत् एवं सत्य पर आधारित है। याज्ञवल्क्य जैसे स्मृतिकारों के मन में वस्तुतः मानव कल्याण की भावना है। यही मानव कल्याण की भावना ही सर्वोपरि थी। अतः उसके आमुष्मिक विकास हेतु सत्य पर आधारित नैतिक विधान की परिकल्पना की गई। मानव समाज इसी आदर्श नैतिक विधान से संचालित माना गया है। डॉ० राधाकृष्णन् के अनुसार- कोई सामाजिक नियम और व्यवस्था "ऋत" से अधिक नहीं थी। परस्पर संबंधों के विकास का आधार ऋत होने से वह सामाजिक विधान बनने की ओर अग्रसर हुआ। उसमें सदाचार, आचार, परम्परा एवं व्यवहारका सम्मिश्रण हुआ। फलतः उसका अभिव्यक्तिकरण सामाजिक विधान के रूप में हुआ।[2] "ऋत" ही वैदिक नैतिकता का आधार था, उससे

---

2. डॉ. हरिहर नाथ त्रिपाठी, प्राचीन भारत में राज्य और न्यायपालिका, दिल्ली, 1965, पृष्ठ-7.

विपरीत स्थिति अनैतिक मानीगई है।

मनुष्य के तामसिक गुण उसे अनैतिक आचरणकरने पर विवश कर देते है।शांति पर्व में मानवीय पतन की इसी स्थिति का संकेत किया गया है।[3] कालान्तर में ऋत को सामाजिक सदाचरण से सम्बद्ध करदिया गया। यम की बहन यमी जब यम से सम्भोग करने की अभ्यर्थना करतीहै तब यमकहते है कि ऐसा करना "ऋत" के प्रतिकूल होगा।[4] शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि मनुष्य सत्य के अतिरिक्त कुछ न बोले।[5] बृहदारण्यकोपनिषद् के अनुसार व्यावहारिक जीवन में सत्य एवं धर्म दोनो समान है। उसमें असत्य से सत्य कीओर अन्धकार से प्रकाश की ओर और मृत्यु से अमरता की ओर ले जाने की प्रार्थनाकी गई है।[6] पारलौकिक जीवन के दुःखद पक्ष की कल्पना जहाँ नरक के रूप में की गई, वहीं उसके सुखद पक्ष की कल्पना स्वर्गके रूप में की गई तथा उनका सम्बन्ध क्रमशः पाप एवं पुण्य से जोड़ा गया। नरक के प्रभूत भय एवं स्वर्ग की अदम्य लालसा के वशीभूत होकर पाप के लिए प्रकट की हुई पश्चाताप की भावना ही कालान्तर में स्मृति कारों के प्रायश्चित विधान के मूल में प्रतीत होतीहै। बदले हुए सामाजिक सन्दर्भों एवं परिवेश के अनुरूप यह विधान नितान्त समीचीन भी थे। इसीलिए याज्ञवल्क्य और धर्म सूत्रों में प्रायः प्रायश्चित को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया गया है।[7]

मानवीय सचेतनता और ज्ञानवृद्धि के साथ जहाँ सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्रों में उत्तरोत्तर विकास होता रहा वहीं मनुष्यों में दुष्प्रवृत्तियों के फलस्वरूप अपराधों की संख्या और विधियों में भी वृद्धि होती गई। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सभ्यता और संस्कृति अपराधी प्रवृत्ति को बढ़ावा देती हैं।

---

3. महाभारत शान्तिपर्व -59/16-33.
4. ऋग्वेद 10/10/4
5. अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति। स वै सत्यमेव वदेत्॥ शत० ब्रा०1/1/1/1,5
6. बृ०उ01/4/14 तथा1/3/28-तदेतानि जपेदसतो मा सद्गमय। तमसोमा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमयेति॥
7. याज्ञवल्क्य ने अलग से प्रायश्चित्त अध्याय की योजना की है।

याज्ञवल्क्य स्मृति में प्रतिपादित सामाजिक ,सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना तत्कालीन समाज के परिवेश से पूर्णतः अनुप्राणित थी । अतः स्मृतिकार द्वारा स्वतः ही समाज के विविध पक्षों का चित्रण हुआ है। समाज मुख्यतः ब्राह्मण , क्षत्रिय , वैश्य, शूद्र आदि चातुर्वर्ण्य व्यवस्था पर आधृत था। अतः सभी वर्ण विशेषके स्वभाव अथवा प्रकृति के अनुसार याज्ञवल्क्य ने कर्म विधान किया था और तदनुसार निर्धारित वृत्ति के अनुरूप व्यवहार न करने पर यथोचित दण्ड की भी व्यवस्था की हैं। द्विजातियों के लिए वेद की महत्ता पर विशेष बल दिया गया है।[8] और यज्ञ ,तपस्या तथा शुभ कार्मों में वेद को ही परम हित-कारी माना है।[8] जो वैदिक आर्य संस्कृति के प्रति स्मृतिकार की अवधारणाका द्योतक है। यहाँ द्विजातियों का तात्पर्य ब्राह्मण,क्षत्रिय ,वैश्य से है चूँकि पहले वे माता से जन्म लेते है और उपनयन के समय मौञ्जि मेखला के बाँधे जाने पर दूसरा जन्म लेते है। इसप्रकार इन्हें द्विज कहा जाता है। इस प्रकार इन्हें द्विज कहा जाता है। कालान्तर में यह शब्द केवल ब्राह्मणों के लिए रूढ़ हो गया ।[9] द्विजों को न केवल स्वाध्याय बल्कि धन-धान्य से पूर्ण पृथ्वी का दान देने का निर्देश स्मृतिकार ने बड़े सुन्दर ढंग से दिया है तथा इस प्रकार की गई उत्कृष्ट तपस्या के फलस्वरूप ही तद्विषयक फल प्राप्ति का हेतु भी बताया हैं।[10] इस उद्धरण में स्वतः ही तत्कालीन कृषि की समृद्ध स्थिति की सूचना उपलब्ध हो जाती है। द्विजों के स्वाध्याय एवं कठिन परिश्रम द्वारा ज्ञानार्जन करना समाज की शिक्षा दीक्षा के प्रति स्मृतिकार की गम्भीरता को प्रदर्शित करता है। इतना ही नहीं समाज के आध्यात्मिक उत्थान के प्रति भी उनकी दृष्टि पर्याप्त सतर्क थी । वैयक्तिक चरित्र निर्माण के अलावा मनुष्य केविविध

---

8. यज्ञानां तपसां चैव शुभानां चैव कर्मणाम् ।
वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयस करःपरः ।। याज्ञ०स्मृति 1/40.

9. मातुर्यदग्रे जायन्ते, द्वितीयं मौञ्जिबन्धनात् ।
ब्राह्मण क्षत्रिय विशस्त स्मादेते द्विजा स्मृताः ।। 1/39 {वही}

10. से तृपनास्तर्पयन्त्येनं सर्वकाम फलैःशुभैः ।
यं यं क्रतुमधीते च तस्य तस्याप्नुयात्फलम् ।। याज्ञ०स्मृति 1/47.
त्रिवित्त पूर्ण पृथिवी दानस्य फलमश्नुते ।
तपसश्च परस्येह नित्यं स्वाध्याय वान्द्विजः।। याज्ञ०स्मृति 1/48.

सामाजिक कार्यकलापों को भी स्मृतिकार ने सम्यक् कल्याणकारी व्यवस्था दी है। वैवाहिक सम्बन्धों के साथ ही अनुलोम और प्रतिलोम विवाह द्वारा उत्पन्न सन्तानों की भी सामाजिक व्यवस्था के निदर्शन मिलते है, जैसे कि शुद्ध वर्ण के पुरुषों द्वारा सवर्णा स्त्रियों से उत्तम विवाह के उपरान्त उत्पन्न पुत्र सवर्ण अर्थात् माता-पिता की शुद्ध जाति के होते हैं। ब्राह्मण द्वाराविवाहिता क्षत्रिया पत्नी से उत्पन्न पुत्र मूर्धावसिक्त कहलाता है और वैश्य जाति की पत्नी से उत्पन्न पुत्र अम्बष्ठ । शूद्रा पत्नी से उत्पन्न पुत्र निषाद या पाराशव कहलाता है। क्षत्रिय पुरुष द्वारा विवाहिता वैश्या और शूद्रा पत्नियों से उत्पन्न पुत्र क्रमशः माहिष्य और उग्र कहे जाते हैं। वैश्य शूद्रा पत्नी उत्पन्न पुत्र करण कहलता है। इस प्रकार मूर्धावसिक्त, अम्बष्ठ, निषाद, माहिष्य उग्र तथा करण ये छः अनुलोमज पुत्र कहे गये है।[11] और सूत , वैदेहक, चण्डाल, मागध, क्षत्तार और आयोगव ये छःप्रति--लोमज पुत्र कहे गये है। इन्हें निन्दित गया है।[12] इन उद्धरणों से जहाँ समाज के विविध वर्णों के पारस्परिक सम्बन्धों में उन्मुक्त समागम का परिचय मिलता है, वहीं एक नियन्त्रण की लक्ष्मण रेखा की ओर भीस्पष्ट संकेत मिलता है। धर्म के विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य ने बड़ी विशद व्याख्या प्रस्तुत की है । जिसमें प्रायः जीवन की सभी मानवीय प्रक्रियाओं का समावेश देखने को मिलता है। देशकाल के अनुरूप विधिपूर्वक योग्य व्यक्ति को दिया गया द्रव्यादि दान धर्म के एक लक्षणों में गिना गया है।[13] वेद धर्मशास्त्र, सज्जनों के आचरण,

---

11. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/90, 1/91, 1/92.
12. माहिष्येण करण्यां तु रथकारः प्रजायते ।
    असत्सन्तस्तु विज्ञेयाः प्रतिलोमानुलोमजाः ।। याज्ञ० 1/95.

13. देशे काले उपायेन द्रव्यं श्रद्धा समन्वितम् ।
    पात्रे प्रदीयते यत्तत्सकलं धर्म लक्षणम् ।। याज्ञवल्क्य स्मृति 1/6.

अपने आत्मा के अनुकूल (उत्तम) कार्य तथा विवेक पूर्ण संकल्प से उत्पन्न हुई इच्छा ये सब धर्म का मूल कहे गये हैं।[14] योग अर्थात् बाह्य चित्त वृत्ति के निरोध द्वारा आत्मा का यथातथ्य बोध करना यज्ञानुष्ठान आचार इन्द्रियनिग्रह, अहिंसा, दान, वेदाध्ययन और (पुण्य) कर्मों से श्रेष्ठ कहा गया है।[15] धर्म के व्याख्याकारों के विषय में भी स्मृति-कार ने बड़ी स्पष्ट व्यवस्था दी है। उनके अनुसार वेद और धर्म को जानने वाले चार पुरुषों की या तीन विद्याओं के ज्ञाता तीन ही पुरुषों की पर्षत होती है। वह (पर्षत) जो भी कहे वह धर्म होता है। इसके अलावा अध्यात्म ज्ञान में निपुणतम एक ही व्यक्ति जो कुछ कहता है, वह धर्म होता है।[16]

इसप्रकार हम देखते है कि याज्ञवल्क्य स्मृति में संस्कृति के प्रमुख आधार स्तम्भों -सामाजिक आचरण, आध्यात्मिक धार्मिक अवधारणाओं आदि का समीचीन निदर्शन प्राप्त होता है। संक्रान्ति और संकरण के काल में निःसन्देह स्मृतिकार तत्कालीन युग की सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक चेतना से पूर्णतः अभिभूत थे और उन्हें सुनियन्त्रित युगानुरूप व्यवस्था देने में वे पूर्णतः सफल भी हुए। निश्चय ही उनकी चिन्तनशील मनीषा ने व्यक्ति व समाज के कल्याणार्थ प्रभावी एवं दूरगामी योजना बनाई थी।

---

14. श्रुति – स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
    सम्यक्संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम् ।। याज्ञ01/7.

15. इज्याचार दमाहिंसा दानस्वाध्याय कर्मणाम् ।
    अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ।। याज्ञ01/8.

16. चत्वारो वेद धर्मज्ञाः पर्षत्त्रैविद्यमेव वा ।
    सा ब्रूते यं स धर्मः स्यादेको वाऽध्यात्मवित्तमः।। याज्ञ01/9.

मनुस्मृति के परिप्रेक्ष्य में निरूपित विविध अपराध तथा दण्डों की व्यवस्था का तुलनात्मक विवेचन

प्राचीन भारत में अपराध की अवधारणा को उचित रूप से समझने के लिए आवश्यक है कि हम यह देखें कि अपराध का "पाप" अथवा "पातक" से क्या सम्बन्ध था ? काणे महोदय के अनुसार — "पाप या पातक ऐसा शब्द है जिसका आचार शास्त्र की अपेक्षा धर्म से अधिक सम्बन्ध है।" सामान्यतः ऐसा कहा जा सकता है कि यह एक ऐसा कृत्य है जो ईश्वर या उसके द्वारा प्रकाशित किसी व्यवहार (कानून) के उल्लंघन अथवा जान बूझकर उसके विरोध करने से उद्भूत होता है। यह ईश्वर की उस इच्छा का विरोध है जो किसी प्रामाणिक ग्रन्थ में अभिव्यक्त रहती है अथवा यह उस ग्रन्थ में पाये जाने वाले नियमों के पालन में असफलता का परिचायक है।[17] प्राचीन भारतीय दण्ड शास्त्र अपराध एवं पाप में एक तारतम्य स्थापित करता है, क्योंकि कानून ही धर्म था । अतः समाज विरोधी आचरण जहाँ विधि का उल्लंघन करने के कारण अपराध था, वहीं धर्म के विरुद्ध होने के कारण पाप अथवा "पातक" है। हिन्दू विधि शास्त्र में अपराध तथा पाप के मध्य स्पष्ट विभाजन रेखा खींचना सम्भव नहीं है, क्योंकि अपराध से व्यक्ति की मुक्ति दण्ड स्वयम् एवं प्रायश्चित दोनों के द्वारा होती थी । यह हिन्दुओं की मूलभूत धार्मिक तथा सामाजिक अवधारणाओं का परिणाम है। प्राचीन भारतीय विचारकों ने मनुष्य के जीवन का चरम उद्देश्य मोक्ष को पर्याप्त बताया, जिसे वह धर्म के अनुकूल आचरण करके प्राप्त कर सकता था। दण्ड से उसके अपराध की मुक्ति होती है और प्रायश्चित्त उसे पवित्र कर मोक्ष का अधिकारी बनाता है। हिन्दू विचारधारा पारलौकिक लक्ष्य को सदैव दृष्टि में रखकर जीवन-यापन करने को कहती है। कर्म एवं पुर्नजन्म का सिद्धान्त हिन्दू धर्म का आधार है।

---

17. पी०वी०काणे , धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-3 पृष्ठ 105.

स्मृतियों के अनुसार किया हुआ कर्म कभी निष्फल नहीं होता है। मनुस्मृति के अनुसार यदि अधर्म का फल स्वयं अधर्म करने वालों को नहीं मिलता तो उसके पुत्रों को मिलता है और पुत्रों को नहीं मिलता तो पौत्रों को अवश्य मिलता है, क्योंकि किया गया अधर्म कभी निष्फल नहीं होता है।[18] याज्ञवल्क्य की अवधारणा है कि मनुष्य अपने स्वभाव के कारण सत्कर्मों से विमुख होता है और पापपूर्ण कर्म में निरत रहता है। जिसके फलस्वरूप वह कष्टमय (कष्टमय) नरक (दुःख) भोगता है।[19] पाप अथवा पातक ऐसे कर्म हैं जिन्हें धर्मशास्त्र वर्जित करता है। मनु की मान्यता है कि शास्त्रोक्त कर्म को न करता हुआ, शास्त्र द्वारा निन्दित कर्म करता हुआ, इन्द्रियों के विषय में आसक्त होता हुआ मनुष्य प्रायश्चित्त के योग्य होता है।[20] इस विषय में याज्ञवल्क्य का भी कथन है कि जो नित्य नैमित्तिक कर्म विहित है, उसके न करने से निन्दित कर्म के करने से तथा इन्द्रियों का संयम न रखने से मनुष्य पतित होता है। इस पतन के प्रतिकार के लिए मनुष्य को प्रायश्चित्त करना चाहिये।[21]

मनु तथा याज्ञवल्क्य दो प्रकार के पातकों का उल्लेख करते हैं— महापातक और उपपातक। प्रायः महापातक पाँच हैं। —

(1) ब्रह्म हत्या (2) मद्यपान (3) चोरी (4) गुरु पत्नी के साथ सम्भोग तथा (5) इन चारों पातकियों के साथ संसर्ग से भी महापातक लगता है।[22] जायसवाल महोदय इन पातकों में कालान्तर में होनेवाले परिवर्तनों के बारे में स्पष्ट करते हुए

---

18. मनुस्मृति 4/173.
19. याज्ञवल्क्य स्मृति 3/221 प्रायश्चित्तम् कुर्वाणाः पापेषु निरता नराः ।
अपश्चात्तापिनः कष्टान्नरकान्यान्ति दारुणान् ।।
20. मनुस्मृति – 11/44. विहित स्याननुष्ठानान्निन्दितस्य च सेवनात् ।
अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतन मृच्छति ।।
21. या० 3/219-220. तस्मात्तेनेह कर्तव्यं प्रायश्चितं विशुद्धये ।
एवमस्यान्तरात्मा च लोकश्चैव प्रसीदति ।।

22. मनुस्मृति– 11/54. * ब्रह्महामद्यपः स्तेनस्तथैव गुरुतल्पगः ।
* या०स्मृति 3/227– एते महापातकिनो यश्च तैःसह संवसेत् ।। —तथा—
** एभिस्तु संवसेद्यो वै वत्सरं सोऽपि तत्समः ।
** या०स्मृति 3/261. कन्यां समुद्वहेदेषां सोपवासामकिंचनाम् ।।

मानते है कि इनकी संख्या सात बताते है । जिनमें युगानुरूप मान्यतायें भी सम्मिलित हो चलीथी । बाद में इनकी संख्या मात्र चार रह गई थी ।[23.]

उपरोक्त पांच महापातकों के अतिरिक्त कतिपय पातक ऐसे भी होते है जो पांचों के समान होते हैं । मनु के अनुसार जाति श्रेष्ठता के लिए असत्य भाषण, राजा से चुगलखोरी, गुरू से असत्य कहना, पढ़े हुए वेद काअभ्यासका न करना ,उसका विस्मरण अथवा निन्दा करना, गवाही में असत्य कहना, मित्र की हत्या, गर्हित अथवा अभक्ष्य पदार्थों का भोजन सुरापान के समान तथा धरोहर को हड़पने बाला व मनुष्य (दास, दासी) घोड़ा, चांदी भूमि, हीरा, मणि मुक्ता चुराने के समान, सगी बहन, कुमारी, चाण्डाली, मित्र तथा पुत्र की स्त्री के साथ सम्भोग, गुरू की पत्नी के साथ सम्भोग करने के समान हैं।[24.]

याज्ञवल्क्य भी मनु के समान इन्हीं पांच प्रकार के महापातकों के समान अन्य पातकों का उल्लेख करते हैं।[25.] यथा-गुरू पर मिथ्या दोषारोपण, वेद की निन्दा, मित्र की

---

23. जायसवाल के.पी. मनु और याज्ञवल्क्य पेज- 168.

"High sins have had a fluctuating history. There were seven such offenses as evidenced by the discription of Yāska. Abortion was amalgamated with the killing of a brahmin. Then it was finally narrowed down to the theft of gold. Murder of man was converted into the murder of brahmin." p. 168.

24. मनुस्मृति 11/55-58. 25. याज्ञवल्क्य स्मृति ---

3/228गुरूणामध्यधिक्षेपो वेदनिन्दा सुहृद्वधः । ब्रह्महत्या समं ज्ञेयमधीतस्य च नाशनम् ।।

3/229. निषिद्धभक्षणं जैह्यमुत्कर्षे च बचनोऽनृतम् ।रजस्वलामुखास्वादः सुरापान समानि तु ।।

3/230. अश्व रत्न मनुष्य स्त्री भू धेनु हरणं तथा। निक्षेपस्य च सर्वं हि सुवर्णस्तेयसम्मितम् ।।

3/231. सगोत्रासु सुतस्त्रीसु गुरूतल्प समं स्मृतम् । सखिभार्या कुमारीषु स्वयोनिष्वन्त्यजासु च

/232. पितुः स्वसारं मातुश्च मातुलानी स्नुषामपि।मातुःसपत्नीं भगिनीमाचार्य तनयां तथा

3/232. आचार्य पत्नीं स्वसुतां गच्छंस्तु गुरूतल्पगाः ।

हत्याऔर पठित वेद एवं शास्त्र का आलस्य वश विस्मरण – इन सबको ब्रह्म हत्या के समान समझना चाहिए । निषिद्ध (लहसुन आदि) पदार्थों का जान बूझकर भक्षण, कुटिलता, उत्कर्ष प्राप्ति केलिए असत्यभाषण और रजस्वला स्त्री के मुख का चुम्बन– ये सुरापान के समान होते है। (ब्राह्मण के) घोड़ा, रत्न, मनुष्य, स्त्री, भूमि और गाय तथा निक्षेप का अपहरण – ये सभी सोने की चोरी के समान होते है । मित्र की पत्नी, अविवाहित कन्या, भगिनी, चाण्डाली, समानगोत्र वाली स्त्री और पुत्रवधू, पिता की बहन (बुआ) माता, मामी स्नुषा (पतोहू) सौतेली माता, बहन, आचार्य की पुत्री, तथा पत्नी या अपनी पुत्री से सम्भोग गुरु पत्नी के साथ सम्भोग के समान होता है। इन स्मृतिकारों ने उपपातकों की एक लम्बी सूची दी है। मनु के अनुसार गो बध, अयाज्य याजन, परस्त्री गमन, आत्म-विक्रय, गुरु माता-पिता का परित्याग, ब्रह्मयज्ञ, स्मृति अग्नि, पुत्र का त्याग, परिवत्ति तथा परिवेत्ता (मनुस्मृति 3/171) को कन्या दान देना और यज्ञ कराना, कन्या दूषण, सूद लेना, व्रत कोनष्ट करना, तड़ाग उद्यान, स्त्री और संतान को बेचना, ब्रात्यभाव, सब आकरों में आज्ञा से अधिकार लेना, औषधियों की हिंसा, स्त्री की कमाई खाना, व्यभिचार कर्म करना, वशीकरण, ईंधन के लिए हरेपेड़ों को गिराना, निन्दित पदार्थों को इच्छानुसार खाना, अधिकार होने पर भी यज्ञ नहीं करना, चोरी करना, ऋण नहीं चुकाना, निन्दित शास्त्रों को पढ़ना, और कुशीलव का कर्म करना, धान्य सुवर्ण आदि धातु तथा पशुओं की चोरी करना, मद्यपान करने वाली (स्त्री) स्त्री से सम्भोग करना, स्त्री, शूद्र वैश्य तथा क्षत्रिय का बध करना एवं नास्तिकता ये उपपातक हैं।[26] परन्तु याज्ञवल्क्य की सूची इससे विस्तृत है । कई उपपातक दोनों की सूची में समान हैं, किन्तु कुछ अन्य उप-उपपातकों दोनों की सूची में समान है किन्तु कुछ अन्य उप-पातकों का भी याज्ञवल्क्य उल्लेख करते हैं यथा अग्निहोत्र न करना, स्वाध्याय का त्याग, घातक हथियार बनाना, न बेचने योग्य वस्तु (नमक आदि) बेचना, व्यसन (मृगया आदि) शूद्र की सेवा, नीच व्यक्ति से मित्रता,

---

26. मनुस्मृति -11/59-60.

किसी आश्रम में न रहना, दूसरे के अन्न से जीवन चलाना आदि।[27]

जहाँ तक प्राचीन भारत में अपराध की अवधारणा के विकास का प्रश्न है, यह देखने में आता है कि हिन्दू न्याय व्यवस्था प्राचीन काल से ही अपराधों को दीवानी एवं फौजदारी दो प्रकारों में विभक्त करती है। धर्म सूत्रोत्तर कालमें न्यायिक प्रक्रिया का उल्लेख व्यवहार के रूप में स्पष्ट मिलने लगताहै। इसी के साथ साथ व्यवहारपदों काविस्तृत उल्लेख भी किया गया है। श्रीयुत डा. पी. वी. काणे के अनुसार-- व्यवहार पद का अर्थ है झगड़े, विवाद या मुकदमे का विषय।[28]

काम, क्रोध, लोभ अथवा मोह से विवाद उत्पन्न होता है। स्मृतियों में व्यवहार पदों की संख्या थोड़े बहुत अन्तर के साथ अठारह बताई गयी है। मनु के अनुसार अठारह विवाद पद इस प्रकार है।[29]

(1) ऋणादान (2) निक्षेप (इसके अन्तर्गत अपनीबस्तु दूसरे के पास धरोहर रखने से उत्पन्न विवाद आते हैं) (3) अस्वामि विक्रय (4) संभूय समुत्थान (अनेक जनों द्वारा मिलकर साझे में व्यवसाय करना) (5) दत्तस्य अनपाकर्म (कोई बस्तु देकर फिर क्रोध, लोभ आदि के कारण बदल जाना) (6) वेतन न देना (7) संविद का व्यतिक्रम (कोई संविदा किसी के साथ करके उसे पूरा न करना) (8) क्रय-विक्रय का अनुशय (9) स्वामी और पशुपाल का विवाद (10) ग्राम आदि की सीमा का विवाद (11) वाक् पारुष्य (मानहानि अर्थात अपमान तथा गाली गलौच करना) (12) दण्ड पारुष्य (आक्रमण अर्थात् मारपीट करना) (13) स्तेय (चोरी) (14) साहस (डकैती, हत्या तथा अन्य प्रकार की हिंसा) (15) स्त्री संग्रहण /व्यभिचार/ (16) स्त्री पुंधर्म (17) विभाग दाय भाग (18) द्यूत और समाह्वय (जुआ तथा

---

27. गोवधो व्रात्यता स्तेय ऋणानां चान पा क्रिया ।
अनाहिताग्निताऽपण्य विक्रयः परिवेदनम् ।। या॰स्मृति 3/254.

असच्छास्त्राधिगमनमा करेष्वधिकारिता ।
भार्याया विक्रयश्चैषामे केक मुपपातकम् ।। या॰स्मृति 3/242.

28. काणे -- पूर्वकथित, भाग-2 पृष्ठ 706.

29. नारद स्मृति - 1/26.

बाजी लगाना ।[30] याज्ञवल्क्य की अवधारणा है कि यदि धर्म शास्त्र के समय के आचार के विरुद्ध पीड़ित होकर राजा से निवेदन कियाजाय तो वह व्यवहार का विषय होताहै।[31] याज्ञवल्क्य ने अर्थ-विवाद का उल्लेख किया है।[32] जिससे स्पष्ट हैकि उन्होंने अर्थ सम्बन्धी विवादों का फौजदारी विवादों से पृथक् किया होगा।

न्यायिक प्रशासन में दो मूलभूत सिद्धान्त क्रियाशील होते है। यथा अपने अपने वादे पूर्ण करना और किसी को क्षति न पहुँचाना । इसके उल्लंघन से ही विवाद उत्पन्न होते हैं ।[33]

आधुनिक अपराधीय विधि में अपराध का पाप अथवा नैतिकता से कोई संबंध नहीं है। दोनों सर्वथा भिन्न अवधारणायें हैं, किन्तु यह भेद अपेक्षाकृत बाद के समय काहै। आज भी एकही कार्य पाप तथा अपराध दोनों ही हो सकते है। यद्यपि नैतिक मान्यतायें भी सामाजिक परिवर्तनों के साथ बदलती रहती है। पारम्परिक रूप से गम्भीर अपराध जैसे हत्या, चोरी ,डकैती तथा बलात्कार इत्यादि तो सदैव ही पाप या नैतिकता से सम्बन्धित रहते हैं। जबकोई व्यक्ति जानबूझ कर, स्वेच्छापूर्वक तथा सआशय आपराधिक आचरण करता है तो वह नैतिक रूप से उसका उत्तरदायी हो रहता ही हैं।

स्मृतिकारों ने विविध अपराधों की समुचित दण्ड व्यवस्था भी धर्मशास्त्रों और स्मृतियों में दी है। मनु के अनुसार "दण्ड" का हेतु राजा है। चराचर की रक्षा के लिए

---

30. मनु स्मृति - 8/4-7

31. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/5 स्मृत्याचार व्यपेतेन मार्गेणाऽऽधर्षितः परैः ।
आवेदयति चेद्राज्ञे व्यवहार पदं हि तत् ।।

32. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/23. सर्वेष्वर्थ विवादेषु बलवत्युत्तरा क्रिया ।
आधौप्रतिग्रहे क्रीते पूर्वा तु बलवत्तरा ।।

33. त्रिपाठी हरिहर नाथ, प्राचीन भारत में राज्य और न्यायपालिका पृष्ठ 262.

भगवान् ने राजा की सृष्टि की और उस (राजा) की कार्यसिद्धि के लिए ही भगवान् ने ब्रह्म तेज से युक्त (ब्रह्मतेजोमयं) धर्म स्वरूप दण्ड की सृष्टि की है।[34]

याज्ञवल्क्य के अनुसार आदिकाल में ब्रह्मा ने दण्ड के रूपमें धर्म की ही सृष्टि की है।[35] यद्यपि राजा के द्वारा ही अपराधियों को दण्ड देने की व्यवस्था वह भी देते है। दण्ड का एक अर्थ सेना (बल) भी था जिसे राज्य के सप्तांगों अथवा प्रकृति में से एक बतायागया हैं।[36] सामान्य रूप से "दण्ड" किसी अवैध कृत्य कावैध परिणाम हैं। इसके अलावाराजा शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए अथवा आन्तरिक शान्ति एवं व्यवस्था स्थापनार्थचार उपायों काप्रयोग करते है। यथा- साम, दाम, भेद तथा दण्ड। याज्ञवल्क्य दण्ड का सावधानीपूर्वक एवं अन्तिम उपाय के रूप में ही प्रयोग की अनुमति देते हैं।[37] दण्ड की आवश्यकता महत्व, सम्यक् प्रयोग, प्रकार तथा उद्देश्यों पर स्मृतियों में प्रचुर सामग्री मिलती है। मनु ने मनुष्य को स्वभाव से ही अशुचि माना और कहा कि समस्त प्राणि जगत् दण्ड के भय से ही सन्मार्ग पर रहते हैं।[38] याज्ञवल्क्य ने भी माना है कि दण्ड के भय से ही मनुष्य अपने कर्तव्य का पालन करता रहता है और स्वधर्म से विचलित नहीं होने मत पाता।[39] मनु के अनुसार प्रजा पालन ही क्षत्रियों का सर्वश्रेष्ठ धर्म है।[40] जब कि याज्ञवल्क्य क्षत्रिय का प्रधान कार्य प्रजा पालन बताते हैं।[41]

- -

34. मनुस्मृति -07/ 3 तथा 7/14.

35. तदवाप्य नृपो दण्डं दुर्वृत्तेषु निपातयेत् ।
    धर्मो हि दण्ड रूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा।। या०स्मृति 1/354

36. मनुस्मृति -9/294.
    स्वाम्यमात्या जनो दुर्गं कोशो दण्डस्तथैव च ।
    मित्राण्येताः प्रकृतयो राज्यं सप्तांगमुच्यते ।। या०स्मृति 1/353.

37. उपायाः सामदानं च भेदो दण्डस्तथैव च ।
    सम्यक्प्रयुक्ताः सिद्ध्येयुर्दण्ड स्त्वगतिका गतिः।। या०स्मृति 1/346.

38. मनु० 7/22

39- याज्ञ० 1/354 तदवाप्य नृपो दण्डं दुर्वृत्तेषु निपातयेत्

40. मनु० 7/144.

41. याज्ञ० 1/119. प्रधानं क्षत्रिये कर्म प्रजानां परिपालनम्

न्यायपूर्क प्रजापालन के सम्बन्ध में मनु तथा याज्ञवल्क्य की अवधारणा लगभग समान है। यद्यपि मनु प्रजा की रक्षा न करने वाले राजा को अधर्म के भी छठे भाग का भागीदार मानते है।[42] याज्ञवल्क्य के अनुसार न्यायपूर्क प्रजा का पालन होने पर राजा प्रजाओं के पुण्य का छठा भाग प्राप्त करता है। अतएव भूमि आदि सभी प्रकार के दान से उत्पन्न पुण्य फल से प्रजा-पालन का फल अधिक होता है।[43] ऐसा राजा जो दण्डनीय व्यक्तियों को दण्ड नहीं देता और अदण्डनीय व्यक्तियों को दण्ड देता है, मरने के पश्चात् नरकगामी होता है।[44] याज्ञवल्क्य ऐसे राजा को देवता, राक्षस, तथामनुष्यों सहित सम्पूर्ण संसार को कुपित करने वाला बताते है।[45] यदि राजा अदण्डनीय को दण्ड देताथा तो प्रजा उससे उसका तीस गुना ले लेती थी ।[46]

प्राचीन भारतीय दण्ड अपराध विधि के सम्मुख कोई भी अदण्डनीय नहीं है। चाहे वह निर्धन हो अथवा धनी उच्च जातिका हो अथवानिम्न जाति का , स्त्रीहो अथवा पुरूष । यहाँ तक कि राजा एवं राजा के घनिष्ठ सम्बन्धी भी । यदि उन्होंने अपराध किया है तो वे भी साधारण जनों की भाँति दण्डनीय है। याज्ञवल्क्य का कथन हैकि भाई, पुत्र

---

42. मनु स्मृति - 8/304.

43. इतरेण निधौ लब्धे राजा षष्ठांशमाहरेत् ।
अनिवेदित विज्ञातो दाप्यस्तं दण्डमेव च ।।या०स्मृति-1/35.

44. मनुस्मृति -8/336.

45. यथा शास्त्रं प्रयुक्तः सन् सदेवासुरमानवम् ।
जगदानन्दयेत्सर्वमन्यथा तत्प्रकोपयेत् ।। याज्ञवल्क्य स्मृति 1/356.

46. राजाऽन्यायेन यो दण्डो गृहीतो वरुणाय तम् ।
निवेद्य दद्याद्विप्रेभ्यः स्वयं त्रिंशद् गुणीकृतम् ।। या० स्मृति-2/307.

आचार्य, आदि अर्ध्य व्यक्ति, श्वसुर अथवा मामा कोई भी यदि अपने धर्म से विचलित हो तो राजा के लिए अदण्ड्य नहीं होता ।[47]

मनु का विचार है कि राजा देश,काल, दण्डशक्ति और विधा का ठीक-ठाक विचार करके ही अपराधियों को उचित दण्ड दें ।[48] याज्ञवल्क्य अपराध, देश, समय, शक्ति आयु, कार्य और धन का पता लगाकर के ही दण्डनीय व्यक्तियों को दण्ड देने का निर्देश देते हैं।[49]

स्मृतियों में मुख्य रूप से दण्ड के चार प्रकार बताये गये है--[50] (1) धिग्दण्ड (2) वाक्दण्ड (3) अर्थदण्ड एवं (4) बध दण्ड । मनु के अनुसार राजा गुण्डियों को पहली बार अपराध करने पर वाग्दण्ड, तदनन्तर (दूसरी बार अपराध करने पर) धिग् दण्ड, तीसरी बार अर्थ दण्ड और इसके बाद बध दण्ड से दण्डित करें ।[51] यहाँ बधदण्ड से तात्पर्य प्राण दण्ड नहीं है, क्यों कि अगले ही श्लोक में मनु कहते है कि यदि राजा अथवा न्यायाधीश बध (शरीर,ताड़न, छेदन आदि) से भी इस (अपराधी को) वश में नहीं करसके तो इन चारों प्रकार के दण्डों से एक साथ उसे दण्डित करें।[52] वाग्दण्ड एवंधिग्दण्ड प्रायः समाज के बुद्धिजीवी वर्ग के लिए विशेष महत्व रखता था, परन्तु अर्थदण्ड के विषयमें मनु तथा याज्ञवल्क्य में कुछमतभेद है।मनु के अनुसार ढाई सौपणों का प्रथम साहस कहा गया है। पांच

---

47. या०स्मृति 1/358. अपिभ्राता सुतोऽर्ध्यो वा श्वसुरो मातुलोऽपि वा ।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति धर्माद्विचलितः स्वकात्।।

48. मनुस्मृति -7/16.

49. या० स्मृति-1/368. ज्ञात्वाऽपराधं देशं च कालं बलमथापि वा ।
वयः कर्म च वित्तं च दण्डं दण्ड्येषु पातयेत् ।।

50. मनुस्मृति 8/129.,
या०स्मृति-1/367. धिग्दण्डस्त्वथ वाग्दण्डो धन दण्डो बधस्तथा ।
योज्या व्यस्ताः समस्ता वा ह्यपराधवशादिमे ।।

51. मनु स्मृति 8/129./ 52. मनुस्मृति 8/130. (2) मनुस्मृति 8/138.

पाँच सौ पणों का मध्यम साहस तथा एक सहस्त्र पणों का उत्तम साहस जानना चाहिए ।[53] याज्ञवल्क्य प्रथम साहस 270 पण मध्यम साहस, 540, एवं उत्तम साहस 1080 पण बताते हैं।[3] मनु के अनुसार कार्षापण निश्चित रूप से ताँबे के होते है। मनु का कथन है कि चार सुवर्णों का एक पल, दस पलों का एक धरण, दो कृष्णल (रत्तियों) को काँटे पर रखने पर उनके बराबर एक रौप्य माषक मानना चाहिए । उन सोलह रौप्य माषकों का एक रौप्यधरण अथवा चाँदी का पुराण और ताँबे के एक कर्ष को कार्षापण जानना चाहिये ।[54] याज्ञवल्क्य भी कार्षापण को ताँबे का सिक्का बताते हैं।[55] साक्षियों से अर्थदण्ड लेने का निषेध दोनों ही स्मृतिकारों ने किया है। बध दण्ड का तात्पर्य केवल मृत्युदण्ड नहीं है, बल, ताड़न, जेल में बंद करना, बेड़ी डालना, अङ्गच्छेद तथा मृत्यु दण्ड भी आता है। मनु के अनुसार अंगच्छेद दस प्रकार का है-- उपस्थ, उदर, जीभ, हाथ, पैर, नेत्र, नासिका, कान, धन, देह, यहाँ देह दण्ड मारणार्थ हैं । अंगच्छेदन के अलावा उत्पीड़न भी दिया गया है, जो चार प्रकार का है -- (1) कशाघात (चाबुक आदि से पिटाई) (2) अवरोधन (जेल भेजकर कर्मों को नियमित करना) (3) बन्धन (बेड़ी डाल देना) (4) विडम्बन (सामाजिक तिरस्कार, मुण्डन, गर्दभारोहण, नगर भ्रमण व चिह्नांकन ।

- -

53. याज्ञवल्क्य स्मृति-1/366. साशीति पण साहस्त्रो दण्ड उत्तम साहसः ।
तदर्धं मध्यमः प्रोक्तस्तदर्धमधमः स्मृतः ।।

54. मनुस्मृति 8/135-136. पलं सुवर्णाश्चत्वारः पंच वापि प्रकीर्तितम् ।
द्वे कृष्णले रूप्यमाषो धरणं षोडशैव ते ।। /364/

55. याज्ञवल्क्य 1/364-365. शतमानं तु दशभिर्धरणैः पलमेव तु ।
निष्कं सुवर्णाश्चत्वारः कार्षिकस्ताम्रिकः पणः ।।/365/

मनु के अनुसार ब्राह्मण को बिना किसी प्रकारदण्डित किए केवल राज्य से निकाल दिया जाता है।[56] याज्ञवल्क्य का भी विचार थाकि जहाँ चोरीके अपराध में अन्य वर्गों के लोगों को विभिन्न प्रकार के शारीरिक दण्डों से दण्डित कियाजाय, वहीं ब्राह्मण के ललाट पर चिह्न बनाकर, उसे अपने राज्य से निकाल दें।[57] मनु के अनुसार — जुआड़ियों, कुशीलवों, वेदशास्त्र के विरोधियों, पाखण्डियों ,आपत्तिकाल न होने पर भी दूसरों की जीविका हरण करने वाले और मद्य बनाने वाले लोगों को राजा, राज्य से यथा शीघ्र बाहर कर दें ।[58] याज्ञवल्क्य कूट साक्ष्य देने वाले ब्राह्मण को देश से निर्वासित करने को कहते हैं।[59] इसी प्रकार कपटपूर्वक जुआ खेलने वाले कुत्ते के पंजे आदि से चिह्न से दाग कर राज्य से निर्वासित कर देनाचाहिए ।[60] जोगण के अर्थात् सब के सामूहिक धन का अधर्म पूर्वक अपहरण करे अथवा राजा द्वारायासमूह द्वारा दी गई व्यवस्था का उल्लंघन करे उसका सम्पूर्ण धन छीनकर उसे राज्य से निर्वासित कर देनाचाहिये ।[61] याज्ञवल्क्य उत्कोच या घूस लेने पर देश निष्कासन का विधान करते हैं। चोर जिस जिस अंग से जिस प्रकार चोरी करे उसके उस उस अंग को राजाकटवा दे ताकि फिर वैसा अवसर न आये ।[62]

- -

56. मनुस्मृति- 8/124.

57. याज्ञवल्क्य स्मृति-2/270. चोरं प्रदाप्यापहृतं घातयेद्विविधैर्वधैः ।
सचिह्नं ब्राह्मणं कृत्वा स्वराष्ट्राद्विप्रवासयेत् ।।

58. मनुस्मृति 9/225.

59. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/81. पृथक्पृथग्दण्डनीयाः कूटकृत्साक्षिणस्तथा ।
विवादाद् द्विगुणंदण्डं विवास्योब्राह्मणः स्मृत् ।।

60. याज्ञवल्क्य02/202. द्रष्टारो व्यवहाराणां साक्षिणश्च त एव हि ।
राज्ञा द्रव्यं हरेद्धस्तु सचिह्नं निर्वास्याःकूटाक्षोपधिदेविनः।।

61. वही - 2/187. गण द्रव्यं हरेद्यस्तु संविदं लंघयेत् च यः ।
सर्वस्व हरणं कृत्वा तं राष्ट्राद्वि प्रवासयेत् ।।

62. मनुस्मृति -8/334.

मनु औरयाज्ञवल्क्य दोनोंने ही चोरों और जेबकतरों के हाथ व पांव कटवाने की व्यवस्था दी।[63.] उन्होंने नकली सोना एवं निषिद्ध वस्तु बेचने पर भी नाक,कान काटने का विधान किया था।[64.] याज्ञवल्क्य बध के लिए शस्त्र आदि उठाने पर क्रमशः प्रथम साहस और शस्त्र छूकर छोड़ देने वाले को मध्यम साहस का आधा दण्ड देने को कहते हैं।[65.] या॰ के अनुसार किसीदूसरे का खेत, वन, गांव, बाड़ी, खलिहान, कोजलाने वाले, राजपत्नी के साथ व्यक्ति के व्यभिचार करने वालों को सरहरी में लपेट कर जलवा दिया जाय अर्थात् मृत्युदण्ड दिया जाय ।[66.] इसप्रकार मनु एवं याज्ञवल्क्य दोनों ही स्मृतिकारों ने दीवानी एवं फौजदारी के छोटे से छोटे से लेकर बड़े बड़े अपराधों के लिए अलग अलग दण्डों का बहुत विस्तार से प्रावधान किया है, इतना ही नहीं किस अपराध में कितना जुर्माना किया जाय, इसकाभी उल्लेख किया है। उक्त न्याय व्यवस्था को यदिहम आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो इसकी मुख्य विशेषतायें निम्न प्रकार की दृष्टिगत होती हैं ——

(1) वाद को निर्णय करने का अधिकार सभा को दिया गयाहै, पर दण्ड देने का अधिकारी राजा को बताया गया है।

(2) सभा सर्वोच्च न्यायालय का कार्य करती थी, परन्तु उसे कानून बनाने का अधिकार नहीं दिया गया। सभी कानून कायदे धर्मशास्त्रों केआधार पर हीनिश्चित किए जाते थे ।

(3) आजकल की भाँति न्यायालय में वकील के लिए कोई प्रावधान नहीं मिलता । "प्राड्विवाक" ही वादी और प्रतिवादी से जिरह किया करता था।

(4) दण्ड विधान न्यायोचित एवंमनोवैज्ञानिक आधार पर बनाया गया था ।

---

63. मनुस्मृति 9/276, 277 —— याज्ञवल्क्य स्मृति- 2/274.
* उत्क्षेपक ग्रन्थिभेदौ कर सन्दंश हीन कौ । कार्यौ द्वितीयापराधे करपादैक हीनकौ ।।
64. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/298 , मनुस्मृति 11/237.
65. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/215. — उद्गूर्णे प्रथमो दण्डः संस्पर्शे तुतदर्धिकः ।
66. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/282.

(5) न्यायालय का कार्य करने वाले प्रशासनिक अधिकारी ही होते थे ।

(6) प्रतीत होताहै कि बंदी गृह (जेलखाने) नहीं होते थे । इसीलिए स्मृतियों में कैद की सजा का विधान नहीं मिलता ।

(7) आजकल की भाँति "साक्षी" (गवाह) की महत्ता न्यायिक प्रक्रिया में विद्यमान थी । झूँठी गवाही या"कूट साक्ष्य" देने वालों के लिए दण्ड काविधान है ।

:: समीक्षा ::

याज्ञवल्क्य स्मृति में सामाजिक प्रतिपाद्य विषयों का विस्तार से विवेचन कियागया है+ तथा मनुस्मृति के परिप्रेक्ष्य में विविध अपराधों और उनकी दण्ड व्यवस्था का समालोचनात्मक निरूपण किया गया है। प्राचीन भारतीय दण्ड शास्त्र में स्मृतिकारों द्वारा उल्लिखित "अपराध का पाप" अथवा "पातक" से सम्बन्ध का विशेष अध्ययन किया गया । वस्तुतः स्मृतिकारों की तत्कालीन विविध सामाजिक अपराधों एवं तद्विषयक दण्डकी समुचित अवधारणा आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भी सर्वथा उपयुक्त सिद्ध हुई है। इसीलिए वर्तमान हिन्दू विधि संहिता (हिन्दू कोड) मुख्यतया याज्ञवल्क्य स्मृति पर विज्ञानेश्वर कीटीका मिताक्षरा पर ही आधारित है।

****

तृतीय अध्याय

****

मनु तथा याज्ञवल्क्य द्वारा निरूपित क्रोध प्रेरित कायिक अपराध तथा तत्सम्बन्धित दण्डों की विवेचना

तृतीय अध्याय

मनु तथा याज्ञवल्क्य द्वारा निरूपित क्रोध से प्रेरित कायिक अपराध तथा तत्सम्बन्धित दण्डों : की विवेचना :

मानव के सहज आन्तरिक विकारों में क्रोध अन्यतम है। जिस प्रकार काम से दस प्रकार[1] के व्यसन उत्पन्न होते है। उसी प्रकार क्रोध से आठ प्रकार के विभिन्न व्यसन उत्पन्न होकर मानव को कायिक अपराध करने के लिए उत्प्रेरित करते रहते है। क्रोध से उत्पन्न होने वाले आठ प्रकार के अधोलिखित[2] व्यसन (दुर्गुण) मनु ने गिनाये हैं।

"पैशुन्यं साहसं द्रोहं ईर्ष्यासूयार्थ दूषणम् ।
वाग्दण्डजञ्च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः।। मनु07/48.

अर्थात् किसी का अज्ञात दोष प्रकट करना, साहस अर्थात् बुरे कामों में हिम्मत दिखलाना, द्रोह, ईर्ष्या (दूसरे के गुणों को न सहना), असूया (दूसरे के गुणों में दोष देखना), अर्थदान (अग्राह्य द्रव्य लेना और क्षम प्रत्य न देना), कठोर भाषण, (अपशब्द गाली बकना), क्रूर ताड़न ये आठ क्रोध से उत्पन्न व्यसन है। इन व्यसनों में से अधोलिखित तीन क्रोधोत्पन्न व्यसन विशेष कष्ट प्रद हैं।

"दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थ दूषणम् ।
क्रोधजेऽपिगणेके विधात् कष्टमेतत्त्रिकं सदा ।। (मनु07/51)

अर्थात् क्रोध से किसी पर दण्ड प्रहार करना, क्रूर बचन कहना (गाली देना) और अर्थ अपहरण करना । ये तीन व्यसन क्रोधोत्पन्न व्यसनों में विशेष कष्टप्रद हैं।

---

1. मनुस्मृति 7/45.. दशकामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च ।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।।

2. मनुस्मृति 7/48..

उपर्युक्त तीनों व्यसनों से क्रोधोत्पन्न कायिक अपराध समाज में प्रायः होते रहते है जिनके सम्बन्ध में मनु और याज्ञवल्क्य दोनों ने अपनी अपनी दृष्टि से गम्भीर विचार किया है, जिनका संक्षेप में यहाँ विवेचन कियाजा रहा है ---

किसी के शरीर पर लाठी या दण्ड से प्रहार करना --

यदि कोई क्रोध से जिस किसी अंग से ब्राहमण को मारता है, तो मनु के अनुसार उसका वही अंग काट देना चाहिये[3.] यदि कोई क्रोध से ब्राहमण को मारने के लिये क्रोध से लाठी या डण्डे से मारता हो तो उसका वह हाथ काट लेना चाहिए[4.] किसी ब्राहमण को हाथ से दण्ड प्रहार के अपराध पर याज्ञवल्क्य ने मनु द्वारा विर्दिष्ट हाथ काटने की अपेक्षाकृच्छ्र (डण्डा उठाने पर) अतिकृच्छ्र (लाठी डण्डा मार देने पर) तथा कृच्छ्रातिकृच्छ्र (डण्डा मार कर रूधिर निकाल देने पर) व्रत करने की दण्ड की व्यवस्था दी है।

"विप्रदण्डोद्यमे कृच्छ्रस्त्वतिकृच्छ्रो निपातने ।

कृच्छ्रातिकृच्छ्रोऽस्तक्पाते कृच्छ्रोऽभ्यन्तरशोणिते ।। या०3/292.

यदि कोई शूद्र जान बूझ कर ब्राहमण को क्रोध से मारपीट कर उत्पीड़ित करता है, तो राजा ऐसे सताने वाले शूद्र को छेदनताड़न और प्राणनाशक विविध कठोर दण्डों से दण्डित करे[5.] ऐसी मनु की कठोर दण्ड व्यवस्था है। याज्ञवल्क्य ने भी इस अपराध के सम्बन्ध में दण्ड की व्यवस्था में मनु की तरह का परिचय देते हैं।

विप्रपीडाकरं छेद्यमङ्गम ब्राहमणस्य तु ।

उद्गीर्णे प्रथमो दण्डः संस्पर्शे तु तदर्धिकः ।। (या०1/215)

ब्राहमण को पैर से प्रहार करना -- यदि कोई समाज का निम्न वर्ण का व्यक्ति किसी ब्राहमण को क्रोध से हाथ से मारता है तो उसके

---

3. मनुस्मृति 8/299 येन केनचिदङ्गेन हिंस्याच्चेच्छ्रेष्ठमन्त्यजः ।
छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम् ।।

4. मनु08/280. पाणिमुद्यम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति। पादेन प्रहरन्कोपात्पादच्छेदनमर्हति ।।

5. ब्राहमणान्बाधमानं तु कामादवरवर्णजम्। हन्याच्चित्रैर्वधोपायैं रुद्वेजन करैर्नृपः ।। मनु09/248.

हाथ काट डालना , यदि लात मारता है तो इस अपराध के लिए मनु ने उसके पैर काट डालने की कठोर दण्ड व्यवस्था दी है।[6] जबकि इस सम्बन्ध याज्ञवल्क्य भी मनु के समान[7] कठोर प्रतीत होते है, तथापि ब्रम्हहत्या जैसे अपराध में रहस्य प्रायश्चित[8] बताने से उनका ग्राह्य या पैर प्रहार करने के अपराध में दण्ड विषयक उदार दृष्टिकोण का अनुमान लगाया जा सकता है।

<u>अंग भंग करना</u> — यदि क्रोध से कोई किसी पर दण्ड या अस्त्र प्रहार से खाल काट कर खून,मांस निकालकर अंग भंग करता है तो मनु ने सजातीय का खाल और खून निकालने पर 100 पण जुर्माना, मांस काटने पर 6 निष्क और हड्डी तोड़ने पर अपराधी को देश से निकाले जाने की दण्ड व्यवस्था निर्धारित की है।[9] याज्ञवल्क्य अंग-भंग करने के अपराध का स्पष्ट उल्लेख न कर मार कर अस्थि रुधिर निकाल देने अथवा चोट के स्थल पर खून आ जाने पर मनु के समान उपरिनिर्दिष्ट आर्थिक जुर्माना न कर इस अपराध के लिये प्रायश्चित स्वरूप अपराधी को कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत[10] का विधान बताते है।

<u>हाथ से केश, पैर, गर्दन, अण्डकोश खींचना</u> — यदि क्रोध वश कोई शूद्र किसी ब्राह्मण की चोटी या केश पकड़कर खींचता है तो मनु इस अपराध की कठोर दण्ड व्यवस्था में राजा को बिना विचार किये उस शूद्र के दोनों

---

6. पाणिमुद्यम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति ।
पादेन प्रहरन्कोपात्पादच्छेदन मर्हति ॥ मनु0 8/280.

7. याज्ञवल्क्य दण्डपारुष्य-19/215--- विप्रपीडाकर छेद्यमंगमब्राह्मणस्य तु ।

8. याज्ञवल्क्यस्मृति 3/301 त्रिरात्रोपोषितो जप्त्वा ब्रह्महा त्वघमर्षणम् ।
अन्तर्जले विशुद्ध्येत दत्त्वा गां च पयस्विनीम ॥

9. मनुस्मृति 8/284. त्वग्भेदकः शतं दण्ड्यो लोहितस्य च दर्शकः ।
मांसभेत्ता तु षण्निष्कान् प्रवास्यस्त्वस्थिभेदकः ॥

10. मनु0 8/288. स्यात् कृच्छ्रातिकृच्छ्रोऽसृक्पाते कृच्छ्रोऽभ्यन्तरशोणिते ॥

हाथ काटने का निर्देश देते है[11.] यही दण्ड विधान उन्होंने ब्राह्मण के पैर, दाढ़ी, गर्दन, एवं अण्डकोश शूद्र द्वारा हाथ से खींचने पर बताया है।

जबकि याज्ञवल्क्य ने इस सम्बन्ध में मनु जैसीकठोर दण्ड व्यवस्था न ग्रहण कर बलपूर्वक पैर, केश, वस्त्र आदि खींचने में दस पण का जुर्माना और पीड़ा पहुँचाते हुए वस्त्र से बाँधकर, पैर से मारने पर अपराधी को सौ पण का अर्थदण्ड निर्धारित कियाहै।

वस्त्रे पादकेशांशुककरोल्लुन्चनेषु पणान्दशः ।

पीडाकर्षांशुकावेष्टपादाध्यासे शतं दमः ।। या0 व्यवहारा:
--दण्डयारूप्य 19/217.

कठोर भाषण, अपशब्द कहना या गाली देना -- यदि क्रोधावेश में कोई क्षत्रिय ब्राह्मण को कटुवचन या अपशब्द सुनाता है तो उसे सौ पण, और वैश्य यदि कठोर संभाषण (गाली) देकर बात करता है तो उसे 150पण या 200 पण और यदि शूद्र अपशब्द बकता है तो उसको देहदण्ड (प्राणदण्ड) देने का विधान मनु ने निर्दिष्ट किया है।

शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति ।

वैश्योऽप्यर्धशतं द्वे वा शूद्रस्तु वधमर्हति ।।मनु0 8/267

याज्ञवल्क्य ने इस प्रकार कठोर सम्भाषण पर उत्तम साहस का दण्डविधान निर्दिष्ट किया है।[12.] ब्राह्मण क्षत्रिय से यदि वैसी कठोर बात कहे तो उसे 50 पण, वैश्य से कटु वचन बोलने पर 25 पण और शूद्र से कटु संभाषण पर उसे 12 पण दण्ड देने का निर्देश मनु ने दिया है।[13.] यदिसमाज के तीन वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) लोग परस्पर

---

11. मनुस्मृति 8/283. केशेषु गृह्णतो हस्तौ छेदयेदविचारयन् ।
पादयोर्दाढिकायां च ग्रीवायां वृषणेषु च ।।

12. याज्ञवल्क्य व्यवहाराध्याय, वाक्पारूष्यम् 18/211.
त्रैविद्यनृपदेवानां क्षेप उत्तम साहसः ।
मध्यमो जातिपूगानां प्रथमो ग्राम देशयोः ।।

13 -

एक दूसरे से कटु वचन कहें तो 12 पण और अवाच्य वचन बोले तो पूर्वोक्त दण्ड का दुगना दण्ड देने योग्य होता है- समवर्णे द्विजातीनां द्वादशैव व्यतिक्रमे ।

वादेष्ववचनीयेषु तदेव द्विगुणं भवेत् ।। मनु08/269.

किन्तु यदि शूद्र ,ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को पापी आदि कहकर गाली देता है तो वह जिह्वाछेदन का दण्ड पायेगा, क्यों कि उसकी उत्पत्ति जघन्य स्थान से हैं ।

एकजातिर्द्विजातींस्तु वाचयादारुणया क्षिपन् ।

जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदं जघन्यप्रभवो हि सः।।मनु08/270

यदिशूद्र क्रोध अथवा द्रोह से ब्राह्मण आदि द्विजातियों का नाम और जाति ग्रहण पूर्वक कटुवचन कहे तो मनु[14] ऐसे अपराधी के मुख में दस अंगुल की जलती लोह शलाका डालने का निर्देश किया है।

ब्राह्मण-क्षत्रिय यदि परस्पर को पापी कहकर गाली दें तो नीतिज्ञ[15] राजा ब्राह्मण का प्रथम साहस और क्षत्रिय को मध्यम साहस दण्ड करें। वैश्य और शूद्र भी यदि इस प्रकार परस्पर गाली दें वह कहासुनी करें तो तथा इन्हें भी पूर्वोक्त दण्ड की व्यवस्था करें।[16]

जो अपने माता पिता,पत्नी,भाई, बेटे और गुरु को गाली आदि कहकर कटु वचन कहे या गुरु का सम्यक् सम्मान न करें तो ऐसे अपराधी को मनु द्वारा एक सौ पण का दण्ड विधान निर्धारित किया गया है।

मातरं पितरं जायां भ्रातरं तनयं गुरुम् ।
आक्षारयञ्छतं दाप्यः पन्थानं चाददद्गुरोः।। मनु0 8/275.

---

14. मनु08/271. नामजातिग्रहं त्वेषामभिद्रोहेण कुर्वतः ।

निक्षेप्यो योमयः शङ्कुर्ज्वलन्नास्ये दशांगुलः ।।

15. मनु08/76. ब्राह्मण क्षत्रियाभ्यां तु दण्डः कार्यो विजानता ।

ब्राह्मणे साहसः पूर्वः क्षत्रिये त्वेव मध्यमः ।।

16. मनुस्मृति 8/277.

यदि वास्तव में कोई काना लंगड़ा है या उसी प्रकार का अन्य अंगभंग वाला है, उसे वैसा कहकर चिढ़ाने या कटु सम्बोधन करने वाले को कम से कम कार्षापण दण्ड देने का मनु ने निर्देश किया है।

काणं वाप्यथवा खञ्जमन्यं वापि तथाविधम् ।
तथ्येनापि ब्रुवन्दाप्यो दण्डं कार्षापणावरम् ।।मनु08/274.

यदि कोई शूद्र क्रोध अथवा मिथ्या ज्ञानाभिमानी से किन्हीं ब्राह्मणों को धर्मोपदेश करता है तो राजा उसके मुँह और कान में खौलता हुआ तेल डलवा दें। जैसा कि मनु ने निर्दिष्ट किया है।

धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्य कुर्वतः ।
तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः।। मनु08/272.

इसी प्रकार यदि कोई किसी की विद्या, देश, जाति और शारीरिक क्षमता को घमण्ड से झूठ बताते हुये कठोर सम्भाषण करे तो मनु ने उसे दो सौ पण दण्ड देने की व्यवस्था निर्धारित की है।[17]

मनु के समान किन्तु याज्ञवल्क्य ने भी क्रोध प्रेरित वाक्पारुष्य सम्बन्धी विभिन्न अपराधों के अनुकूल दण्ड निर्धारित किये है। वर्णों की प्रतिलोमता से कटु संभाषण पूर्ण दोषारोपण करने पर याज्ञवल्क्य ने सम्भाषण कर्ता पर दूना तिगुना दण्ड निर्धारित किया है जबकि वर्णों की अनुलोमता से [बड़ी जाति वाले पर] मिथ्यारोप लगाये तो वर्णों की अनुलोमता से आधा दण्ड कम होता जाता है।[18] इसी प्रकार याज्ञवल्क्य ने किसी

---

17. श्रुतं देशं च जातिं च कर्म शारीरमेव च ।
 वितथेन ब्रुवन्दर्पाद्दाप्यः स्याद्द्विशतं दमम् ।। मनु08/273.

18. याज्ञवल्क्य वाक्पारुष्य 18/207,
 प्रातिलोम्यापवादेषु द्विगुणात्रिगुणा दमाः ।
 वर्णानामानुलोम्येन तस्मादर्धार्धहानितः ।।

विकलेन्द्रिय और रोगी को सच्चे या झूठे निन्दापरक कटु वचनों से आक्षेप करने पर आक्षेप कर्ता को साढ़े तेरह पण का दण्ड का विधान याज्ञवल्क्य ने निश्चित किया है।[19.] इसी प्रकार यदि कोई किसी से उसकी माँ या बहिन को जार कहकर गाली देता है तो याज्ञवल्क्य ने गाली देने वाले से पच्चीस पण का दण्ड देनका विधान सुनिश्चित किया है।[20.]

हीनवर्ण की स्त्रियों के विषय में ऐसी गाली देने पर उपरोक्त दण्ड का आधा और उत्तम वर्ण की परस्त्री के लिए कटु अश्लील सम्भाषण करने पर दूना दण्ड याज्ञवल्क्य ने निर्धारित किया है। इसी प्रकार वर्ण और जाति की उच्चता और निम्नता का विचार करते हुये दण्ड देना चाहिये ।[21.] यदि कोई क्रोधवश किसी की बाहु, गर्दन, आँख, हड्डी, तोड़ने की धमकी देकर कटु सम्भाषण किसी से करता है तो उसे सौ पण का और यदि पैर नाक, कान, और हाथ तोड़ने की धमकी दे तो उसका आधा अर्थात् पचास पण दण्ड देने का विधान याज्ञवल्क्य ने निर्धारित किया है।[22.] यदि अशक्त व्यक्ति इस प्रकार का कटु वचन बोले तो उसे दस पण का दण्ड देना चाहिये और यदि शक्तिशाली व्यक्ति दुर्बल व्यक्ति से ऐसा कटु वचन कहे तो उसे सौ पण देने का विधानयाज्ञवल्क्य ने बताते हुये उस दुर्बल व्यक्ति की रक्षा के लिए उससे प्रतिभू {जामिन} उपस्थित कराने का निर्देश दिया ।[23.]

---

19. सत्यासत्यान्यथा स्तो त्रैर्न्यूनाङ्गेन्द्रिय रोगिणाम् । याज्ञ०वाक्पारुष्य 18/204.
    क्षेपं करोति चेद्दण्ड्यः पणानर्धत्रयोदशान् ॥

20. अभिगन्तास्मि भगिनी मातरं वा तवेति ह ।
    शपन्तं दापयेन्राजा पञ्च विंशतिकं दमम् ॥या०18/205.

21. याज्ञवल्क्य व्यवहाराध्याय वाक्पारुष्य 18/206.

22. याज्ञवल्क्य व्यवहाराध्याय 18/208.
    बाहु ग्रीवानेत्र सक्थि विनाशे वाचिके दमः ।
    शत्यस्तदर्धिकः पादनासाकर्णकरादिषु ॥

23. याज्ञवल्क्य 18/209.

इसी प्रकार क्रोधवश किसी पर कोई ब्रह्म हत्या या मिथ्यारोप लगाये जिससे उसके पतित होने की सम्भावना हो तो उसे मध्यम साहस का दण्ड और उपपातक (गोवध आदि) का मिथ्या दोष लगाने पर प्रथम साहस का दण्ड देना चाहिये।[24] इस प्रकार हम देखते हैकि मनु और याज्ञवल्क्य दोनों ही क्रोध-प्रेरित वाक्पारुष्य विविध अपराधो एवं तत्सम्बन्धित दण्डों के विधान में पूर्णतया सावधान सन्लक्षित होते है । सामान्यतया इस सम्बन्ध में दोनों के दृष्टिकोण प्रायः समान ही प्रतीत होते हैं ।

किसी के ऊपर थूक देना — यदि कोई क्रोध या अंहकार या घृणा से तिरस्कार करने के लिए ब्राह्मण के ऊपर थूक देता है तो मनु के अनुसार[25] उस थूकने वाले के दोनों होंठ कटवाने का दण्ड निर्दिष्ट किया गया है। जबकि मनु की अपेक्षा याज्ञवल्क्य ने इस कठोर दण्ड की अपेक्षा अपराधी के होंठ कटवाने की अपेक्षा 20 पण दण्ड देने का विधान बताया है।[26]

किसी के ऊपर पेशाब करना — यदि कोई व्यक्ति क्रोध या प्रतिशोध में अपवित्र करने की दुर्भावना से किसी ब्राह्मण के ऊपर पेशाबकरता है तो मनु[27] ने उस अपराधी व्यक्ति के लिंग कटवाने के दण्ड का विधान बतायाहै। याज्ञवल्क्य[28] ने भी मनु के इस दृष्टिकोण का समर्थन किया है अर्थात् ब्राह्मण को पीड़ा

---

23. बाहुग्रीवानेत्र सक्थि विनाशे वाचिके दमः।
    शत्य स्तदर्धिकः पादनासाकर्ण करादिषु ।। याज्ञ०व्यवहाराध्याय 18/208.
24. याज्ञवल्क्य व्यवहाराध्याय 18/210.
25. मनुस्मृति 8/282. अवनिष्ठीवतो दर्पाद् द्वावोष्ठौ छेदयेन्नृपः ।
26. याज्ञवल्क्य व्यवहाराध्याय (दण्डपारुष्य प्रकरण 19) 213.
    भस्मपंक रजः स्पर्शे दण्डो दश पणः स्मृतः ।
    अमेध्यपार्ष्णि निष्ठ्यूतस्पर्शने द्विगुण स्ततः ।।
27. मनुस्मृति 8/282. अवमूत्रयतो मेढ्रमवशर्धयतो गुदम् ।
28. याज्ञवल्क्य व्यवहाराध्याय 215. विप्रपीडाकरं छेद्यमङ्गं ब्राह्मणस्य तु ।

देने वाला यदि अब्राहमण हो तो अंग को (जिससे उसने पीड़ा पहुँचाई हो) काट डालना चाहिए।

अपानवायु (अधोवायु) छोड़ना — इसी प्रकार यदि कोई किसी ब्राह्मण के ऊपर क्रोध प्रतिशोध या दुर्भावना से अपान(अधोवायु) छोड़ता है तो ऐसे अपराधी का मनु ने गुदा या मलद्वार कटवाने का दण्ड निर्धारित किया है।[29] इस सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य का भी ऐसा ही दृष्टिकोण है।

किसी ब्राहमण आदि सवर्ण का अपवित्र करने की क्रोधमूलक प्रतिशोधात्मक दुर्भावना के वशीभूत होकर यदि कोई किसी पर अन्य दूषित अपवित्र पदार्थों भस्म, मल कीचड़ और धूल जूठा भोजन आदि फेंकने काअपराध करता है तो मनु इस आपराधिक क्रिया के सम्बन्ध में मनु मौन है, किन्तु याज्ञवल्क्य[30] ने ऐसे अपराधी को दश पण दण्ड देने का निर्देश दिया है।

"भस्मपङ्क रजः स्पर्शे दण्डो दशपणः स्मृतः ।
अमेध्य पार्ष्णि निष्ठ्यूत स्पर्शने द्विगुण स्ततः ।।[30]

क्रोध प्रेरित अन्य कायिक अपराध — मनु और याज्ञवल्क्य ने क्रोधप्रेरित विविध कायिक हिंसा अपराधों की गम्भीर मीमांसा की है। यदि कोई अन्त्यज अपने जिस किसी भी अंग से हाथ, पैर, दाँत, नाखून आदि से किसी भी ब्राहमण या सवर्ण को मारता है तो मनु ने अन्त्यज के उस अंग को काटने का[31] किन्तु याज्ञवल्क्य ने परिस्थिति अनुसार अंग काटने[32] अथवा हाथ, पैर, दाँत, तोड़ने कान

---

29. मनुस्मृति 8/282. अवमूत्रयतो मेद्रमवशर्धयतो गुदम् ।
30. याज्ञवल्क्य व्यवहाराध्याय 215. विप्र पीडाकरं छेद्यमङ्गम ब्राहमण(स्य) तु ।
31. मनु08/279. येन केनचिदङ्गेन हिंस्याच्चेच्छ्रेष्ठमन्त्यजः ।।
छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम् ।।।
32. याज्ञवल्क्य व्यव0 215. विप्र पीडाकरं छेद्यमङ्गम ब्राहमणेस्य तु ।

नाक काटने या फोड़ा कुचलने पर मध्यम साहस का दण्ड निर्धारित किया है ।

"करपाद दतो भी छेदने कर्णनासयोः ।
मध्यो दण्डोव्रणोद्भेदे मृतकल्पहते तथा ।। या०व्यव० 219.

इसी प्रकार किसी के द्वारा क्रोध वश किसी का चलना, भोजन और बोलना रोक देने पर आँख फोड़ने, ग्रीवा, बाहु, जंघा तोड़ने पर याज्ञवल्क्य ने मध्यम साहस का दण्ड निर्दिष्ट किया है।

चेष्टा भोजन वा ग्रोधे नेत्रादिप्रतिभेदने ।
कन्धरा बाहुसक्थनां च भी मध्यम साहसः ।। या० 220.

यदि व्यापारी लोग क्रोध या प्रतिशोध से प्रेरित होकर परस्पर मिलकर रजक आदि और शिल्पियों को पीड़ित करें तो याज्ञवल्क्य ने ऐसे अपराधियों को उत्तम साहस दण्ड देने का विधान बताया है।

सम्भूय कुर्वतामर्थं सम्बाधं कारुशिल्पिनाम् ।
अर्थस्य ह्रासं वृद्धिं वा जानतो दम उत्तमः ।। या०व्यव० 249.

इसी प्रकार जो व्यापारी परस्पर मिलकर दूसरे देश से किसी के द्वारा लायी गई वस्तु को कम मूल्य पर बिकने से रोक देते है अथवा अधिक मूल्य पर बेचते हैं तो उनके लिए भी उत्तम साहस का दण्ड विहित हैं । (या० व्यव० 250.)

: समीक्षा :

इस प्रकार हम देखते है कि मनु और याज्ञवल्क्य दोनों ने क्रोध प्रेरित कायिक अपराधों तथा तत्सम्बन्धित दण्डों की गम्भीर मीमांसा की है। मनु हस्त, पाद, दण्ड प्रहारों में इन कायिक हिंस्र अपराधों के लिए अंग भंग जैसे कठोर दण्ड का विधान सुनिश्चित करते है, जबकि याज्ञवल्क्य मनु के मत का समादर करते हुये भी कहीं मनुस्मृति का अनुसरण तो

किन्तु कहीं पर अपना स्वतंत्र उदार दृष्टिकोण व्यक्त कर समुचित अर्थ दण्ड की व्यवस्था सुनिश्चित करते हैं । व्यावहारिक दृष्टि से मनु की अपेक्षा याज्ञवल्क्य के क्रोध-मूलक कायिक विविध हिंस्र अपराधों का दण्ड विधान अधिक समीचीन पाया जाता है। इससे प्रतीत होता है कि याज्ञवल्क्य की अपेक्षा मनु के समय सामाजिक परिस्थितियाँ इन क्रोध-प्रेरित अपराधों के कठोर दण्डों को निर्धारित करने के लिए सर्वथा अनुकूल ही थी ।

****

चतुर्थ अध्याय

क्रोध प्रेरित कायिक विविध हिंस्र अपराध तथा तत्सम्बन्धित : दण्डों का तुलनात्मक अध्ययन :

चतुर्थ अध्याय

क्रोध प्रेरित कायिक विविध हिंस्र अपराध तथा तत्सम्बन्धित दण्डों का : तुलनात्मक अध्ययन :

वस्तुतः मानवीय आन्तरिक दुर्गुणों में क्रोध ही सर्वाधिक प्रभावी है, जो सामाजिकों को हिंस्र अपराध करने के लिए उत्प्रेरित करता रहता है। राज्य में यदि सामान्य नागरिकों में असंख्य क्रोधी, "साहसी"[1] और "आततायी" जन है तो भयानक हिंस्र अपराध बढ़ते ही रहते है। तथा धन जन की अपार क्षति होती रहती है ~~रहती है~~ । अतः मनु और याज्ञवल्क्य ने ऐसे क्रोधी निर्दय "साहसी"[2] और आततायी[3] जनों को कठोर दण्ड देने का निर्देश किया है ।

> साहसे वर्तमाने तु यो मर्षयति पार्थिवः ।
> स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधि गच्छति ।। मनु0 8/346
>
> न मित्रधारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात् ।।
> समुत्सृजेत् साहसिकान् सर्वभूत भयावहान् ।। मनु0 8/347

अर्थात् जो राजा हिंस्र साहस करने वाले अपराधी को क्षमा करता है, वह शीघ्र विनाश को प्राप्त होता है और सभी लोग उससे शत्रुता करने लगते है। मित्र की धारणा से अथवा प्रचुर धन सम्पर्क लाभ से राजा सब प्राणियों को भयभीत करने वाले

---

1. मनु0 8/332. स्यात्साहसं त्वन्वयवत् प्रसभं कर्म यत् कृतम् ।
   निरन्वयं भवेत्स्तेयं हृत्वाऽपव्ययते च यत् ।। मनु0 8/332.
2. मनु0 8/244. ऐन्द्रं स्थान मभि प्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम् ।
   नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकं नरम् ।।
3. मनु0 8/350. गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।
   आततायिन मायान्तं हन्यादेवविचारयन् ।।

"साहसिक"[4] को बिना दण्ड के न छोड़े । जब द्विजातियों का वर्ण और आश्रमधर्म साहसी लोग क्रोधावेश में चलने नहीं देते , जब विपरीत काल के कारण देश में अराजकता फैली हो और अपनी प्राण रक्षा के लिए अथवा धन, गौ आदि की रक्षा के लिए युद्ध करने का प्रसंग हो, उसी प्रकार जब स्त्रियों और ब्राह्मणों की रक्षा के लिए आवश्यक हो तब द्विजातियों को शस्त्र ग्रहण कर ऐसे साहसिक अपराधियों का प्रतिकार अवश्य करना चाहिए । ऐसे समय धर्मतः हिंसा करने में मनु[5] ने दोष नहीं बताया है । क्रोध प्रेरित गम्भीर हिंसा अपराधों में अधोलिखितापराध उल्लेखनीय है। जिनकी संक्षिप्त में यहाँ विवेचना की जा रही है।

प्राण हत्या — यदि कोई क्रोध अथवा प्रतिशोध के वशीभूत होकर गुरु, अबोध बालक, अशक्त वृद्ध अथवा शास्त्रविद्, ब्राह्मण की प्राण हत्या आततायी बनकर करता है तो ऐसे हिंसक प्राणहर्त्ता का मनु के निर्देशानुसार निःशंक बध कर देना चाहिए।[6] याज्ञवल्क्य ने ब्राह्मण के प्राण हर्त्ता "महापातकी"[7] को उसी हत ब्राह्मण के सिर की खोपड़ी हाथ में लेकर दूसरी खोपड़ी बांस के डण्डे से ऊपर बांधकर अपने किये हुए दुष्कर्म को सबसे जताकर भिक्षा से प्राप्त अल्पभोजन करते हुए शुद्धि हेतु बारह वर्ष व्यतीत करने का निर्देश दिया है।

> शिरः कपाली ध्वजवान्, भिक्षाशी कर्मवेदयन् ।
> ब्रह्महा द्वादशाब्दानि मितभुक् शुद्धिमाप्नुयात् ।। या०प्रायश्चित्त 243.

- -

4. या०साहस प्रकरण 20/230. सामान्य द्रव्यप्रसभहरणात् साहसं स्मृतम् ।
तन्मूल्याद्विगुणो दण्डो निह्नवे तु चतुर्गुणः ।।

5. मनु० 8/348 शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते ।
द्विजातीनां च वर्णानां विप्लवे कालकारिते ।।
आत्मनश्च परित्राणे दक्षिणानां च संगरे ।
स्त्री विप्राभ्युपपत्तौ च घ्नन्धर्मेण न दुष्यति ।।

6. मनु० 8/350. गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् । आततायिनमायान्तं हन्यादेवा-
-विचारयन् ।।

7. गौ० धर्म सूत्र 3/3/1 ब्रह्महा . . . . पतिताः ।

क्रोधजन्य साहस अपराध के अन्तर्गत मनुष्य अथवा नारी बध को जघन्यतम अपराध माना गया है। मनुष्य हत्या तो भयंकर अपराध है ही, मनुष्यों में मूर्धन्य माने जाने वाले ब्राह्मण की हत्या घोर एवं जघन्यतम अपराध है। गौतमधर्म सूत्र में ब्राह्मण की हत्या का उल्लेख महापातकों[8] में हुआ है। इसी प्रकार अन्य तीनों वर्णों के मनुष्यों की प्राण हत्या के सन्दर्भ में भी प्रायश्चित विधान बताया गया है।[9] यदि कोई गाय की हत्या क्रोधावेश में करता है तो इसका भी प्रायश्चित विधान किया गया है।[10] आपस्तम्ब ने भी ब्राह्मण की प्राण हत्या को गम्भीर अपराध माना ही है, वेदज्ञ ब्राह्मण के बध को तो जघन्यतम अपराध माना है।[11] यदि संकल्प के साथ क्रोध में ब्राह्मण की हत्या की जाती है तो अपराध की गुरुता और बढ़ जाती है।[12] आपस्तम्ब धर्म सूत्र के अनुसार यदि प्रथम वर्ण ब्राह्मण को छोड़कर कोई अन्य वर्ण का व्यक्ति ब्राह्मण की प्राण हत्या करता है तो वह युद्ध में जाकर सैनिकों द्वारा मारा जाकर ही अपने पाप से मुक्त हो पाता है।

> प्रथमं वर्णं परिहाप्य प्रथमं वर्णं हत्वा संग्रामं गत्वाऽवतिष्ठेत तत्रैनं हन्युः ।
> —[आ०धर्म सूत्र 1/25/12]

---

8. गौतम धर्म सूत्र. 3/3/1. ब्रह्महा सुरापगुरु तल्पगमातृपितृ योनि सम्बन्धगास्तेन...पतित
9. गौतम धर्म सूत्र. 3/4/2 अग्नौ सुक्ति ब्रह्महनस्त्रिरवच्छातस्य ।
10. गौतम धर्म सूत्र. 3/4/18. गां च वैश्यवत् ।
11. आपस्तम्ब धर्म सूत्र. 1/28/21. ब्राह्मण मात्र च ।
    अथभ्रूणहा श्वाजिनं खा वहिर्लोमं परिधाय पुरुषशिरः प्रतीपानर्थमादाय ।
12. आप० ध. सू. 1/29/2-3. यः प्रमत्तो हन्ति प्राप्तं दोषफलम् ।
    सह संकल्पेन भूयः क्व ॥

इसी प्रकार ब्राह्मणेत्तर वर्णों के बध, स्त्रियों के बध, गाय की हत्या, को भी आपस्तम्ब ने गम्भीर अपराध माना है। बौधायन धर्मसूत्र में भ्रूण हत्या को अपराध गम्भीर एवं जघन्यतम माना गया है। इस प्रकार के क्रोध जन्य जघन्य अपराधों के लिए दण्डविधान भी बौधायन धर्मसूत्र में प्रस्तुत किया गया है। (बौ. ध. सू. 1/10/18/18)

बौधायन-धर्म सूत्र के अनुसार ब्रह्म हत्या गम्भीरतम सामाजिक अपराध माना गया है, किन्तु क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र द्वारा समान वंशवृत्ति और धनवाले व्यक्ति की हत्या करने पर उतना गम्भीर अपराध नहीं होता है। (बौ. ध. सू. 1/10/18/20) बौधायन ने आगे यह भी उल्लेख किया[12] है कि यदि क्रोधावेश में प्रतिशोध वश कोई क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र की हत्या करे तो उसे मृत्युदण्ड देना चाहिए।[13] मनु के मतानुसार वेदादि के व्याख्याता ब्राह्मण, पिता माता, गुरु, गौ तथा सभी प्रकार के संन्यासी तपस्वी अबध्य हैं। अतः इन सभी के प्रतिकूल क्रोधवश आपराधिक आचरण करने वाले आततायी ही है। मनु ने आततायियों के बध को चाहे वह प्रत्यक्ष में किया गया हो अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किया हो, अपराध नहीं माना है। मनु की अवधारणा है कि मारने वाले आततायी क्रोध मारे जाते हुए के क्रोध को बढ़ाता है।[15]

इस प्रकार से प्राणहत्या के सम्बन्ध में दण्डविधान मनु ने मानवीय दुष्प्रवृत्तियों को दृष्टि में रखकर ही किया है, क्यों कि यह स्वाभाविक ही है कि आततायी यदि किसी व्यक्ति विशेष को मारेगा तो मारे जाने के कारण उस व्यक्ति की क्रोध जन्य प्रवृत्ति विकृत होगी और वह क्रोधावेश में प्रतिकार के लिए अपना बुद्धि विवेक खोकर मारनेवाले

- -

13. बौ. ध. सू. 1/10/18/19. (2) मनु. 4/162.

14. मनुस्मृति 8/351.

15. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/266.

16. याज्ञवल्क्य 2/278-279.

की प्राण हत्या करने की स्थिति तक पहुंच सकता है। वह हत्या कर्म प्रतिकारात्मक भावावेश में अविवेक की अवस्था में ही करता है। अतः उसका अपराध क्षम्य है, क्यों कि आघात का प्रारम्भ तो आततायी की ओर से ही होता है।

याज्ञवल्क्य ने भी क्रोधवश किसी के शरीर पर शस्त्र चलाकर पुरुष अथवा नारी का बध करना साहस अपराध स्वीकार किया है तथा मनु के समान ही समीचीन दण्ड व्यवस्था निर्धारित की है।[16.]

बृहस्पति का कथन है कि साहस के पांच प्रकार के पातकों में प्रतिशोधवश मनुष्य हत्या करना गम्भीरतम सामाजिक अपराध है तथा उन्होंने इसके अपराधी के लिए अर्थदण्ड के स्थान पर विविध प्रकार वधों का विधान किया है।[17.] बृहस्पति ने कई प्रकार के हाथों का उल्लेख किया है, जिसमें प्रथम वध प्रकाश में सबके समक्ष तथा दूसरे बध अप्रकाश में छिपकर किये जाते है।[18.] सामूहिक बध में मर्म पर प्रहार करने वाला व्यक्ति ही घातक माना जाता है और वही वस्तुतः पूर्ण दण्ड का भागीदार होताहै।[19.] हत्या कार्य में जो सहायता करता है, वह मर्मघाती के आधे दण्ड का भागी होताहै।[20.] विष्णु स्मृति में[21.] भी विष-अग्नि द्वारा किसी कोक्रोधावेश में प्राण हत्या करने के अपराध में प्राणदण्ड का विधान किया गया है। साथ ही स्त्री, बालक आदि का प्राण-घात करने वाले को भी प्राणदण्ड का विधान सुनिश्चित किया गया है। कात्यायन ने भी हत्यारे आततायी का बध का विधान किया है।[22.] वशिष्ठ स्मृति में भी इसप्रकार

---

16. याज्ञवल्क्य 8 2/278-279.
17. बृहस्पति स्मृति-उद्धृत धर्मकोश व्य0का पृ0 1646.
18. बृहस्पति स्मृति उद्धृत स्मृति चन्द्रिका 2, पृष्ठ 723.
19. बृहस्पति स्मृति उद्धृत धर्मकोश, व्यवहार. का. पृ0 1647, 48.
20. बृहस्पति स्मृति उद्धृत स्मृति चन्द्रिका, 2, पृ. 723.
21. विष्णु स्मृति 5/9-17.
22. कात्यायन स्मृति-{स्मृतिचन्द्रिका} 2, पृ. 723.

के आततायियों में आग लगाने, विष देने, और शस्त्र से बध करने वाले जघन्य प्राण-हत्याकारी आततायी अपराधियों को प्राणदण्ड का विधान किया गयाहै।[23]

इस प्रकार हम देखते है कि न केवल मनु और याज्ञवल्क्य ने पुरुष, स्त्री, बालक गौ आदि की प्राण हत्या को जघन्यतम एवं गर्हित मानकर इनके अपराधियों को प्राण दण्ड का विधान किया है ; अपितु अन्य धर्मशास्त्रों ने भी इनके दृष्टिकोण का अनुमोदन किया है, जो आधुनिक विधिशास्त्र के भी सर्वथा अनुकूल है।

<u>आत्म हत्या</u> : निराशा अथवा क्रोधावेश में आकर आत्म हत्या करना भी साहसिक अपराधों में अन्यतम सामाजिक अपराध है। संस्कृत धर्मशास्त्र में इस जघन्य अपराध को निन्दा माना गया है। बृहस्पति[24] ने आत्म हत्या को साहसकृत्य स्वीकार कर इस गर्हित अपराध का समुचित दण्ड विधान किया है। तथापि मनु और याज्ञवल्क्य ने साहस प्रकरण के अन्तर्गत आत्म हत्या का अपराध रूप में स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है, तथापि इनके टीकाकारों ने साहसिक अपराध के अन्तर्गत चाहे दूसरे के प्राणों की हत्या किसी ने की हो अथवा अपने प्राणों की समान रूप से अपराधियों की श्रेणी में आते हैं और इनके दण्ड का समुचित विधान किया गया है।

जो इस प्रकार के साहसिक दुष्कृतों के लिए किसी को उत्प्रेरित करें अथवा हत्या, आत्महत्या जैसे अपराध करने के लिये किसी को विवश करें, याज्ञवल्क्य ने साहसिक को दिये गये दण्ड से साहसिक अपराध कराने वालों से दुगना दण्ड लेने का विधान कियाहै।[25]

- -

23. वशिष्ठ स्मृति [स्मृति चन्द्रिका] -पृ. 731.
अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहाः । क्षेत्रदार हरश्चैव षडेते आततायिनः ।।

24. बृहस्पति स्मृति- [धर्मकोश, व्य०का०] पृष्ठ 1648.

25. याज्ञवल्क्य व्यवहार० 231. यः साहसं कारयति स दाप्यो द्विगुणं दमम् ।
यश्चैवमुक्त्वाऽहं दाता कारयेत् स चतुर्गुणम् ।।

और जो ऐसाकहे कि तुम ऐसा करो जो लगेगा, वह मैं दूंगा या जो कुछ भी होगा, मैं निपट लूंगा, उससे चौगुना दण्ड लेना चाहिये।

इस प्रकार किसी अन्य की प्राण हत्या करने के जघन्य अपराध के समान आत्म-हत्या करना भी भीषण पाप है, जिसे हम आज भी अनेक हताश और विवश स्त्री,पुरूष और बाल वृद्धों द्वारा समाज को सामान्य रूप से प्रायः जीवन में असफल होते देखा ही करते है।

भ्रूण हत्या एवं गर्भपात करना : प्रतिकारवश किसी गर्भिणी स्त्री के द्वारा स्वयं अथवा किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा जब अपनी या पराईस्त्री के गर्भस्थ भ्रूण या जीवन कोगर्भपात से हत्या की जाती है तो इसे भी धर्मशास्त्रियों ने जघन्य सामाजिक अपराध मानकर समुचित दण्ड विधान सुनिश्चित किया है।

यास्क ने ऋग्वेद [5/31.7] के अन्तर्गत 7 सामाजिक मर्यादाओं के भंग होने की अवस्था में जिन अपराधों के उत्पन्न होने की स्थिति विवेचित की है, उनमें भ्रूण हत्या भी एक जघन्यतम अपराध है। नारद स्मृति में [26] दस प्रकार के सामाजिक अपराधों में गर्भपात का भी उल्लेख किया गया है।

मनु ने भीगर्भपात अथवा भ्रूण हत्या को ब्रह्म हत्या के समान अपराध मानकर दण्ड विधान निर्धारित कर यज्ञकर्ता, क्षत्रिय और वैश्य को प्रायश्चित करने का निर्देश दिया है।

हत्वा गर्भमविज्ञातमेतदेव व्रतं चरेद् ।
राजन्य वैश्यौ चेजानावात्रेयीमेव च स्त्रियम् ।। [मनु0 11/87]

---

26. नारद स्मृति - आज्ञालंघन कर्तारः स्त्रीवधो वर्णसंकरः ।
परस्त्रीगमनं चौर्यं गर्भश्चैव पतिं विना ।।
वाक्पारुष्यमवाच्यं यद् दण्डपारुष्यमेव च ।
गर्भस्यपातनं चैवेत्यपराधा दशैव तु ।। [नारदस्मृति-स्मृतिचन्द्रिका 2 पृष्ठ 63.]

याज्ञवल्क्य ने भी भ्रूण हत्या अथवा गर्भपात कराने को जघन्यतम साहसिक अपराध माना है। उन्होंने इसे जीवक हत्या के समान निन्द्य अपराध मानते हुए ऐसे अपराधियों के लिए उत्तम साहस के दण्ड का विधान किया है।

> शस्त्रावपाते गर्भस्य पातने चोत्तमो दमः ।
> उत्तमो वाऽधमो वापि पुरुषस्त्री प्रमापणे ।। याज्ञ० व्यव0277।
> विप्रदुष्टां स्त्रियं चैव पुरुषघ्नीमगर्भिणीम् ।
> सेतुभेदकरीं चाप्सु शिलां बध्वा प्रवेशयेत् ।। (याज्ञ० 2/278)

कुएँ, तालाब या भोजन में विष मिलाना : जब क्रोध अथवा प्रतिशोध वश कोई व्यक्ति बैरभाव से किसी व्यक्ति या व्यक्तियों को मारने के लिए उनके अथवा उनके पशुओं को पीने वाले कुएँ-तालाब के पानी या भोजन में विष मिलाता है तो इस प्रकार विष देकर प्राणहत्या करने वालों को भी धर्मशास्त्रकारों ने आततायी कहा है। वशिष्ठ स्मृति में छह प्रकार के आततायियों में विष देने वालों की भी गणना हुई है।[27] इसी प्रकार कात्यायन स्मृति में भी आततायियों की चर्चा में प्राण हत्याकारी विष देने वाले आततायियों का उल्लेख किया गया है।[28]

कहीं कोई क्रोधावेश में प्रतिकारार्थ वंश परिवार सहित किसी को विनष्ट करने की आपराधिक कुचेष्टा में सार्वजनिक कुएँ या तालाब के पेयजल में विष न मिला दे। अतः विष के विक्रय को भी मनु नेविश[29] को निषिद्ध बताया है। पेय एवं भोज्य अदूषित द्रव्यों को विष अथवा अपेय अखाद्य पदार्थों से मिश्रित करने पर मनु द्वारा अपराधी को प्रथम साहस दण्ड की व्यवस्था की गई है।[30]

---

27. वशिष्ठ स्मृति-(स्मृति चन्द्रिका)2/पृ. 742)
अग्निदो गरदश्चैव शास्त्रमाणिर्धना । क्षेत्रदार हरश्चैव षडेते आततायिनः ।।
28. कात्यायन स्मृति (स्मृति चन्द्रिका) 2, पृ. 731.
29. मनु0 10/88 अपः शस्त्रं विषं ....।
30. मनु0 अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा । मणीनामपवेधेन्य दण्डःप्रथमसाहसः।।

याज्ञवल्क्य ने भी मनु के समान जल या भोजन में विष मिलाने को जघन्य अपराध माना है। उनके मतानुसार यदि किसी स्त्री ने दूसरे को अथवा अपने पति गुरु बच्चों को मारने के लिए खाद्यान्न में विष दिया हो तो यदि वह गर्भिणी न हो तो उसके कान, हाथ, नाक, और ओंठ काटकर उसे बैलों से मरवा डालने का दण्ड विधान किया है।

"विषाग्निदां पति गुरु निजापत्य प्रमापणीम् ।
विकर्ण करनासौष्ठीं कृत्वा गोभिः प्रमापयेत् ।। या०व्यवहार0279.

इसी प्रकार कभी प्रतिकार लेने वाले पुरुष द्वारा विष मिलाने के दुष्कृत्य पर कठोर दण्ड व्यवस्था लागू होती होगी। इस प्रकार मनु और याज्ञवल्क्य दोनों ने पेय और खाद्य पदार्थ में विष मिलाने को जघन्य अपराध मानकर समाज में पाप से भयरहित बनाने के लिए इसे रोकने की समुचित दण्ड व्यवस्था सुनिश्चित की है, क्यों कि बड़े बड़े क्रोधी और क्रूर दुष्ट लोगभी दण्ड भय से मुग्ध होकर सुधर जाते है और उचित धर्म मार्ग पर चलने लगते है। जैसा कि शुक्रनीति का इस सम्बन्ध में अभिमत है।

क्रूराश्च मार्दवं यान्ति, दुष्टा दौष्ट्यं त्यजन्ति च ।
पशवोऽपि वशं यान्ति विद्रवन्ति च दस्यवः ।।
जायते धर्मनिरताः, प्रजा दण्ड भयेन च ।
करोत्याधर्मं नैव तथा चासत्यभाषणम् ।। शुक्रनीति 4/46-47

इसप्रकार से क्रोधावेश में प्रतिशोधार्थ किये गये विष मिलाने से जघन्य अपराधों मेंसमुचित दण्ड से समाज में पुनरावृत्ति नही होती है तथा सभी नागरिक सद्भावपूर्वक धर्म का परिपालन करने लगते हैं।

<u>आग लगाना</u> : क्रोधावेश में प्रतिशोध वश किसी के प्रति हिंसाभाव से उसकी धनसम्पत्ति तथा प्राणों का नाश करने के लिए जब कोई दिन या रात में घर, द्वार, गोष्ठ, खेत खलिहान में आग लगाता है, तो वह जघन्यतम अपराध धर्मशास्त्रियों द्वारा निन्दित किया गया है।

विष्णु स्मृति[31] में प्रतिशोध पूर्वक प्राण हत्या अग्नि लगाकर करने वाले अपराधी आततायियों के लिए प्राणदण्ड का विधान किया गया है। वशिष्ठने6 प्रकार के हिंस्र आततायियों का उल्लेख किया है, जिसमें अग्नि लगाकर[32] निर्दयतापूर्वक जलाकर धन-जन का क्षय करने वाले अपराधियों की भी गणना की गई है । जिन्हें इस साहसिक अपराध के लिए प्राणदण्ड देने का निर्देश दिया गया है। बृहस्पति ने क्रोधावेशमें अग्नि लगाकर प्राणहत्या करने वाले अपराधियों को साहसिक[33] बतायाहै। कात्यायन[34] आततायियों की चर्चा करते हुए उनमें अग्नि लगाकर नर हत्या करनेवाले कीभी गणना करते हैं ।

अन्य धर्मशास्त्रियों की इससाहसिक अपराध पर दृढ़ व्यवस्था के अनुकूल मनु और याज्ञवल्क्य भी अपना दृष्टिकोण व्यक्त करते हैं। जिस स्त्री ने दूसरे को मारने के लिए घर जलाने के कुत्सित उद्देश्य से आग लगाई हो[35]यदि वह गर्भिणी न हो तो उसके कान,हाथ, नाक और ओंठ काटकर बैलों से मरवा डालने का कठोर निर्देश याज्ञवल्क्य ने दिया है। इस कठोर दण्ड विधान से निःसन्देह क्रूर,क्रोधी अपराधी प्रतिशोधवश इस साहसिक अपराध से विरत हो जाते होंगे, क्यों कि कठोर दण्ड से समुचित सामाजिक सुधार सामान्यतः होते रहते है और आग लगाने वाले निन्दा साहसिक अपराधियों की संख्या शून्य प्रायरह जाती जाती होगी । क्यों कि याज्ञवल्क्य जैसे अति सुहृद्य हुए धर्मशास्त्री ने किसी दूसरे के खेत पकी फसल, खलिहान,घर,वन, गाँव ,बाड़ा आदि में आग लगाने वाले साहसिक अपराधी को कट (सरहरी) में लपेटवा कर जलाने का कठोर दण्ड विधान को निर्धारित किया है।

क्षेत्र वेश्म वन ग्राम विवीतक दाहकाः ।
राजपत्न्यभिगामी च दग्धव्यास्तु कटाग्निना।। याज्ञ॰ व्यवहार 282.

---

31. विष्णु स्मृति 5/9-17.

32. वशिष्ठ स्मृति (उद्धृत स्मृति चन्द्रिका) 2 पृष्ठ 731.

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः । क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते आततायिनः।।

33. बृहस्पति स्मृति (स्मृति चन्द्रिका, 2) व्यवहार पृ॰ 800. 164.

34. कात्यायन स्मृति (स्मृति चन्द्रिका, व्यव02,पृ0731.

35. याज्ञ0व्यवहार,279 विषाग्निदां पतिगुरु निजापत्य प्रमापणीम् ।
विकर्णकर नासौष्ठीं कृत्वा गोभिः प्रमापयेत्।।

पुल, जलाशय बाँध को तोड़ना : यदि कोई क्रोध से प्रेरित होकर प्रतिशोधवश ग्राम, नगर मार्ग को जोड़ने वाले नदी, नाले के पुल अथवा भरे भारी जलाशय तट बाँध को तोड़ता है तो इस साहसिक हिंस्र अपराध से प्रभूत धन-जन का नाश हो जाता है। क्योंकि पुल तोड़ने से नागरिकों का आवागमन बन्द हो जायेगा और भरे जलाशय (झील, तालाब आदि) का सम्बन्ध तटबन्ध तोड़ने पर खेत, खलिहान घर-द्वार सब नष्ट हो जायेंगे। ऐसे समय में साहसिक जघन्य अपराध के लिए धर्मशास्त्रियों ने समुचित दण्ड विधान सुनिश्चित किया है।

बृहस्पति ने पुल, जल या जलाशय आदि को नष्ट करना गम्भीर साहसिक अपराध बताया है। अतः इनके आततायी अपराधियों का बध करने का निर्देश दिया है।

आततायियों के अतिरिक्त साहस कृत्य करने वाले क्रोध प्रेरित जघन्य अपराधियों की चर्चा करते हुए मनु ने कहा है कि ग्राम्य-नगर के तड़ाग के बाँध को अथवा आवागमन हेतु नदी-नाले पर निर्मित पुल को तोड़ना गम्भीर अपराध है जिसका दण्ड विधान अपराधी का बध है, किन्तु बाद में यदि वह उसे ठीक कर देता है तो उत्तम साहस का दण्ड उसे देना चाहिए।

यद्यपि प्रतिसंस्कुर्याद्दाप्यस्तूत्तमसाहसः ।। मनु० 9/279.

याज्ञवल्क्य ने यद्यपि मनु (9/279) के समान उपर्युक्त साहसिक अपराध का स्पष्ट उल्लेख तो नहीं किया है तथापि देशकाल पात्रपरिस्थिति को ध्यान में रखते हुए इसप्रकार के छोटे बड़े साहसिक अपराधों का दण्ड विधान सुनिश्चित किया है।

क्षुद्रमध्यमहाद्रव्यहरणे सारतो दमः ।
देशकाल वयः शक्तिसंचिन्त्य दण्ड कर्मणि ।। या० व्य० 275.

क्रोध प्रेरित अन्य विविध हिंस्र अपराध :

उपर्युक्त अपराधों के अतिरिक्त क्रोध प्रेरित अन्य हिंस्र सामाजिक अपराधभी 117 हैं, जिन पर विचार करते हुए धर्मशास्त्रियों ने उनका दण्डविधान सुनिश्चित कियाहै। वस्तुतः विविध आन्तरिक विकारों- घृणा, क्रोध, हिंसा, कुटिलता, निष्ठुरता आदि से ऐसे हिंस्र अपराध समाज में प्रायः होते रहते हैं, जिनमें प्रतिशोध एवं क्रोधवश साहसिक द्वारा किया गया स्त्री संग्रहण जैसा परपीड़ादायक जघन्य अपराध भी है। इस सम्बन्ध में मनु [8/332] केदृष्टिकोण पर मेधातिथि अपना यह समीचीन विचार प्रकट करते हैं-

"सहोबलं, तेन पतति साहसिकः। दृष्टादृष्टद्रोहानापरिगण्य जलमाश्रित्य ।।
स्तेयहिंसा संग्रहणादि परपीड़ाकरेषु वर्तमानः।प्रकाशी पुरुष साहसिकः ।।"

मनु के समान याज्ञवल्क्य भी स्त्री-संग्रहण जघन्य साहसिक हिंस्र अपराध पर दण्ड विधान व्यक्त करते हैं —

पुमान् संग्रहणे ग्राह्यः केशाकेशि परस्त्रिया ।
सद्यः वा कामजैश्चिह्नैः प्रतिपत्तौ द्वयोस्तथा ।। या0व्यव0283.

अर्थात् परायीस्त्री को बलपूर्वक केश पकड़कर काम क्रीड़ा करने से बनाये गये चिह्नों से व्यभिचार में प्रवृत्त पुरुष को राजा पकड़ कर दण्डित करे। सामूहिक क्रोध या प्रतिशोध में राज्य का अन्न भण्डार, शस्त्रागार, देवमंदिर आदि तोड़ना, जलाशय काजल हरण करना, अथवा जल मार्ग अवरुद्ध करना आदि गम्भीर साहसिक अपराध है। मनु ने इस पर अपना विचार व्यक्त करते हुए समुचित दण्डव्यवस्था (प्राणदण्ड या प्रथम साहस दण्ड देना) निर्धारित की है।

कोष्ठागारायुधागार देवतागार भेदकान् ।
हस्त्यश्वरथहर्तॄंश्च हन्यादेवाविचारयन् ।।
यस्तु पूर्वनिविष्टस्य तड़ागस्योदकं हरेत् ।
आगमं वाऽप्यपां भिद्यात् स दाप्यः पूर्वसाहसम् ।।

—मनु0 9/280-281.

इसी प्रकार क्रोध या प्रतिशोध में राजा के कोश का बलात् अपहरण करने की हिंस्र कुचेष्टा भी साहसिक जघन्य अपराध है, जिसके लिए मनु ने कठोर प्राण दण्ड की व्यवस्था की है ।

राज्ञः कोषापहर्तृंश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान् ।
घातयेद् विविधैर्दण्डैररीणां चोपजापकान् ।। मनु० 9/275.

याज्ञवल्क्य ने भी साहसकर्ता ऐसे हिंस्र अपराधियों के लिए मनु के समान ही दण्ड विधान निश्चित किया है। (या०व्य० 230-231)

इसी प्रकार याज्ञवल्क्य ने प्रतिकारवश बलपूर्वक बन्दीगृह से बन्दी को छुड़ाने वाले, घोड़ा हाथी हरण करने वाले अथवा बलपूर्वक बन्दी का घात करने वालों को हिंस्र साहसिक अपराधी मानकर इनको समुचित दण्ड देने का निर्देश दिया है।

बन्दिग्राहांस्तथा वाजिकुञ्जराणां च हारिणः ।
प्रसह्य घातिनश्चैव शूलानारोपयेन्नरान् ।। या०व्य० 273.

: समीक्षा :

उपर्युक्त क्रोध प्रेरित प्रतिशोधात्मक कायिक हिंस्र विविध अपराधों पर दृष्टिपात करने पर हम पाते है कि प्रायः धर्म शास्त्र साहित्य में इनके दण्डविधान पर गम्भीर विचार किया गया है। मनु औरयाज्ञवल्क्य ने भी इन साहसिक सामाजिक अपराधों की जघन्यता को ध्यान में रखते हुए इनका कठोर दण्ड विधान सुनिश्चित कियाहै, चाहे भले ही वह प्राण दण्ड क्यों न हो । आज के विधिशास्त्र द्वारा भी इनके इस दण्डविधान की ग्राह्यता कोअनुमोदित किया गया है और तदनुकूल न्यायालयों मेंआज भी यह समान रूप से व्यवहृत हो रहा है ।

—

पंचम अध्याय

****

: सामाजिक और धार्मिक अपराध एवं तत्सम्बन्धित दण्ड विधान :

पंचम अध्याय

सामाजिक और धार्मिक अपराध एवं तत्सम्बन्धित दण्ड विधान :

जीवन की विविधता के साथ साथ अपराधों में भी विविधता उत्पन्न होती है। कुछ अपराध सामाजिक या नैतिक होते हैं, तथापि कुछ धार्मिक होते है। धर्मशास्त्रों के अनुसार विवाह सम्बन्ध यद्यपि सामाजिक परम्परा है, किन्तु उसकी व्यवस्था धर्म, कर्तव्य और सदाशयता से जुड़ी है।

समय पर कन्या का विवाह न करना :

गौतम धर्म सूत्र में समय से कन्या का विवाह न करनेवाले पिता आदि को दोषी बताया गया है।[1] इस सम्बन्ध में मनुस्मृति में कन्या और वर के विवाह सम्बन्धी अनेक गुण दोषों का विश्लेषण और निर्धारण किया गया है। मनु के अनुसार किसी दोष युक्त कन्या के दोष छिपाकर उसका कन्यादान करना गम्भीर सामाजिक अपराध है।[2] जो पुरूष दोषवती कन्या का दोष बिना बताये, उसे दान करे, उसको राजा 96 पण का अर्थदण्ड दे[3] तथा मनु ने विधान किया है कि जो पुरूष दोषवाली कन्या का दोष बताये बिना उसे किसी पुरूष के साथ ब्याह दे तो वह उस दुरात्मा कन्यादाता के दान को लौटाकर व्यर्थ कर दे, अर्थात् उस कन्या को अपने पास न रखकर देने वाले को सौंप दे।[4] पागल, कुष्ठरोगी, क्षतयोनि कन्या के दोषों को छिपाकर विवाह करना अपराध है.

---

1. गौतम धर्म सूत्र 2/9/22
2. मनुस्मृति 8/224
3. यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति ।
   तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवतिं पणान् ।। मनु0 8/227
4. यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्यायोपपादयेत् ।
   तस्य तद्वितथं कुर्यात्कन्यादातुर्दुरात्मनः ।। मनु0 9/73

किन्तु दोषों को प्रकट कर विवाह करने पर अपराध नहीं होता है।[5] विवाह व्यवस्था का विस्तृत अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है, कि स्मृतिकाल में विवाह सम्बन्धी बंचनाएं संभव थी।

दिखाई हुई कन्या के स्थानपर अन्य कन्या के साथ विवाह करना :

मनु के द्वारा यह ठीक ही कहा गया है कि सुन्दरी या विदुषी कन्या को दिखाकर किसी अन्य कन्या के साथ विवाह करना, कपटजनित अपराध होता है।[6] यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि जो कोई कपट वश अथवा द्वेष से कन्या पर मिथ्या दोषारोपण कर अकन्या अर्थात् क्षतियोनि कहकर मिथ्या दोष लगावे लगाने पर 100 पण का दण्ड लगाने का विधान मनु ने किया है।[7]

किसी अन्य को कन्या देना : किसी वाग्दत्ता कन्या के पति मर जाने पर उसे किसी अन्य पुरुष को देना अपराध है, मनुस्मृति में ऐसा करने वाले को "पुरुषानृत" दोष का भागी कहा गया है।[8] ~~ऋतुमती भी कन्या का किसी~~ गुणहीन वर को देना अपराध है।[9] किन्तु उसे भी बड़ा अपराध यह है कि कन्या किसी

---

5. नोन्मत्ताया न कुष्ठिन्या न च या स्पृष्टमैथुना ।
   पूर्वं दोषानभिख्याप्य प्रदाता दण्डमर्हति ।। मनुस्मृति 8/205

6. मनुस्मृति 8/204

7. अकन्येति तु यः कन्यां ब्रूयाद्द्वेषेण मानवः ।
   स शतं प्राप्नुयाद्दण्डं तस्या दोषमदर्शयन् ।। मनु0 8/225

8. न दत्त्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः ।
   दत्त्वा पुनः प्रयच्छन्ति प्राप्नोति पुरुषानृतम् ।। मनु0 9/71

9. काम मामरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यपि ।
   नचैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ।। मनु0 9/89

गुणहीन वर को ऋतुमती होने के भय से दे दी जाय, मनुस्मृति में कन्या को विवाह स्वातन्त्र्य भी दिया गया है। यदि पिता योग्यवर मिलने पर भी कन्या दान नहीं करता है, तो यदि कन्या ऋतुमती हो, तो वह स्वयं तीन वर्ष तक प्रतीक्षा के अनन्तर अपने समान योग्यता वाले पति का वरण कर सकती है। इसके लिए कन्या और उसका पति दोषी नहीं होते ।[10] इस सन्दर्भ में मनु स्मृति का समर्थन याज्ञवल्क्य स्मृति में भी किया गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि पिता, पितामह, या भाई, कुल का कोई पुरुष और माता इनमें क्रमशः पहले वाले के अभाव में आगे वाला यदि प्रकृतिस्थ अर्थात् उन्मादादि रोग से मुक्त हो, तो कन्यादान दे । यदि कन्या का अधिकारी व्यक्ति कन्यादान नहीं करता तो कन्या के प्रत्येक ऋतुकाल में उसे भ्रूण हत्या का पाप लगता है। यदि कन्यादान देने वाला कोई भी न होतो कन्या को योग्य वर का स्वयं वरण कर लेना चाहिए ।[10बी.] याज्ञवल्क्य के अनुसार -जो व्यक्ति (दिखाई पड़नेवाले) दोषों को बिना बताये ही कन्या का दान करताहै, उसे उत्तम साहस का दण्ड मिलना चाहिए ।

<u>निर्दोष कन्या का परित्याग करना</u> : कन्या को ग्रहण करके पुनः उसका त्याग करने वाले को भी यही दण्ड मिलना चाहिए और (विवाह के पूर्व) कन्या में मिथ्या दोष बताने वाले को सौ पणों का दण्ड देनाचाहिये।[10सी.]

---

10. अदीयमाना भर्तारमाधिगच्छेयदि स्वयम् ।
नैनः किंचिदवाप्नोति न च यं साधिगच्छति ।। मनु0 9/91

10 बी. याज्ञवल्क्य स्मृति - 1/63-64.

10 सी. अनाख्याय ददद्दोषं दण्ड्य उत्तम साहसम् ।
अदुष्टां तु त्यजन्दण्ड्यो दूषयंस्तु मृषा शतम् ।। याज्ञवल्क्य स्मृति 9/66

ऋतुमती कन्या को ग्रहण करने वाले पति से लोभवश कन्या का पिता यदि धन लेता है तो वह अपराधी होता है।[11]

कन्या विवाह के सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य स्मृति में जो उल्लेख उपलब्ध होतेहैं, उनसे तत्कालीन सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्थाओं पर समुचित प्रकाश पड़ता है।

<u>कन्यापहरण</u> : याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि कन्या विवाह में एक बार ही दी जाती है । अतः उसे देकर उसका अपहरण करना चौरकर्म के समान अपराध होता है।[12] कन्या के प्रत्यक्ष दोषों को बिना बताये उसका दान करना अथवा निर्दोष कन्या का त्याग करना, दोनों ही अपराध है।[13] स्त्री द्वारा व्यभिचार - अपराध है । दूसरों का गर्भ धारण करना भी अपराध है।[14] आज्ञाकारिणी, वीरप्रसूता,, मधुभाषिणी पत्नी का त्याग अथवा उसके रहते दूसरी पत्नी स्वीकार करना अपराध होता है। ऐसी स्थिति में राजा उससे धन का तृतीयांश दिलावे और यदि निर्धन हो तो और भोजन वस्त्र दिलाये ।[15] विवाह के लिए प्रस्तुत आभूषणों से सुसज्जिता

---

11. पित्रे न दद्याच्छुल्कं तु कन्यामृतुमतीं हरन् ।
    स हि स्वाम्यादतिक्रामेदृतूनां प्रतिरोधनात् ।। मनुस्मृति 9/93

12. सकृदेव कन्या प्रदीयत इति शास्त्रनियमः ।
    अतस्तां दत्त्वा अपहरन् कन्यां चोरवद्दण्ड्यः ।। याज्ञवल्क्य स्मृति 1/65

13. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/66

14. व्यभिचाराद्दृतौ शुद्धिर्गर्भे त्यागो विधीयते ।
    गर्भभर्तृवधादौ च तथा महति पातके ।। याज्ञवल्क्य स्मृति 1/72

15. आज्ञासंपादिनीं दक्षां वीरसूं प्रियवादिनीम् ।
    त्यजन्दाप्यस्तृतीयांशमद्रव्यो भरणं स्त्रियाः ।। याज्ञवल्क्य स्मृति 1/76

सवर्णा कन्या का अपहरण करना अपराध है। किन्तु यदि कन्या ब्याही जाने वाली न हो तो अपराध न्यून होता है। उच्च जाति की कन्या का अपहरण घोर अपराध माना गया है।[16]

मनु स्मृति, याज्ञवल्क्य आदि स्मृतिकारों ने तत्कालीन सामाजिक जीवन का सूक्ष्म और गहन अध्ययन किया था । निष्प्रयोजन अथवा सप्रयोजन अनेक प्रकार के अपराध जो सामाजिक जीवन में घटित होते थे, उनकी ओर उनका ध्यान था। ऐसे कार्य जो सामूहिक या वैयक्तिक रूप में वर्ग,समाज या व्यक्ति के लिए क्षतिकारक होते है, वे अपराध होते थे । अनेक छोटे छोटे अपराधों का उल्लेख स्मृतियों में उपलब्ध होता है किन्तु इनके लिए निरोधक उपायों अथवा तत्सम्बन्धी दण्डों का क्रमबद्ध उल्लेख नहीमिलता। इस सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि दैनन्दिन अपराधों के लिए कोई तात्कालिक न्याय व्यवस्था अवश्य रही होगी ।

जीवनोपयोगी वस्तुओं को विनष्ट करना : मनु के अनुसार किसी वस्तु को विकृत या विनष्ट करना अपराध है चाहे यह कार्य ज्ञातभाव से किया जाय या अज्ञात भाव से किया जाय । मनुस्मृति में कहा गया है कि चमड़ा ,चमड़े से बनी वस्तुओं, लकड़ी और मिट्टी से बने वर्तनों और आवश्यक जीवनो--पयोगी उपकरणों तथा फल, फूलों कन्दमूलों को नष्ट करना घोर अपराध है।[17] सामान्य नियम के अनुसार आकस्मिक और दैवी व्याघातों से घटित दुर्घटनाएँ अपराध-श्रेणी में परिगणित नहीं होती ।

- -

16. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/287

17. मनुस्मृति 8/288, 289.

नाविक की असावधानी से होने वाले अपराध :

नाविक की असावधानीवश होने वाले अपराध के लिए दण्ड व्यवस्था है। जैसे नाविकों की असावधानी से यदि यात्रियों याउनकी सामग्री की हानि हो जाये तो वह अपराध होताहै और उसके लिए मनुस्मृति में कहा गया है कि यदि नाव खेने वालों की भूल से यात्रियों की कोई चीज नष्ट हो तो नाविकों को चाहिए कि थोड़ा-थोड़ा अपने पास से देकर उसे पूरा करे।[18]

जलाशयों को नष्ट करना या क्षति पहुंचाना : (प्रपाभेदन) :

जल की प्याऊ या ग्राम अथवा नगर की परिखा, परकोटों आदि को तोड़ना अपराध होता है।[19] सरोवर के जल या सिंचाई के जलमार्ग को बाधित या नष्ट करनेवाले व्यक्ति अपराधी होते है।[20] विध्वंसात्मक कार्यों में सहायता देने वाले व्यक्ति - अपराधी होते है।[21] याज्ञवल्क्य के अनुसार पुरुष के समान स्त्रियाँ भी अपराधिनी होती है। वे भी या तो स्वयं विघटन कार्य में सहायक होती है या उन्हें सम्पन्न करती है।[22] इस सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य स्मृति में विशेष उल्लेख प्राप्त होते है। उनके अनुसार गृहदाह के लिए यदि कोई स्त्री अग्नि लाकर किसी अपराधी की सहायता करती है तो वह भी अपराधिनी होती है।[23] खेत, फसल, वन, घर, वाटिका, खलिहान आदि यदि किसी अन्य व्यक्ति के हों और उन्हें कोई जलाता है तो वह अपराधी होता है।[24]

---

18. मनुस्मृति 8/408, 409
19. मनुस्मृति 8/319
20. मनुस्मृति 9/281
21. मनुस्मृति 9/274
22. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/278
23. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/279
24. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/282

उपर्युक्त विघ्नकारी अपराधों के अतिरिक्त समाज में कुछ नैतिक और वैयक्तिक अपराध भी होते है।

<u>अतिथि सत्कार न करना</u> : धर्मशास्त्रों में अतिथि सेवा को बहुत महत्व दिया गया है और उसे यज्ञ की संज्ञा दी गयी है। तैत्तिरीय - उपनिषद् में अतिथि को देवता कहा गया है। अतिथि के महत्व का विशद वर्णनस्मृतियों में भी किया गया है। सामान्य नियम के अनुसार अतिथि का यथोचित सत्कार न करना अपराधकी श्रेणी में आता है। मनु के अनुसार अतिथि और गृहस्थ के भोजन में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए । गृहस्थ वही खाने का अधिकारी हैजो अपने अतिथि को खिलाता है और यदि वह ऐसानहीं करता है तो वह गृहस्थ अपराधी होता है ।[25] यदि कोई गृहस्थ अतिथि सत्कार के आकर्षणवश किसी दूसरे गांव में जाकर, दूसरे का भोजन ग्रहण करताहै, तो वह अपराधी होता है।[26]

<u>किसी के साथ प्रवञ्चना करना</u> : समाज की इकाई परिवार में भी यदि कोई धूर्त व्यक्ति परिवार के अन्य व्यक्तियों से वंचना करता है, तो वह अपराधी होता है। मनुस्मृति के अनुसार पारिवारिक सम्पत्ति में सभी भाइयों-बहनों का बराबर का हिस्सा होता है। यदि बड़ा भाई अन्य भाइयों को वस्तु सम्पत्ति आदि में उचित भाग नहीं देताहै, तो वह अपराधी होता है।[27] उपर्युक्त अपराधों के अतिरिक्त कुछ अन्य अपराध भी हैं ।

<u>विविध सामाजिक एवं धार्मिक अपराध</u> : अन्य साधारण अपराधों का उल्लेख मनुस्मृति में किया गयाहै। जैसे- जुआ खेलना, या खिलाना, वेदशास्त्रों का विरोध करना, पाखण्ड करना तथा आपत्तिकाल में

---

25. मनुस्मृति 3/106

26. मनुस्मृति 3/104

27. मनुस्मृति 9/212, 213.

उपस्थित न रहने पर भी ब्राह्मण द्वारा शूद्र की आजीविका धारण करना अथवा मद्य (शराब, भाँग, आदि नशीली वस्तुयें) बनाना आदि अपराध की श्रेणी में परिगणित होते है।[28] सामाजिक क्षेत्र में कुछ अपराध ऐसे होते है जो प्रत्यक्षतः सामान्य होते है किन्तु उनके दुष्परिणाम अधिक और बड़े होते है। मनुस्मृति में कहा गया है कि मन्त्रादि के प्रयोग से यदि तान्त्रिक किसी व्यक्ति को मारता है तो वह अपराधी होताहै। यदि वह मारने में सफल न हो, तो भी अपराधी होने का पात्र होता है। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति मारणादि प्रयोगों के लिए किसी तान्त्रिकादि को नियुक्त करताहै तो वह व्यक्ति भी अपराधी होता है।[29]

पारिवारिक परिवेश में भी विहित कर्तव्यों का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति अपराधी होता है। जो व्यक्ति माता, पिता, स्त्री और पुत्रका त्याग करताहै, वह अपराधी होता है । मनुस्मृति में इसके लिए अर्थदण्ड की व्यवस्था की गयी है।[30] किन्तु गौतम ने राजा की हत्या करने वाले, शूद्र के लिए यज्ञ करने वाले, शूद्र से धन लेकर यज्ञ करने वाले, वेद की हानि करने वाले, ब्राह्मण विद्वान की हत्या करने वाले, चाण्डाल आदि अन्त्यावसायियों के साथ रहने वाले और उनकी स्त्रियों के साथ सम्बन्ध रखनेवाले पिताका त्याग करने का सुझाव दिया है।[31] परिवेश और पर्यावरण की सुरक्षा का दायित्व समाज और राज्य दोनों का ही होता है। उदाहरणार्थ यदि राजमार्ग पर कोई स्वस्थ व्यक्ति मल मूत्र विसर्जित कर दे तो वह दो कार्षापण का भागीदार होताहै।[32]

हरे वृक्ष काटना : आज की ही भाँति स्मृतिकाल में भी हरे वृक्ष काटना अपराध था । स्मृतिकार याज्ञवल्क्य के अनुसार कोपलों से युक्त डालोंवाले

- -

28. मनुस्मृति 9/225
29. मनुस्मृति 9/290
30. मनुस्मृति 8/389
31. गौतम धर्मसूत्र 3/21।
32. मनु स्मृति 9/282

वृक्षों की शाखा और तना या सम्पूर्ण वृक्ष काटने पर यदि वह वृक्ष जीविका निर्वाह का साधन हो जैसे आम इत्यादि, तो क्रमशः बीस, चालीस और अस्सी पण का दण्ड का भागीदार होता है।[32ए.] यदि ये वृक्ष धार्मिक स्थान, श्मशान, सीमा, पवित्रस्थान, और देवता के मन्दिर में उत्पन्न या पीपल, पलाश आदि धार्मिक महत्व वाले वृक्ष है। तो उपर्युक्त दण्ड दुगुना हो जाता है।[32बी.]

यद्यपि अन्य प्राचीन सभ्यताओं की तुलना में धर्म सम्बन्धी अपराधों के प्रति अधिक सहिष्णु, एवं उदार दृष्टिकोण के दर्शन मिलते है, किन्तु कतिपय धार्मिक अपराध ऐसे थे, जिनके लिए कठोर दण्डों की व्यवस्था की गयी है। धर्मशास्त्रों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि राज्य और समाज में धर्म की प्रतिष्ठा सर्वोपरि थी। राजा स्वयं ही धर्म के अधीन राज्य का संचालन करता था और धर्मानुसार न्यायकी व्यवस्था करताहै। स्मार्त व्यवस्था में वैदिक संस्कृति के अर्चन और आचरण की महत्ता स्वीकृत और व्याख्यायित की गयी हैं।

देवालयों एवं देव प्रतिमाओं को नष्ट करना : देवालयों एवं देव प्रतिमाओं को नष्टकरना एक गम्भीर अपराध समझा जाता है। मनु मंदिर तोड़ने वाले का बध करवा देने को कहते है।[33] कात्यायन के अनुसार- जो देव प्रतिमाओं को चुराता है, तोड़ता है, जलाता है अथवा मंदिरों को नष्ट करता है। उसे प्रथम साहस (250पण) दण्ड देना चाहिये।[34] पुनश्च मनु प्रतिमा को तोड़ने अथवा किसी प्रकार से नष्ट करने बाले से राजा उन्हें ठीक करावे तथा उस व्यक्ति को 500 पण (मध्यम साहस) दण्ड दे।[35] विष्णु इसी अपराध में उत्तम साहस का दण्ड देने का निर्देश

32ए. याज्ञवल्क्य स्मृति, व्यवहाराध्याय 19/227

32बी. याज्ञवल्क्य स्मृति, व्यवहाराध्याय 19/228

33. मनुस्मृति 9/280

34. कात्यायन, 808

35. मनुस्मृति 9/285

करते है।[36] शंखलिखित के अनुसार- इसी अपराध के लिए 800पण का दण्ड देनाचाहिये।[37]

कौटिल्य के अनुसार देवता के निमित्त पशु, प्रतिमा, मनुष्य, खेत, घर, हिरण्य, स्वर्ण, रत्न और अन्न इन नौ वस्तुओं की जो भी चोरी करे उसे उत्तम साहस का दण्ड अथवा पीड़ा रहित प्राण दण्ड दिया जाय ।[38] सोमदेव कृत यशस्तिलक चम्पू में एक मन्त्री के द्वारा बहुमूल्य मूर्तियों को तोड़कर उन्हें पिघलाने का उल्लेख मिलता है।[39] कल्हण ने अनेक ऐसे राजाओं का उल्लेख किया है जिन्होने या तो मंदिरों को तोड़ा या मूर्तियों की चोरी करवा दिया।[40]

<u>देवताओं और देव प्रतिमाओं की निन्दा करना</u> : देवताओं और देव प्रतिमाओं की निन्दा करना भी अपराध था।

याज्ञवल्क्य के अनुसार देवताओं पर आक्षेप करने से उत्तम साहस का दण्ड होता है।[41] कौटिल्य के अनुसार भी यदि कोई व्यक्ति देवालयों की निन्दा करे तो उसे उत्तमसाहस का दण्ड दे ।[42] धार्मिक सहिष्णुता के फलस्वरूप हम पाखण्डियों तथा नास्तिकों के लिए अधिक दण्डों का निर्देश नहीं देखते है। मनु अवश्य पाखंडियों को राज्य से निर्वासित कर देने को कहते है।[43]

स्मृतिकाल मे धर्म का क्षेत्र व्यापक हो जाने के फलस्वरूप किसी को अपवित्र वस्तु खिलाकर अथवा शूद्रों द्वारा उच्च जाति के व्यक्तियों को स्पर्श करके दूषित करना भी धार्मिक अपराध समझा जाने लगा। याज्ञवल्क्य के अनुसार अभक्ष्य पदार्थ द्वारा ब्राह्मण

---

36. विष्णु० 5/174

37. शंखलिखित- विवाद रत्नाकर पृष्ठ 364 में उद्धृत ।

38. कौटिल्य 4/85/10

39. यशस्तिलक चम्पू ।।

40. राजतरंगिणी 5/169, 7/696, 7/1089.

42. कौटिल्य 3/75/18

41. याज्ञवल्क्य०2/211

43. मनुस्मृति 9/225

को दूषित करने पर उत्तम साहस का क्षत्रिय को दूषित करने पर मध्यम साहस का, वैश्य को दूषित करने पर प्रथम साहस का और शूद्र को दूषित करने पर 25 पण का दण्ड दिया जाना चाहिए ।[44] कौटिल्य भी इसी मत के पक्षधर हैं।[45]

विष्णु ब्राह्मण को सुरापान कराकर भ्रष्ट करने वाले को मृत्यु दण्ड देने को कहते है।[46] उनके अनुसार शूद्र आदि जानबूझ कर उच्च जाति के व्यक्तियों को स्पर्श कर उन्हें दूषित करे , तो उसे प्राण दण्ड देना चाहिए।[47] केवल स्पर्शमात्र के लिए प्राणदण्ड देना अत्यन्त क्रूर एवं अमानवीय है। इसी से याज्ञवल्क्य एवं कौटिल्य जैसे उदारचिंतकों ने इस अपराध के लिए एक सौ पण के दण्ड का निर्देश किया है।[48]

इसीप्रकार मनु के अनुसार यज्ञोपवीत आदि ब्राह्मण के चिन्हों को धारण करने वाले शूद्रों को राजा हाथ आदि कटवाकर दण्डित करे।[49] याज्ञवल्क्य इसी अपराध के लिए पाँच सौ पण का दण्ड (मध्यम साहस) देने को कहते है।[50] कौटिल्य के अनुसार जो शूद्र अपने को ब्राह्मण बताये और देव निमित्त धन का अपहरण करे ऐसे व्यक्ति को या तो औषधियों से अन्धा करा दिया जाय अथवा 200 पण का दण्ड दिया जाय।[51] स्मृतिकारों के अनुसार शूद्र द्वारा धार्मिक अपराध समझा जाता था ।[52] जान--बूझकर वेद पाठ करने अथवा सुनाने के लिए उसे कठोरशारीरिक दण्ड दिये जाते हैं।

---

44. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/296
45. कौटिल्य 4/88/13
46. विष्णु0 5/98-103
47. वही 5/104
48. याज्ञवल्क्य, 2/235
49. मनुस्मृति 9/224
50. याज्ञवल्क्य 2/304
51. कौटिल्य 4/85/10
52. गौतम, 13/4-5, बृहस्पति 20/12.

स्मृतियों में वैदिक मतानुसार वर्ण व्यवस्था को प्रधानता और गौरव प्रदान किया गयाहै। न्याय व्यवस्था में वर्ण व्यवस्था से सम्बद्ध सिद्धान्त और नियम पूर्ण रूप से समाविष्ट हैं। इसीलिए एक ही प्रकार के अपराध के लिए वर्णभेद के आधार पर दण्ड व्यवस्था में भी भेद हो जाता है। राजा का दायित्व प्रजा द्वारा धर्मपालन करवाने का होता है, किन्तु धर्म की व्यवस्था देना, धार्मिक आचरण का मार्ग प्रदर्शन करनाएवं धर्म को यथार्थ अर्थों में प्रतिष्ठित करना ब्राह्मण का कर्तव्य और ध्येय होता है। इसी प्रकार क्षत्रिय का कर्तव्य और ध्येय रक्षण, पालन एवं युद्ध करने में होताहै। कृषि, वाणिज्य और गो रक्षण के द्वारा वैश्य धन का संग्रह करता है और शूद्र सभी वर्णों की सेवा का कार्य करता है। धर्म के प्रथम चरण पर भिन्न भिन्न वर्णों के लिए उनके कार्य, व्यवसाय, गुणऔर स्वभाव के अनुरूप धर्म पालन का निर्देश हैं। गौतम के अनुसार विहित कर्मों को न करने वाला तथा अविहित कर्मों को करने वाला दण्ड का भागी होताहै।[53] आपस्तम्ब ने भी नियमों का उल्लंघन अपराध माना है।[54]

विशिष्ट वर्ण के लिए विशिष्ट धर्म विहित होता है और तत्सम्बन्धी वर्ग के स्वधर्म पालन न करने पर वह अपराधी होता है तथा दण्ड का भागी होताहै अथवा उसका प्रायश्चित या प्रतिकार करना होता है। धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों का अध्ययन करने से ज्ञात होताहैकि ब्राह्मण यद्यपि सब वर्णों में श्रेष्ठ और धर्म का व्यवस्थापक होता है किन्तु ज्ञात अथवा अज्ञात भाव में वह भी यदि नियमों का उल्लंघन करताहै तो वह भी राजा के द्वारा दण्ड का भागी होता है। इसी प्रकार किसी वर्ण विशेष का व्यक्ति किसी अन्य वर्ण के धर्म के पालन का अनाधिकारी होता है और ऐसा करने पर दण्ड पात्र होता है। इसी प्रकार विहित नियम के अनुसार स्वधर्म पालन न करने पर अथवा उसका उल्लंघन करने

---

53. गौतम धर्म सूत्र, 2/3/24

54. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2/27/18

पर भी वह प्रायश्चित अथवा दण्ड का पात्र होता है।

मनुस्मृति के अनुसार यदि ब्राह्मण चोर का धन लेकर अथवा चोर से यज्ञ करा कर या उसे विद्या पढ़ाकर उससे दक्षिणा लेताहै, तो वहचोर के समान ही अपराधी माना जाता है।[55] उक्त नियम के अनुसार ब्राह्मण के नैतिक बल का संकेत किया गयाहै और उसे लोभ या प्रवंचन से सुरक्षित रहने का निर्देश दिया गयाहै। ब्राह्मण के कर्तव्य के सम्बन्ध में यही कहा गया है कि किसी स्वामी विहीन सम्पत्ति का भोग करने का अधिकार ब्राह्मण के लिए तभी संभव है, जब वह उसे राजा के द्वारा दी गयी हो, अन्यथा सम्पत्ति भोग चोरी के समान दण्डनीय अपराध है।[56] नारद स्मृति में भी मनु के उक्त मत का पोषण किया गयाहै।[57] ब्राह्मण द्वारा चौर कर्म करने पर उस ब्राह्मण का अपराध क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की अपेक्षा कई गुना अधिक होताहै। ब्राह्मण चोरी के गुण दोषों से भली भाँति परिचित रहता है, अतः जानबूझकर किया हुआ अपराध निःसन्देह दण्डनीय होताहै।[58] गुरु का कर्तव्य है कि वह अपने शिष्य को सन्ध्या वन्दनादि के लिए प्रेरित करे और यदि शिष्य विहित विधि का त्याग करके यज्ञ करे, तो ऐसा करने वाला शिष्य और इस अकरणीय को सहन करने वाला गुरु दोनों अपराधी होते है।[59] मनु के अनुसार पूज्य व्यक्ति भी यदि अपने धर्म का पालन नही करता तो दण्डनीय होताहै। पिता, आचार्य, मित्र,माताद्स्त्री, पुत्र और पुरोहित आदिमें जो अपने धर्म में तत्पर नही रहता वह अपराधी होता है।[60] मनु के अनुसार धर्म की आजीविका वाला ब्राह्मण यदि धर्म से भ्रष्ट हो जाय तो राजा द्वारा दण्डनीय होता है।[61] ब्राह्मण के अपराध के सम्बन्ध ही मनुस्मृति में निर्देश है कि शुभ कार्य के निमित्त यदि बीस ब्राह्मणों को भोजन कराना हो और उसमें योग्य प्रतिवेशी और अनुवेशी ब्राह्मणों को सम्मिलित न किया गया हो, तो वह भोजन कराने वाले ब्राह्मण केलिए अपराध की स्थिति होती है।[62] सम्पन्न ब्राह्मण, किसी यज्ञोपवीत संस्कार से युक्त ब्राह्मण से उसकी इच्छा से प्रतिकूल किसी लोभ

---

55 मनुस्मृति, 8/340 — 56. वही, 8/37
57. नारद स्मृति, 10/7 — 58. मनुस्मृति 8/338
59. मनुस्मृति 8/317 — 60. मनुस्मृति 8/335
61. मनुस्मृति 9/273 — 62. मनुस्मृति 8/392,293

वश, दास कर्म कराता है या उसे दास कर्म करने के लिए विवश करता है ,तो यह उस सम्पन्न ब्राह्मण के लिए अपराध है।[63] ब्राह्मण सम्बन्धी अपराधों की स्थिति का अध्ययन करने पर ज्ञात होताहै कि अनेक अपराध दोष की सीमा तक आकर समाप्त हो जाते है। और उनके लिए किसी दण्ड व्यवस्था का स्पष्ट निर्देश नहीं है किन्तु ब्राह्मण द्वारा किये गये कुछ अपराधों के लिए कठोर दण्ड का विधान किया गया है उदाहरणार्थ यदि ब्राह्मण न्यायालय में मिथ्या भाषण करे या कूटसाक्षी देव तो वह राज्य निष्कासन के दण्ड का भागी होता है।[64] इसी प्रकार ब्राह्मण किसी भी की गवाही स्वीकार करके फिर गवाही देने में तटस्थ हो जाय या इन्कार कर दे, तो भी देश निष्कासन के दण्ड का भागीदार होता है।[65]

: समीक्षा :

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि मनु और याज्ञवल्क्य कालीन समाज में सामाजिक नियमों के उल्लंघन करने पर अनेक धार्मिक अपराध प्रचलित थे, जिनमें ब्राह्मण के द्वारा स्वर्ण की चोरी, ब्राह्मण को पीड़ित करना, देव मंदिर या देव प्रतिमा--ओं को विनष्ट करना, पुष्पान्वित हरे वृक्षों को काटना, पुरोहित द्वारा यज्ञानुष्ठान अधूरा छोड़कर जाना अथवा पुरोहित को या यजमान द्वारा दक्षिणा न देना, अन्य कन्या को दिखाकर अन्य कन्या के साथ विवाह करना आदि अनेक अपराध उल्लेखनीय है । मनु और याज्ञवल्क्य ने इन सामान्य धार्मिक अपराधों के उन्मूलनार्थ समाज में समुचित दण्ड व्यवस्था निर्धारित की हैं ।

---

63. वही, 8/412

64. याज्ञवल्क्य 2/81

65. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/82.

वस्तुतः समाज में धार्मिक नियमों के परिपालनार्थ सभीवर्णों के व्यक्तियों को धर्मनिष्ठ और कर्त्तव्य परायण बनाने की सद्दिशा में मनु द्वारा निर्दिष्ट निर्देशों का याज्ञवल्क्य के अनुसरण करते हुए धर्म प्रतिकूल, समाजविरोधी आचरण करने वाले, विभिन्न अपराधियों के लिए समुचित दण्ड व्यवस्था की है। इससे लोक जीवन में सुख शान्ति शुचिता और सदाचरणशीलता सम्बन्धित होगी और सामाजिक एवं धार्मिक अपराध समाज में स्वतः ही स्वल्प होगें। यदि किसी समाज अथवा राज्य में धार्मिक एवं सामाजिक सद्भावना प्रतिष्ठापित होकर अपराध विहीन आदर्श नागरिक निर्भय होकर विधि विहित जीवन यापन करते हैं तो वस्तुतः वह सुख शान्ति युक्त समाज अथवा राज्य आदर्श राज्य, "रामराज्य" ही होगा, जो मनु और याज्ञवल्क्य के लिए परम अभीष्ट है तथा उनकी अवधारणा के अनुकूल भी।

षष्ठ अध्याय

काम प्रेरित विविध सामाजिक अपराध तथा तत्सम्बन्धित दण्डों

: का तुलनात्मक अध्ययन :

षष्ठ अध्याय

काम प्रेरित विविध सामाजिक अपराध तथा तत्सम्बन्धित दण्डों का तुलनात्मक अध्ययन:

अनादि काल से अनधिकृत रूप से काम प्रेरित विविध क्रियायें सामाजिक अपराधों के रूप में परिभाषित हुई है। स्मृतिकारों ने इन काम प्रेरित अपराधों को नैतिक एवं वैवाहिक जीवन के प्रति गम्भीर अपराध के रूप में विहित किया है।[1] पति-पत्नी के पवित्र सम्बन्धों पर अत्यधिक बल दिया गया है।[2] मनु, याज्ञवल्क्य एवं अन्य स्मृतिकारों ने जिन विविध काम प्रेरित अपराधों एवं तत्सम्बन्धित दण्डों का विवेचन किया है वे इस प्रकार है :-

(1) कन्या दूषण : स्मृतिकारों ने व्यभिचार अथवा बलात्कार को अनैतिक कृत्य के रूप में देखा है। मनु तथा याज्ञवल्क्य आदि स्मृतिकारों ने कन्या के साथ अवैध संभोग को घृणित एवं कुत्सित अपराध माना है। परन्तु इस अपराध की भी निर्धारण वर्ण भेद के आधार पर किया गया है। इसको तीन आधारों पर विभाजित किया गया (1) सवर्ण के साधारण (2) अनुलोम वर्ण के आधार पर (3) प्रतिलोम वर्ण के आधार पर । कन्या दूषण या संग्रहण दो प्रकार से होताहै (1) मैथुन के द्वारा (2) अंगुलि निक्षेपण के द्वारा । मनु के अनुसार न चाहती हुई

---

1. बृहस्पति स्मृति 29/1-3 तथा नारद स्मृति. 2/59.
2. "The term which scholars translate as adultery is not properly rendered 'Stri Sangrahana' lit. means seizing women to oneself, which covers both rape and adultery. It ought to be rendered as offences regarding women, seising, is against both their husband or guardian when it is adultery and against husband and wife or guardian and women when rape."
Jaiswal K.P., Manu and Yagnavalkya, P. 154.

और अविवाहित अक्षत योनि कन्या को संभोग के द्वारा दूषित करना सवर्णेत्तर पुरूष का गम्भीर अपराध है, किन्तु यदि कन्या संभोग की इच्छा करती हो तो उसे दूषित करने वाला सवर्णी पुरूष अपराधी नहीं होता है। उक्त कार्य गान्धर्व विवाह माना जाता है।[3] नारद ने भी सवर्ण पुरूष के द्वारा गमन करने पर कन्या को वस्त्राभूषण से अलंकृत कर विवाह कर देने का विधान किया है। किन्तु यदि पुरूष ऐसा न करे तो अपराधी होता है।[4] याज्ञवल्क्य के अनुसार जिस कन्या का विवाह होने वाला हो, उस आभूषणों से युक्तसवर्णा कन्या के साथ संभोग एक गम्भीर अपराध है, किन्तु उच्च वर्ण की कन्या होने पर अपराध की गम्भीरता बढ़ जाती है । याज्ञवल्क्य ने कन्या का प्रेम न हो और वह पुरूष से उच्च जाति की हो, तो अपराध होता है।[5] मनु के अनुसार उच्च जाति के पुरूष के साथ संभोग की इच्छा करने से उसकी सेवा करने वाली कन्या को कुछ भी दण्ड न दें , पर हीन जाति के पास जाने वाली को दण्ड दें ।[6] इसी प्रकार उत्तम वर्ण की कन्या के साथ समागम करने वाला नीच जाति का पुरूष बंध दण्ड का पात्र होता है। समान वर्ण की कन्या के साथ संभोग करने वाले को यदि कन्या का पिता चाहे तो शुल्क लेकर छोड़ सकता है। (इसका आशय यह हुआ कि फिर उसी के साथ विवाह हो जाता है)।[7] इस संदर्भ में नारद का कथन है कि यदि कन्या प्रतिलोम वर्ण की है तथा उसे उसकी इच्छा के विरूद्ध दूषित करने वाले को बध दण्ड, तथा कन्या को

---

3. मनुस्मृति 8/264, 366
4. नारद स्मृति 15/72
5. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/287, 288
6. कन्यां भजन्तीमुत्कृष्टं न किञ्चिदपि दापयेत् ।
   जघन्यं सेवमानां तु संयतां वासयेद्गृहे ।। मनु० 8/365
7. उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यो बधमर्हति ।
   शुल्कं दद्यात्सेवमानः समामिच्छेत्पिता ।। मनुस्मृति 8/366

इच्छा होने पर धनदण्ड देना चाहिए।[8] याज्ञवल्क्य के अनुसार यदि कोई अपने से हीन जाति की प्रेम न करने वाली कन्या को बलपूर्वक नखक्षतादि से दूषित करे तो उसका अपराध गम्भीर होता है।[9] विश्वरूप के मत में भी गान्धर्व विवाह का विषय होने के कारण सकामा, सवर्णा कन्या अथवा अनुलोम कन्या को दूषित करने पर अपराध नहीं होता है।[10] मनु ने अंगुलि निक्षेपण के द्वारा सवर्णा कन्या की योनि दूषित करने वाले पुरुष को दो अंगुलियों को काटने का विधान किया है।[11] मनु की इस व्याख्या पर मेधातिथि ने "षट्शतानि वा दण्ड्यः है" कहकर उक्त दोनों दण्डों में विकल्प कर दिया है। कुल्लूक के अनुसार यह दण्ड अंगुलियों से कन्या की योनि को दूषित करने मात्र में प्रयुक्त होता है।[12] यदि कन्या, कन्या के साथ ऐसा दुर्व्यवहार करे, तो वह 200पण का अर्थदण्ड राजा को दे और दुगुना शुल्क लड़की के पिता को दे। ऐसी लड़की को 10 कोड़े का ताड़न दण्ड भी मनु ने विहित किया है।[13] यदि स्त्री ऐसा कुकृत्य करे तो राजा तत्काल उसकी दो अंगुली कटवाकर, उसके सिर के बाल मुड़वाकर, गधे पर बैठा कर सड़कों पर घुमावे ।[14]

व्यभिचार : याज्ञवल्क्य ने अपनी स्मृति में ऐसे काम-प्रेरित सम्बन्धों की लम्बी सूची दी है, जिनमें व्यभिचार जघन्य अपराध घोषित होता है। पिता की बहन, माता, भाभी, स्नुषा, सौतेली माता, बहन, आचार्य की पुत्री ,आचार्य की पत्नी

---

8. नारद स्मृति 15/71

9. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/288 पर मिताक्षरा

10. इच्छन्तीषु कन्यासु सवर्णास्वनुलोमासु वा प्रदुष्याप-
    हृतासु न दोषः, गान्धर्वविवाहविषयत्वात्। याज्ञ०स्मृति 2/288

11. मनुस्मृति 8/367 (पर विश्वरूप की टीका)

12. मनुस्मृति 8/367 पर मेधातिथि तथा कुल्लूक की टीका ।

13. मनुस्मृति 8/369

14. मनुस्मृति 8/370.

या अपनी पुत्री से संभोग करने वाला, गुरुपत्नी भोगी के समान होताहै। यदि ये स्त्रियाँ स्वेच्छा से भोग करती है तो उनके लिए भी कठोर दण्ड की व्यवस्था है।[15]

न्यूनाधिक परिवर्तन के साथ नारद ने भी याज्ञवल्क्य के मत का समर्थन कियाहै। नारद के मतानुसार मौसी, विमाता, सास, चाची, मामी, फूफी, मित्र की पत्नी, शिष्य की पत्नी बहिन, बहिन की सखी, बधू, पुत्री, गुरु पत्नी, सगोत्रा, शरणागता, रानी, प्रव्रजिता, धात्री, साध्वी व उच्च जाति की स्त्रियों के साथ संग्रहण[अ] या संभोग करना जघन्य अपराध है।[16]

<u>शूद्र द्वारा ब्राह्मणी के साथ संग्रहण</u> : धर्मशास्त्रों का आद्योपान्त अनुशीलन करने पर द्योतित होताहै किसमस्त अपराध एवं दण्ड विधान वर्ण व्यवस्था पर आधारित है। वर्ण की अनुलोमता एवं प्रतिलोमता के अनुसार अपराध की गम्भीरता निर्धारित होती थी । जहाँ चोरी जैसे अपराधों में दण्ड व्यवस्था अनुलोम थी, वहीं व्यभिचार जैसे अपराधों में प्रतिलोम हो गयी हैं । चतुर्वर्णों में शूद्र का स्थान निम्नवत् तथा ब्राह्मण का स्थान उच्चतम होता है, अतः शूद्र द्वारा ब्राह्मण स्त्री के साथ व्यभिचार अत्यधिक गम्भीर अपराध मानागया है। मनु के अनुसार यदि न चाहती हुई ब्राह्मणी के साथ शूद्र संभोग करे, तो अपराध गम्भीरतम

— होताहै। मेधातिथि ,जहाँ "अब्राह्मण" का अर्थ क्षत्रिय करताहै। वहीं कुल्लूक एवं

15• याज्ञवल्क्य स्मृति 2/232-233

[अ] मनु स्मृति 8/357 उपचारक्रिया केलिः स्पर्शो भूषणवाससाम् ।
स खट्वासनं चैव सर्वं संग्रहणम् स्मृतम ।।

स्त्रियं स्पृशेद्देशे यः स्पृष्टो वा मर्षयेत्तथा।
परस्परस्यानुमतिं सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ।।

16• नारद स्मृति 15/73, 74, 75

गोविन्दराज ने दण्ड की अधिकता को ध्यान में रखकर अब्राह्मण का अर्थ शूद्र ही लगाया है। वशिष्ठ के अनुसार यदि शूद्र, ब्राह्मण स्त्री के साथ संभोग करता है तो अपराध अधिक गम्भीर होता है, किन्तु यदि वह क्षत्राणी या वैश्या के साथ संभोग करे, तो अपराध ब्राह्मणी के साथ किये संभोग की तुलना में कुछ कम गम्भीर होता है।[17] उपर्युक्त विवरण में हम देखते हैं कि मनु, वशिष्ठ आदि स्मृतिकारों ने शूद्र द्वारा द्विज-स्त्री के साथ व्यभिचार को जघन्य अपराध माना है, परन्तु याज्ञवल्क्य, नारद, बृहस्पति व व्यास आदि आचार्यों ने शूद्र द्वारा व्यभिचार को अलग से वर्णित नहीं किया है। इन आचार्यों ने हीनवर्ण के अंतर्गत ही, शूद्र को समाविष्ट कर लिया है।

<u>सवर्ण पुरुषों द्वारा व्यभिचार</u> : आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार यदि प्रथम तीन (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) उच्च वर्ण का पुरुष शूद्र वर्ण की स्त्री से संभोग करे, तो उसे राज्य से निर्वासित कर देना चाहिए।[18] मनु के अनुसार पति द्वारा रक्षित ब्राह्मणी के साथ, यदि ब्राह्मण बलात्कार करता है, तो उसका अपराध संभोग की इच्छा करने वाली ब्राह्मणी, के साथ संभोग करने की अपेक्षा अधिक होता है। इसीप्रकार रक्षित क्षत्राणी के साथ वैश्य और वैश्या के साथ क्षत्रिय संभोग करे तो अरक्षित ब्राह्मणी के साथ संभोग करने के बराबर अपराध होता है।[19] इस संदर्भ में याज्ञवल्क्य ने उच्च वर्णी परस्त्री के साथ व्यभिचार करने पर गम्भीर अपराध माना है किन्तु अपने समवर्णी तथा अपने से निम्नवर्णी स्त्री के साथ व्यभिचार करने पर अपेक्षाकृत कम गम्भीर अपराध माना है।[20] नारद ने भी सजातीय व्यभिचार को उतना ही गम्भीर अपराध माना है, जितना याज्ञवल्क्य ने माना है।[21]

---

17. वशिष्ठ स्मृति -उद्धृत धर्मकोश, व्यवहार काण्ड, पृष्ठ 1845
18. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/27/8
19. मनुस्मृति 8/378,382
20. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/286,
21. नारद स्मृति 15/70

<u>ब्राह्मण द्वारा व्यभिचार</u> : मनु ने अरक्षित क्षत्राणी, वैश्या एवं शूद्रा के साथ संभोग वाले ब्राह्मण का अपराध गहन माना है, परन्तु यदि वह अन्त्यजा के साथ मैथुन करताहै, तो उसका अपराध, उपर्युक्त से दुगना हो जाताहै।[22] यदि पति से सुरक्षित क्षत्राणी या वैश्या के साथ ब्राह्मण संभोग करे तो अरक्षित स्त्रियों से संभोग करने की अपेक्षा अधिकगम्भीर अपराध होता है।[23] याज्ञवल्क्य नारद आदि अन्य स्मृतियों का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता हैकि ब्राह्मण द्वारा व्यभिचार कृत्य का अलग से वर्णन मनु के अतिरिक्त अन्य किसी स्मृतिकार ने नहीं किया है। याज्ञवल्क्य, नारद आदि स्मृतिकारों ने उच्चवर्ण द्वारा किये गये व्यभिचार के अन्तर्गत ही ब्राह्मण द्वारा किये व्यभिचार को भी सम्मिलित कर लिया है। उक्त विषय में एक उल्लेखनीय तथ्य यह हैकि ब्राह्मण के लिए शारीरिक दण्ड का सभी स्मृतिकारों ने निषेध किया है। मनु के मतानुसार ब्राह्मण को प्राणदण्ड विहित होने पर उसका मुण्डन करा देना ही प्राणदण्ड के समान है।[24]

<u>ब्राह्मणी के साथ व्यभिचार</u> : मनु के अनुसार यदि वैश्य व क्षत्रिय सुरक्षित व गुणवान् ब्राह्मणी के साथ संभोग करें तो अपराध अधिक गम्भीर होताहै, परन्तु अरक्षित ब्राह्मणी के साथ संभोग करें तो उक्त अपराध की अपेक्षा कम गम्भीर होताहै।[25] बृहस्पति ने भी पति द्वारा सुरक्षित ब्राह्मणी के साथ संभोग करना गम्भीर अपराध माना है ।[26] याज्ञवल्क्य का कथन है कि अपने से उच्च जाति की स्त्री के साथ व्यभिचार करना गुरुतम अपराध है और इसके लिए कठोर दण्ड की व्यवस्थाहै।[27] नारद तथा बृहस्पति ने उच्चवर्ण की स्त्री के साथ व्यभिचार करने पर स्पष्ट बध दण्ड का विधान किया है।[28]

---

22. मनुस्मृति 8/385
23. मनुस्मृति 8/383
24. मनुस्मृति 8/379 मौण्ड्य प्राणान्तिको दण्डो ब्राह्मणस्य विधीयते ।
25. मनुस्मृति 8/376-377
26. बृहस्पति स्मृति-उद्धृत धर्मकोश, व्यवहार काण्ड, पृष्ठ 1886.
27. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/286 — 28. नारदस्मृति, 15/70 तथाबृहस्पति स्मृति-उद्धृत स्मृति चन्द्रिका (2), पृ0 320.

प्रायः सभी स्मृतिकारों ने उच्च वर्णीय पुरुष द्वारा निम्नवर्णीय स्त्री के साथ व्यभिचार का विस्तृत वर्णन किया है। बृहस्पति के अनुसार यदि संभोगित स्त्री, संभोगी पुरुष से निम्न वर्ण की है, तो अपराध आधा हो जाता है, परन्तु यदि बलपूर्वक संभोग किया गया है, तो अपराध गहनतम होता है।[29] याज्ञवल्क्य ने अनुलोम क्रम से अरक्षित हीनवर्ण की स्त्री के साथ संभोग करने पर मध्यम साहस का दण्ड विहित किया है।[30] यहाँ यह ध्यातव्य है कि मनु द्वाराविहित मध्यम साहस 500 पण का है, तथा याज्ञवल्क्य द्वारा विहित मध्यम साहस दण्ड 540 पण का है, परन्तु मनु ने अनुलोम-क्रम से सुरक्षित शूद्रा के साथ संभोग करने पर क्षत्रिय व वैश्य के लिए, याज्ञवल्क्य से लगभग दो गुना 1000 पण (उत्तम साहस दण्ड) का विधान किया है।[31] याज्ञवल्क्य ने अन्त्यावसायिनी हीना स्त्री के साथ संभोग करने पर मध्यम साहस का दण्डविधान किया है।[32] विश्वरूप ने "हीनां" स्त्रीम्" की व्याख्या" हीनांत्वनुलोमां-स्त्रियम्" तथा मिताक्षरा ने भी "हीनां स्त्रियमन्त्यावसायिनीम्" की है। अपरार्क ने "अन्त्यां स्त्रीम्" ऐसा अर्थ किया है और कहा है कि यह दण्ड ब्राहमण से भिन्न अन्य वर्ण के लिए है।[33] नारद के अनुसार भी अन्त्यावसायी स्त्रियों का गमन करने पर मध्यम साहस का दण्ड होता है।[34] विष्णु का कथन है कि हीनवर्ण की स्त्री के साथ व्यभिचार करने पर मध्यम साहस का अर्धदण्ड होता है, परन्तु अस्पृश्य स्त्री में गमन करने

---

29. बृहस्पति स्मृति, उद्धृत धर्मकोश, व्यवहार काण्ड, पृष्ठ 1886
30. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/286
31. मनुस्मृति 8/283
32. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/289
33. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/289 पर विश्वरूप, मिताक्षरा, अपरार्क की टीका।
34. नारद स्मृति, 15/76.

का बध दण्ड विहित है।[35]

यानवल्क्य के मत में ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य आदि चाण्डाली के साथ संभोग करते हैं, जो योनाकृति का चिह्न दाग कर उन्हें देश से निष्कासित कर दिया जाय।[36] परन्तु मिताक्षरा में उक्त अपराध को इतने गम्भीर रूप में नहीं लिया गया है। इसके विपरीत यदि शूद्र चण्डाली के साथ गमन करे, तो शूद्र चण्डाल हो जाता है।[37] वीर मित्रोदय ने शूद्र के द्वारा चण्डाली से व्यभिचार करने पर भग-चिह्न अंकित करने का विधान किया है, देश निष्कासन का नहीं।[38] इसी प्रकार की व्याख्या विश्व रूप ने की है, तथा साथ में यह भी कहा है कि शूद्र को निर्वासित करना, उसको दास बनाने के लिए है उसको दास बनाकर प्रायश्चित् कराना चाहिए।[39] अपरार्क के मतानुसार यदि द्विजाति तथा शूद्र, चण्डाली के साथ संभोग करे तो उनके मस्तक पर सिर रहित पुरुष आकृति अंकित कर उन्हें देश से निष्कासित कर दिया जाय।[40]

स्वैरिणी स्त्री के साथ व्यभिचार : यानवल्क्य का कथन है कि पुरुष संभोग से जीविका चलाने वाली स्वैरिणी दासी के साथ धन दिये ही संभोग करना अपराध है। यदि अनेक, पुरुष मिलकर बलपूर्वक स्वैरिणीदासी के साथ संभोग करे तो उपर्युक्त अपराध का द्विगुना होता है।[41] नारद ने नियत पुरुष

- -

35. विष्णु स्मृति, 5/41-43

36. यानवल्क्य स्मृति, 2/294

37. यानवल्क्य 2/294 पर मिताक्षरा टीका।

38. "शूद्रस्त्वन्ताभिगमे तथा भगाधाकारेणाङ्क्य एव न तु प्रवास्यः स्यात्।" वीर मित्रोदय की यानवल्क्य स्मृति 2/294 परटीका।

39. यानवल्क्य ,2/294 पर विश्वरूप की टीका।

40. यानवल्क्य 2/294 अपरार्क की टीका।

41. यानवल्क्य स्मृति 2/290-291.

द्वारा रखी हुई, स्वैरिणी स्त्री के साथ समागम करने पर परस्त्रीगमन का दोष माना है। नारद के अनुसार ये गमन योग्य नहीं होती, क्योंकि दूसरे के द्वारा ग्रहण की गयी होती है। परन्तु नारद ने यह भी कहा है कि धन देकर रखी हुई स्त्री के साथ कोई यदि दूसरे के घर में समागम करता हैतो अपराध माना जाता है।[42] परन्तु यदि स्त्री स्वयं पुरूष के पास आये तो पुरूष का अपराध नहीं होताहै। नारद का मत हैकि स्वेच्छा से पुरूष के पास आने वाली अब्राहमणी, वेश्यादासी, निष्कासिनी,आदि स्त्रियों, से समागम अपराध नहीं है।[43] बौधायन के मतानुसार देवदासियों तथा वेश्याओं के साथ संभोग में पुरूष का अपराध नहीं माना है।[44] कात्यायन ने भी मानाहै कि स्वेच्छा से आयी हुई स्त्री के साथ समागम पुरूष का अपराध नहीं है।[45] याज्ञवल्क्य ने पुरूष के द्वारा दूसरे की अवरूद्धा जिसका बाहर निकलना मना हो तथा भुजिष्या किसी विशेष पुरूष को सौपी गयी दासी से संभोग करना अपराध माना है।[46]

याज्ञवल्क्य के अनुसार यदि कोई वेश्या शुल्क लेकर स्वस्थ्य रहते हुए भी पुरूष से संभोग की इच्छा न करे तो वह लिए हुए शुल्क का दुगुना धन दण्ड स्वरूप दे। तथा बिना शुल्क लिए ही संभोग की स्वीकृति देने के बाद नट जाने वाली वेश्या शुल्क के बराबर धन दे। इसी प्रकार का दण्ड-विधानयाज्ञवल्क्य ने वेश्या के समीप गये हुए पुरूष के विषय मेंविहित किया है। यदि पुरूष शुल्क देने के बाद स्वस्थ्य होते हुए भी संभोग न करे तो उसे शुल्क वापस नहीं मिलता है।[47] व्यास ने बलात् वेश्या के पास जाने

---

42. नारद स्मृति 15/78, 79
43. नारद स्मृति 15/60
44. बौधायन धर्मसूत्र, उद्धृत धर्मकोश, व्यवहार काण्ड, पृ0 1845
45. कात्यायन स्मृति, उद्धृत धर्म कोष, व्यवहार काण्ड, पृ0 1888.
46. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/290
47. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/292.

वाले पुरुष को अपराधीमाना है।[48]

स्त्री द्वारा व्यभिचार एवं गर्भपात करना :

स्त्री संग्रहण से सम्बन्धित अपराध के सम्बन्ध में सामाजिक धारणा यह है कि स्त्रियों से पुरुषों की अपेक्षा अधिक इन्द्रिय संयम अथवा सतीत्व की आशाकी जाती है। दूसरे शब्दों में समाज की कठोरता पुरुषों की तुलना में स्त्रियों के प्रति ज्यादा है। भावावेग वश पथभ्रष्ट हुई स्त्री को समाज पतिता कहकर उसकी भर्त्सना करता है।जबकि अनेक भद्र पुरुष कामुकता वश अनेक लैंगिक अपराध करते है। लेकिन नारी गर्भधारण, संतोनोत्पत्ति जैसे बाह्य लक्षणों के कारण, अपने काम प्रेरित अपराधों को छिपा नहीं पाती है और उसे समाज एवं कानून की प्रताड़ना ज्यादा मिलती है। स्मृतिकारों ने स्त्रियों द्वारा किये गये अपराधों को पुरुष की तुलना में अधिक गम्भीर माना है। गौतम ने स्त्री द्वारा व्यभिचार एवं गर्भपात को गम्भीर अपराध माना है। व्यभिचार के पश्चात् प्रायश्चित न करने वाली स्त्री को कुत्ते से नुचवाने का विधान किया है।[49] विष्णु ने रजस्वला स्त्री का उच्च वर्ण वाले पुरुषों का स्पर्श तथा उनके साथ संभोग करना गम्भीर अपराध मानागयाहै।[50] आपस्तम्ब धर्मसूत्र में शूद्र के साथ संभोग करने वाली स्त्री को नियम उपवासों सेपीड़ित करने को कहा है, परन्तु यह विधान उस त्रैवर्णिक स्त्री के विषय में समझना चाहिए, जिसके कोई सन्तान न हो ।[51]

- -

48. व्यास स्मृति, उद्धृत धर्मकोष, व्यवहार काण्ड, पृ० 1890

49. गौतमधर्म सूत्र 3/3/9, 3/5/15

50. विष्णु धर्मसूत्र 5/105

51. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2/27/10

याज्ञवल्क्य ने स्त्री द्वारा तीन वर्ण के पुरूष के साथ समागम करना गम्भीर अपराध माना है।[52] स्मृति चन्द्रिका ने याज्ञवल्क्य को उद्धृत कर कहा है कि यहाँ नारी के लिए भी दण्डविधान होने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह कथन पारस्परिक अनुराग से उत्पन्न वैषयिक उपभोग के विषय में है। साथ ही स्त्री को कठोर दण्ड दिया गया है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि यह दण्ड विधान उस स्त्री के लिए है जिससे उसके निकट सम्बन्धी सतीत्व का पालन करवाना चाहते है। सजातीय एवं अनुलोम गमन के विषय में स्त्री के अपराध को पुरूष के अपराध से आधा माना गया है, तथा इसी प्रकार का दण्ड विधान भी किया जाता है, क्यों कि याज्ञवल्क्य के उक्त कथन में वधदण्ड के आधे अर्थात् नाक,कान काटने का दण्ड विहित किया गया है।[53] कात्यायन ने भी इसी प्रकार की व्याख्या प्रस्तुत की है।[54] प्रायः सभी स्मृतिकारों ने अनिच्छा से या धोखे से सम्भुक्त नारी को अपराधिनी माना है। बृहस्पति ने भी ऐसी स्त्री को घर में गुप्त रूप से रखने तथा उसके लिए श्रृंगार वर्जित करने की व्यवस्था की है। ऐसी स्त्री को भूमि पर शयन करना चाहिए तथा मात्र जीवन यापन के लिए अन्न ग्रहण करना चाहिए । हीनवर्ण के द्वारा संभोगित स्त्री या तो त्याज्य है या वध्य है।[55]

मनु के अनुसार यदि काम के वशीभूत होकर कोई स्त्री पुरूष के पास स्वयं जाय तो स्त्री गम्भीर रूप से अपराधिनी मानी जाती है।[56] इसी प्रकार का विचार बृहस्पति

---

52. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/286

53. स्मृति चन्द्रिका, भाग-2, पृष्ठ 744-45

54. कात्यायन उद्धृत स्मृति चन्द्रिका, भाग-2 पृष्ठ 745.

55. बृहस्पति स्मृति- उद्धृत स्मृति चन्द्रिका , भाग-2 पृष्ठ 743-44

56. मनु स्मृति 8/358.

का भी होताहै। किसी पुरुष के घर पर आकर कोई स्त्री स्पर्शादि से प्रलोभित करके कामोत्तेजित कर दे तो नारी ही अपराधिनी होती है। ऐसी नारी के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई है।[57] कात्यायन ने भी कामस्वभाव से किसी स्त्री का स्वयं आकर कामाचार करना गम्भीर अपराध माना है। पति के परदेश चले जाने पर यदि कोई स्त्री अभिसार करे तो उसका अपराध पूर्वोक्त अपराध से कम माना जाता है।उन्होंने ऐसी स्त्री को बन्धन में रखने का विधान दिया है।[58]

याज्ञवल्क्य ने स्त्रियों को काम प्रेरित अपराध निम्नांकित माने है। निम्न जाति के पुरुषों के साथ व्यभिचार करना, भ्रूण हत्या करना।[59] मिताक्षरा की व्याख्या से कुछ इस प्रकार की प्रतीति होती है कि हीनवर्ण के पुरुष के साथ व्यभिचार करना ब्राह्मणी स्त्री के लिए पतन का कारण है, अन्य वर्ण की स्त्री के लिए नहीं। इस मत की प्रतीति वहीं पर उद्धृत शौनक के इस मत से भी होती है कि पुरुष के जो पतन के निमित्त होते है, वही स्त्री के लिए भी होते है, किन्तु ब्राह्मणी हीनवर्ण की सेवा करने पर अधिक पतित होती है।[60] संभवतः इन्हीं पतन के कारणों का प्रतिपादन करने के लिए इससे पूर्व याज्ञवल्क्य की मिताक्षरा टीका में उद्धृत वशिष्ठ ने शूद्र के साथ व्यभिचार से गर्भधारण करने वाली, भ्रूण हत्या, करने वाली, पति की हत्या करने वाली, गुरु के साथ संभोग करने वाली स्त्रियों को त्याज्य माना है।[61] मनु के साथ गौतम ने भी ऐसी स्त्री या कन्या को अपराधिनी माना है कि जो किसी दूसरी कन्या या स्त्री की योनि

- -

57. बृहस्पति स्मृति, उद्धृत स्मृति चन्द्रिका, भाग 2 पृ0 750

58. कात्यायन स्मृति, उद्धृत स्मृति चन्द्रिका, भाग 2, पृ0 749

59. याज्ञवल्क्य स्मृति, 3/297.

60. पुरुषस्य यानि पतननिमित्तानि स्त्रीणामपि तान्येव ।
ब्राह्मणी हीनवर्णसेवायामधिकं पतति ।। याज्ञवल्क्य 3/297 पर मिताक्षरा में शौनक का मत ।

61. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/72 पर मिताक्षरा टीका में उद्धृत वाशिष्ठ का मत ।

दूषित करती है।[62] मनु के मतानुसार जो स्त्री अपने सौन्दर्य या धन के घमण्ड में आकर किसी पुरुष के साथ व्यभिचार करे तथा अपने पति का अपमान करे वह अपराधिनी मानी जायेगी ।[63]

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि मनु याज्ञवल्क्य आदि आचार्यों ने स्त्री के अपराध निर्धारण में भी वर्ण की उच्चता एवं निम्नता का विशेष ध्यान रखा है। यही कारण है कि उच्च वर्ण के पुरुष के साथ संभोगरत कन्या को अपराधिनी नहीं मानागया है, जबकि अपने से निम्न वर्ण के पुरुष के साथ संगति करने वाली कन्या को अपराधिनी माना गया है।

<u>अप्राकृतिक व्यभिचार</u> : अप्राकृतिक व्यभिचार के अन्तर्गत धर्मशास्त्रकारों ने पशुओं के साथ मैथुन तथा स्त्री योनि के अतिरिक्त मानव शरीर के अन्य किसी अंश में किये गये मैथुन को ग्रहण किया है। याज्ञवल्क्य ने गौ मैथुन को पुरुष का गम्भीर अपराध माना है।[64] नारद ने भी गाय के साथ मैथुन करने वाले को उतना ही गम्भीर अपराधी माना है, जितना याज्ञवल्क्य ने माना है। नारद ने ब्राह्मण के द्वारा गौ-मैथुन करना भी गम्भीर अपराध माना है तथा एक सुवर्ण का दण्ड निर्धारित किया है।[65] अन्य पशुओं की योनि में मैथुन करना गौमैथुन की अपेक्षा कम गम्भीर अपराध है।[66]

याज्ञवल्क्य ने स्त्री योनि के अतिरिक्त मुखादि अन्य अंगों में मैथुन करना अपराध माना है।[67] याज्ञवल्क्य के इस कथन की व्याख्या करते हुए 'विवाद-रत्नाकर'

---

62. गौतम धर्मसूत्र, उद्धृत धर्मकोश व्यवहार काण्ड, पृ0 1843
63. मनु स्मृति 8/371
64. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/293
65. नारद स्मृति, उद्धृत धर्मकोश , व्यवहार काण्ड, पृ0 1884.
66. नारद स्मृति, 15/76
67. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/293.

तथा विवाद चिन्तामणि में कहा गया है कि अतिराग से जब कोई पुरुष दूसरे पुरुष के पास जाता है, अर्थात् समलैंगिक कृत्य करता है तब वह अपराध होता है। परन्तु अपरार्क ने इसको भिन्न व्याख्या की है। उनके मत में याज्ञवल्क्य का अभिप्राय मूत्रपुरीष आदि फेंकने से है।[68]

काम - प्रेरित - अपराधों के लिए दण्ड व्यवस्था :

स्मृतिकारों ने इन विविध काम प्रेरित अपराधों के लिए अर्थदण्ड, शारीरिक दण्ड (अंगच्छेदन) तथा मृत्यु दण्ड का विधान किया है। यहाँ हम इनका विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करहे हैं।

अर्थदण्ड निम्न अपराधों में विहित है : आपस्तम्ब के अनुसार यदि कोई युवा व्यक्ति जानता हुआ भी कुत्सित उद्देश्य से ऐसे स्थान पर चला जाय, जहाँ कोई विवाहिता स्त्री या कन्या बैठी हो तो उसको अर्थदण्ड देना चाहिए।[69] विष्णु धर्म सूत्र के अनुसार अप्राकृतिक व्यभिचार के लिए ब्राह्मण को 12, क्षत्रिय को 12, वैश्य को 100 और शूद्र को 500 कार्षापण का दण्ड निर्धारित है।[70] मनु ने अर्थदण्ड का निर्धारण वर्ण भेदानुसार किया है। सुरक्षित ब्राह्मणी के साथ ब्राह्मण के बलात् संभोग करने पर 1000 पण और सकामा ब्राह्मणी के साथ करने

---

68. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/293 पर
    विवाद रत्नाकर, विवाद चिन्तामणि
    तथा अपरार्क की टीका।

69. आपस्तम्ब धर्म सूत्र, 2/26/19

70. विष्णु धर्म सूत्र, 5/40-42.

पर 500 पण का दण्ड विहित है।[71] सुरक्षित क्षत्राणी से यदि वैश्य तथा वैश्या से यदि क्षत्रिय संभोग करे, तो क्रमशः 500 पण एवं 100 पण का दण्ड होता है।[72] रक्षित क्षत्राणी व वैश्या के साथ गमन करने पर ब्राहमण को उत्तम साहस दण्ड, तथा शूद्रा के साथ संभोग करने वाले क्षत्रिय एवं वैश्य पर भी 1000 पण का दण्ड होगा। 1000 पण का दण्ड अन्त्यज स्त्री के साथ संभोग करने पर ब्राहमण पर भी होता है।[73] अरक्षित क्षत्राणी, वैश्या, शूद्रा के साथ संभोग करने वाले ब्राहमण, वैश्य को 500 पण का दण्ड तथा क्षत्रिय को सिर मुड़ाकर 500 पण का दण्ड विहित है।[74] सुरक्षित ब्राहमणी के साथ यदि, क्षत्रिय व वैश्य संभोग करे तो क्रमशः 1000 पण तथा 500 पण का दण्ड तथा मूत्र से मण्डन करा दिया जाय। यदि अरक्षित ब्राहमणी है तो मात्र अर्धदण्ड ही लिया जाय।[75] याज्ञवल्क्य के अनुसार सजातीय पर स्त्री से संभोग करने पर उत्तम साहस तथा वर्ण की अनुलोमता होने पर मध्यम साहस का दण्ड होता है।[76] नारद ने सजातीय स्त्री में पौन-पुन्येन गमन करने पर उत्तम साहस तथा अनुलोम क्रम से गमन करने पर मध्यम साहस का दण्ड को विहित किया है।[77]

<u>पर पुरूष से बातचीत करना</u> : मनु एवं याज्ञवल्क्य ने पति के मना करने पर भी परपुरूष से बातचीत करने पर 100 सुवर्ण का दण्ड कहा है।[78]

---

71. मनुस्मृति 8/378
72. मनुस्मृति 8/382.
73. मनुस्मृति 8/383, 385
74. मनुस्मृति 8/384.
75. मनुस्मृति 8/375, 376
76. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/286
77. नारद स्मृति 15/70
78. मनुस्मृति 8/361.

उसीप्रकार निषेध किये जाने पर परस्त्री से सम्बन्ध रखने वाले पुरुष को याज्ञवल्क्य ने 200 पण से दण्डित करने का विधान किया है।[79] किन्तु मनु ने व्यभिचार के विषय में अनिन्दित भी पुरुष को अरण्य में, घने वृक्षादि से युक्त वन में, नदी के किनारे, एकान्त में परस्त्री से बातचीत करने पर 1000 पण से दण्डित करने का विधान किया है।[80] मनु ने कन्या सम्बन्धी व्यभिचार कर्म के विषय में अर्थदण्ड का विधान करते हुए कहा है कि समवर्णी, कामुक कन्या के साथ संभोगनकरके मात्र उसे दूषित करने पर पुरुष 200 पण के दण्ड का भागी होताहै। यहाँ पर उसका अंगुलिच्छेदन नहीं होगा। विवाद-रत्नाकर का मत है कि यह दण्ड व्यवस्था हीन कन्या के विषय में है किन्तु यदि कन्या ही कन्या की योनि को दूषित करे तो 400 पण का दण्ड होताहै।[81] याज्ञवल्क्य ने ब्याही जाने वाली सवर्णा कन्याको अपहृत करने वाले पुरुष को उत्तम साहस का दण्ड तथा ब्याही जाने वाली न होने पर प्रथम साहस का दण्ड निर्धारित किया है तथा कन्या के वास्तविक दोष को प्रकाशित करने पर 100 पण का तथा मिथ्या दोषारोपण पर 200 पण का दण्ड विधान किया है।[82] इस संदर्भ में मनु ने अर्थ दण्ड का परिणाम अपेक्षाकृत न्यून रखा है। मनु के अनुसार दोषयुक्त कन्या का दोष न बताकर दान कर देने पर 96पण तथा द्वेष के कारण कन्या को क्षतयोनि कहकर और दोष को न प्रमाणित करने पर 100पण दण्ड विहित है।[83]

---

79. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/285

80. मनुस्मृति 8/356

81. मनुस्मृति 8/369

82. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/287, 289.

83. मनुस्मृति 8/224. यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति ।
तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवतिं पणान् ।।

8/225. अकन्येति तु यः कन्यां ब्रूयाद्द्वेषेण मानवः ।
स शतं प्राप्नुयाद्दण्डं तस्य दोषमदर्शयन् ।।

याज्ञवल्क्य ने नियत 50 पण के दण्ड का विधान उस व्यक्ति के लिए किया है, जो किसी नियत पुरुष द्वारा रोकी गयी दासी के साथ गमन करे। मिताक्षरा ने इस कथन में आये "च" शब्द से वेश्या और स्वैरिणी स्त्रियों को ग्रहण किया है।[84] व्यास ने भी अवरुद्धा स्त्री के साथ गमन करने पर 50 पण का अर्थदण्ड निर्धारित किया है।[85] नारद ने भी इस अपराध के लिए 50 पण का दण्ड निर्धारित किया है।[86] अप्राकृतिक मैथुन के विषय में विष्णु, नारद, एवं याज्ञवल्क्य ने विभिन्न अर्थदण्ड निर्धारित किये हैं। विष्णु के अनुसार पशुओं के साथमैथुन करने पर 100 कार्षापण का दण्ड मिलना चाहिए।[87] नारद ने गाय के अतिरिक्त, अन्य पशुओं के साथ व्यभिचार करने पर 100 पण का दण्ड निर्धारित किया है, तथा गाय के साथ मैथुन करने पर मध्यम साहस के दण्ड का विधान किया है।[88] पशुओं के साथ व्यभिचार के संदर्भ में विहित दण्ड विधानों मेंयाज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति से साम्य रखती है।[89]

काम-प्रेरित अपराधों का दण्ड विधान :

काम प्रेरित अपराधी के लिए शारीरिक दण्डों का भी विधान है, जिनका विस्तृत विवरण इस प्रकार है।

- -

84. अवरुद्धासु दासीषु भुजिष्यासु तथैव च ।
    गम्यास्वपि पुमान्दाप्यः पञ्चाशत्पणिकं दमम् ।।

    याज्ञवल्क्य स्मृति- 2/290 तथा उस परमिताक्षरा ।

85. परोपरुद्धागमने पन्चाशत्पणको दमः ।। व्यासस्मृति, उद्धृत स्मृतिचन्द्रिका भाग-2 पृष्ठ 950.

86. नारद स्मृति 15/79

87. विष्णु धर्मसूत्र 05/44

88. नारद स्मृति 15/76

89. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/289

धर्मशास्त्रों में निरूपित दण्ड व्यवस्था में अंगच्छेदन का विधान किया गया है। गौतम धर्मसूत्र में किसी द्विजाति स्त्री के शूद्र द्वारा व्यभिचारित होने पर शूद्र के इन्द्रियच्छेदन की व्यवस्था की गयी है।[90] आपस्तम्ब धर्मसूत्र में भी इसी प्रकार का दण्ड विधान किया गया है। आपस्तम्ब का मत है कि दूसरे की औरत के साथ मैथुन करने पर शिश्नच्छेदन दण्ड देना चाहिए।[91] इसी प्रकार की व्यवस्था का नारद ने भी विधान किया है।[92] पति के द्वारा सुरक्षित या असुरक्षित द्विजस्त्री केसाथ संभोग करने वाले शूद्र को लिंगच्छेदन का दण्ड मनु ने निर्धारित किया है।[93] उनका मत है कि यदि कोई ब्राह्मणेत्तर जाति का पुरूष सम्भोग की इच्छा न रखती हुई कन्या का सम्भोग करे तो उसे लिंगच्छेदन का दण्ड देना चाहिए। बृहस्पति ने उक्त दण्ड व्यवस्था में मनु का समर्थन् करते हुए लिंगच्छेदन के साथ अण्डकोष काटने का भी विधान किया है।[94] नारद ने विमाता, मौसी, गुरूपत्नी, बहिन और बधू आदि नारियों के साथ संभोगरत होने पर शिश्न- कर्त्तन का विधान किया है। किन्तु मनु के अनुसार यदि समवर्णी व्यक्ति कन्या के साथ संभोग न करके बलात् उसकीयोनि में अंगुलि प्रक्षेप करें तो उस व्यक्ति की अंगुलियाँ काट लेनी चाहिए।[94] याज्ञवल्क्य ने अपने से हीन जाति की न चाहने वाली कन्या को बलपूर्वक नखक्षतादि से दूषित करने वालेव्यक्ति के हाथ काटने की व्यवस्था दी है। इसके साथ साथ अपने से निम्न कोटि के पुरूष के साथ व्यभिचार करने वाली स्त्री के नाक कान काटने का विधान उन्होंने प्रतिपादित किया है।[95]

---

90. गौतम धर्म सूत्र 2/3/2
91. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2/26/20
92. नारद स्मृति 15/75
93. मनु- स्मृति 8/374
94. नारद स्मृति 15/73, 74,
    मनुस्मृति 8/370
95. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/286

मनु ने किसी कन्या की योनि को अंगुलि प्रक्षेपण द्वारा दूषित करने वाली स्त्री की अंगुलि काटने तथा सिर मुड़ाकर गधे पर घुमाने कीव्यवस्था की है।[96]

धर्मशास्त्रों में शारीरिक दण्ड के अन्तर्गत कुत्तों से नुचवाने की भी दण्डविधि निर्धारित की है। गौतम ने कुत्तों से नुचवाने का दण्ड उसी स्त्री के लिए विहित किया है, जो अपने अपराध का प्रायश्चित न करे।मनु अपने पति का अपमान करके दूसरे पुरुष की संगति करने वाली स्त्री को कुत्तों से नुचवाने का विधान देते हैं।[97]

स्मृतिकारों ने काम प्रेरित विविध अपराधों को अत्यन्त गम्भीर दृष्टि से देखा है, तथापि उसके लिए मृत्युदण्ड जैसे कठोर दण्डों का भी विधान इस प्रकार किया है- गौतम-धर्मसूत्र के अनुसार यदि शूद्र द्विजाति की रक्षा में नियुक्त और उसकी स्त्री के साथ संभोग करे, तो वह शूद्र मृत्युदण्ड का अधिकारी होता है।[98] इसी प्रकार की व्यवस्था आपस्तम्ब और उनके भाष्यकार "हरदत्त ने भी दी है।[99] हरदत्त द्वारा गौतम के भाष्य में "आर्याभिगमनम्" के अतिरिक्त "आर्यस्त्री" कहने का आशय है "आर्यपुत्र द्वारा विवाहित शूद्रा स्त्री।" अतः ब्राह्मण द्वारा विवाहित शूद्रा से संभोग कीस्थिति में भी उस शूद्र के लिए मृत्यु दण्ड विहित है।[100]

इसके विपरीतयाज्ञवल्क्य ने प्रतिलोम क्रम से व्यभिचार करने में प्रवृत्त होने मात्र से क्षत्रियादि के लिए वधदण्ड की व्यवस्था की है। मिताक्षरा भाष्य के अनुसार यह वध

---

96. मनु स्मृति 8/370

97. गौतम धर्मसूत्र 3/5/14,15 , मनुस्मृति 8/371

98. गौतम धर्म सूत्र 2/3/2

99. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/27/9

100. आपस्तम्ब ,2/27/9 पर हरदत्त की टीका।

दण्ड गुप्ता स्त्री के विषय में समझना चाहिए।[101] मनु ने भी न चाहती हुई ब्राह्मण स्त्री के साथ संभोग करने पर मृत्युदण्ड का विधान किया है। मेधातिथि ने "अब्राह्मण" का अर्थ "क्षत्रियादि" किया है। कुल्लूक ने दण्ड की कठोरता को देखते हुए इसका आशय "शूद्र" किया है।[102] विष्णु ने अस्पृश्य स्त्री के साथ गमन करने पर पारदारिक मृत्युदण्ड का विधान किया है।[103] याज्ञवल्क्य एवं मनु के अनुसार हीन वर्णी पुरुष यदि अपने से श्रेष्ठ जाति वाली कन्या के साथ, चाहे वह संभोग की इच्छा रखती हो अथवा नहीं, संभोग करे, तो उसे प्राण दण्ड मिलना चाहिए।[104] कात्यायन ने भी बलात् संभोग करने पर मृत्यु दण्ड का विधान कियाहै।[105] मनु,याज्ञवल्क्य और नारद ने विमाता, मौसी, बहिन, बधू, गुरुपत्नी, सगोत्रा, शरणागता, स्त्रियों के साथ व्यभिचार करने पर प्राणदण्ड का विधान किया है। यदि स्त्री की भी सहमति हो, तो उसे भी प्राण दण्ड विहित है।[106] याज्ञवल्क्य के मत में उत्तम जाति की स्त्री के साथ यदि चण्डाल सम्भोग करे, तो उसके इस जघन्यतम कृत्य के लिए मृत्युदण्ड ही एक मात्र विधान है।[107] उनके अनुसार यदि स्त्री की जाति,पुरुष की जाति से ऊँची हो, तो ऐसे व्यभिचारी पुरुष को मृत्यु दण्ड ही अभीष्ट है।[108] मनु ने अभिरक्षित द्विजस्त्री के साथ संभोग करने पर अन्य दण्डों के साथ मृत्यु दण्ड का विधान किया है।[109]

- -

101. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/286 तथा उस पर मिताक्षरा टीका।

102. मनु स्मृति 8/358 तथा मेधातिथि तथा कुल्लूक ।

103. विष्णु धर्मसूत्र, उद्धृत धर्मकोष, व्यवहार काण्ड, पृ0 1846.

104. मनुस्मृति, 8/366 ,याज्ञवल्क्य स्मृति 2/288.

105. कात्यायन स्मृति, उद्धृत स्मृतिचन्द्रिका, भाग 2, पृ. 742.

106. मनुस्मृति 11/170, 171. याज्ञवल्क्य स्मृति, 3/232,233 नारद स्मृति 15/73-75

107. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/294.

108. बृहस्पति स्मृति, उद्धृत स्मृति चन्द्रिका, भाग-2 पृ. 743

109. मनुस्मृति 8/374.

मृत्युदण्ड , शारीरिक व आर्थिक दण्डों के अतिरिक्त विविध काम प्रेरित अपराधों हेतु देश-निष्कासन एवं सामाजिक तिरस्कार का भी विधान है। काम-प्रेरित विविध अपराधों हेतु देश-निष्कासन व सामाजिक तिरस्कार का विधान इस प्रकार है- बृहस्पति के अनुसार जो अपराधी बलपूर्वक पर स्त्री से व्यभिचार करता है उसे लिंगच्छेदन के साथ गधे पर बैठाकर घुमाना चाहिए।[110] यम स्मृति में कहा गया है कि जो ब्राह्मणी वैश्य अथवा क्षत्रिय से सम्भोग कराती है उसका शिरोमुण्डन करवाकर उसे गधे पर घुमाना चाहिए।[111] मनु ने अभिरक्षित ब्राह्मणी के साथ संभोग करने वाले क्षत्रिय के सिर को गधे के मूत्र से मुड़वा देने का विधानकिया है।[112.] मनु के अनुसार विविध काम-प्रेरित ब्राह्मण अपराधी का मुण्डन कराना व सामाजिक रूप से उसे तिरस्कृत करना ही मृत्युदण्ड होता है।[113]

इस प्रकार धर्मशास्त्रों के अध्ययन से विदितहोता है कि धर्माचरण,जीवन की स्वाभाविक व्यवस्था नहीं है। अपितु धर्मशास्त्र में धर्मशासन द्वारा स्थापित कठोर मर्यादा की व्यवस्था है। यहाँ यह भी परिलक्षित होताहै कि हीनवर्णी द्वारा, उच्चवर्णीव्यक्ति के प्रति काम-प्रेरित अपराध अधिक गम्भीर माना जाता है। तथापि स्त्री व पुरुष दोनों ही विविध काम प्रेरित अपराधों के लिए दण्ड के पात्र समझे जाते थे।

- -

110. बृहस्पति स्मृति, उद्धृत स्मृति चन्द्रिका, 2 पृष्ठ 742

111. यम स्मृति, उद्धृत धर्मकोश व्यवहार काण्ड, पृ0 1890

112. मनुस्मृति 8/375

113. मनुस्मृति 8/379.

: समीक्षा :

प्रस्तुत अध्याय में विविध काम प्रेरित अपराधों का प्रतिपादन किया गया है। उक्त अवधारणाएँ यद्यपि आज भी सार्थक हैं परन्तु अब वर्ण पर आधारित न होकर यह एक समान लागू हो गई है । दण्ड व्यवस्था भी प्रायः बहुत कुछ प्राचीन रूप है। दण्ड-व्यवस्था भी प्रायः बहुत कुछ प्राचीन रूप में ही हमें देखने को मिलती है। हमारे संविधान में व्याभिचार, बलात्कार इत्यादि काम प्रेरित अपराधों हेतु भारतीय दण्ड संहिता के अनुरूप दण्ड देने की व्यवस्था की गई है । मनु और याज्ञवल्क्य जैसे स्मृतिकारों ने काम प्रेरित दुष्प्रवृत्तियों को नियन्त्रित बनाये रखने के लिए सूक्ष्म से सूक्ष्म अपराधों को भी अनदेखा नहीं किया । जिससे मनु और याज्ञवल्क्य जैसे तत्कालीन समाज नियन्ताओ की सदाचरण के प्रति स्वस्थ्य चिन्ता का परिचय मिलता है। वस्तुतः धर्म शास्त्रों ने धर्मानुकूल सदाचरण को भारतीय सामाजिक आदर्श के प्रमुख आधार स्तम्भ की भाँति देखा और उसे ही एक स्वस्थ्य एवं सशक्त समाज का संवाहक माना है। इसी लिए सभी मानवीय क्रिया कलापों में सदाचार की अवमानना को दण्डनीय अपराध की श्रेणी में सभी स्मृतिकारों ने रखा है।

उपर्युक्त काम प्रेरित विविध सामाजिक अपराधों की समुचित निष्पक्ष दण्ड व्यवस्था से मनु और याज्ञवल्क्य दोनों स्मृतिकारों ने सदाचरणशील, नियमानुकूल एवं अपराधविहीन समाज की संस्थापना के लिए दिग्बोध देने में सार्थक सत्प्रयास कियाहै, जो आज भी आदर्श लोकजीवन के लिए हमें दिशा निर्देश दे रहे हैं ।

****

****

<u>सप्तम् अध्याय</u>

व्यावसायिक (आजीविका सम्बन्धी) विविध अर्थ-लोभ मूलक सामाजिक अपराधों तथा तत्सम्बन्धित दण्डों का तुलनात्मक अध्ययन :

सप्तम् अध्याय

व्यावसायिक (आजीविका सम्बन्धी) विविध अर्थ लोभ मूलक सामाजिक अपराधों तथा तत्सम्बन्धित दण्डों का तुलनात्मक अध्ययन

स्मृतियों तथा धर्मसूत्रों के समुचित अध्ययन से ज्ञात होता है कि मानवीय जीवन में धन की अनिवार्यता संग्रह और महत्ता का गौरव किसी भी युग में कम नहीं हुआ। भौतिक एवं सामान्य जीवन में धन का आकर्षण और लोभ मनुष्य की प्रवृत्ति रही है तथापि मानव जीवन के चार पुरुषार्थों में अर्थ को पर्याप्त स्थान प्राचीन भारतीय मनीषी ने दिया हुआ है। इसी लोभ एवं आकर्षण से विवश होकर मनुष्य अनेक प्रकार से धन सम्बन्धी अपराध करता है, किन्तु लोकहित एवं जनकल्याण के उद्देश्य से धन सम्बन्धी विविध व्यवस्थाओं का होना आवश्यक है।

<u>धनापहरण</u> : इस सम्बन्ध में मनु स्मृतिकार का कथन है कि यदि कोई मनुष्य या बन्धु बान्धव, वन्ध्या अथवा रोगिणी की सम्पत्ति का किसी ब्याज से अपहरण करता है, तो वह चोर के सदृश अपराधी है।[1] गैर स्वामिक धन पर मिथ्या स्वत्व स्थापित करने वाला व्यक्ति अपराधी होता है।[2] प्रत्यर्थी द्वारा अधिक धन लेकर कम बतलाने और अर्थी द्वारा कम धन देकर अधिक धन का अभियोग स्थापित करने की स्थिति में अर्थी व प्रत्यर्थी दोनों ही अपराधी होते है।[3] कपट-पूर्वक धन का अपहरण करने वाला व्यक्ति तथा उसके सहायक सभी अपराधी होते है।[4]

---

1. मनुस्मृति 8/28-29
2. मनुस्मृति 8/36
3. मनुस्मृति 8/59
4. मनु० 8/193

निक्षेपाहार : धर्मार्थ स्वीकार किया गया धन यदि किसी अन्य कार्य में लगाया जाय और धन देने वाले के मांगने पर लोभवश उसे न लौटाया जाय तो वह गम्भीर अपराध होता है।[5] याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार जो किसी वर्ग के सामूहिक धन को अधर्म पूर्वक अपहृत करता है, वह अपराधी होता है।[6]

धर्मशास्त्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वर्ण और व्यवसाय का सम्बन्ध उस काल में स्थापित हो चुका था । वर्णगत व्यवसाय को सामाजिक मान्यता प्राप्त हो चुकी थी और व्यावसायिक नियम निर्धारित किये गये थे । स्मृतिकारों ने निम्नांकित प्रसंगों को अपराध घोषित कर उनके सम्बन्ध में समुचित दण्ड व्यवस्था का विधान किया है। निक्षेपाहार, मिथ्या चिकित्सक, अबीज-विक्रय, वंचक, स्वर्णकार, जुआ खिलाने वाले, जुलाहे का सूत हरण करने वाले, वैश्य या श्रेष्ठी का तुलादि परीक्षा में दोषी पायाजाना व दोष पूर्ण सामग्री से वाणिज्य करना, नाविक के दोष से वस्तु नाश होना।आदि।

आजीविका सम्बन्धी अर्थ लोभमूलक विविध अपराध एवं दण्ड :

धोबी के अपराध— मनु स्मृति में कहा गया है कि कपड़े पीटने के लिए धोबी के पास सेमल की लकड़ी का पट्टा होना चाहिए। पट्टा चिकना हो, और उस पर कपड़े धीरे धीरे धोने चाहिए। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न लोगों के कपड़े मिलाना भी अनुचित है। किसी व्यक्ति के कपड़ों का अन्य किसी व्यक्ति को पहनने के लिएदेना भी अनुचित है। यदि धोबी उपर्युक्त कर्मों को करता है तो राजा द्वारा दण्ड का भागी होता है।[7]

---

5. मनुस्मृति 8/212,213.
6. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/187,190
7. मनुस्मृति 8/396.

रजक के कर्तव्य के सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य स्मृति में व्यवस्था की गयी है कि धोबी द्वारा दूसरे को कपड़ों को धारण करना अनुचित है। और ऐसा करना अपराध है । उक्त नियम के अतिरिक्त यदि धोबी धोने के लिए वस्त्रों का विक्रय करता है अथवा भाड़े पर देता है या बन्धक रखने के लिए देता है या किसी के मांगने पर देता है तो उसका अपराध उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है।[8]

वैयक स्वर्णकार के अपराध : धोबी के अपराधों के समान स्वर्णकारों के अपराधों का उल्लेख भी स्मृतियों में किया गया है। मनु स्मृति के अनुसार सुनार व्यवसायियों में सर्वाधिक निम्न और निकृष्ट हैं। स्मृतिकार मनु ने राज्य में इन्हें कण्टक के समान माना है। सुनार के अपराधों को चोरी जैसे अपराध से भी अधिक गम्भीर अपराध की श्रेणी में रखा गया है। सुनार का व्यवसाय अत्यन्त अविश्वसनीय है। वह स्वर्ण, रजत आदि की चोरी में सिद्धहस्त होता है। स्वर्ण आदि धातुओं में टीन धातु का सम्मिश्रण कर सकता है। स्मृतिकार मनु ने स्वर्णकार की अनैतिक वृत्ति को गम्भीरतम अपराध की श्रेणी में रखा है।[9]

जुलाहे तन्तुवाय के अपराध : व्यवसाय कोटि के अपराधों में रजक एवं स्वर्णकार के समान ही जुलाहे अथवा तन्तुवाय के अपराधों का भी उल्लेख स्मृतियों में किया गया है। तन्तुवाय के लिए नियम है कि वह दस पल सूत के बदले ग्यारह पल कपड़ा दे ।यदि वह ग्यारह पल से कम कपड़ा देता है तो अपराधी हैं।[10]

---

8. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/238

9. मनुस्मृति 9/292.

10. मनुस्मृति 8/397

मनु स्मृति के अनुसार जुलाहा, धोबी, स्वर्णकार आदि व्यवसायिकों के समान चिकित्सक भी आता है।

<u>मिथ्या चिकित्सा</u> : चिकित्सक भी स्वार्थ, लोभ, अथवा अज्ञानवश अपराध करता है। स्मृतिकारों का मत है कि चिकित्सक यदि अज्ञानवश पशुओं की समुचित चिकित्सा नहीं कर पाता ,तो वह अपराधी होता है,किन्तु यदि मानव चिकित्सक उचित रूप से तत्पर न हो अथवा संदिग्ध मन से चिकित्सा करता है तो वह पशु चिकित्सक के अपराध से भी अधिक बड़ा अपराधी होता है।याज्ञवल्क्य ने अल्प-ज्ञानी वैद्य की भर्त्सना की है और कहा है कि वह पशु पक्षियों की झूठी चिकित्सा करता है तो अपराधी होता है। किन्तु मनुष्यों तथा राजपुरूषों के चिकित्सा सन्दर्भ में अल्प ज्ञानी वैद्य के अपराध की मात्रा क्रमशः बढ़ती जाती है।[11] विष्णु का मत है कि ऐसा वैद्य जो राजपुरूषों या उत्तम पुरूषों की मिथ्या चिकित्सा करे, उसे उत्तम साहस का दण्ड दिया जाय, मध्यम पुरूषों के साथ करे तो मध्यम साहस दण्ड दे तथा पशुओं के साथ करे, तो प्रथम साहस का दण्ड दे।[12] याज्ञवल्क्य का कथन है कि जो अल्प ज्ञानी वैद्य पशु-पक्षियों की झूठी चिकित्सा करता है तो प्रथम साहस का दण्ड दिया जाय,मनुष्य की चिकित्सा करे तो मध्यम साहस तथा यदि राजपुरूष की चिकित्सा करे, तो उत्तम साहस का दंड दिया जाना चाहिए।[13] मिताक्षरा ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है कि वह अपने को वैद्य बताता है, जबकि इसके विषय में उसे कुछ भी ज्ञान नहीं है।[14]

---

11. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/242
12. विष्णु विवाद रत्नाकर, पृष्ठ 306 में उद्धृत।
13. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/242
14. वही 2/242 पर मिताक्षरा।

बृहस्पति के अनुसार यदि कोई वैद्य व्याधि औषधि व मंत्र के विषय में कुछ भी नहीं जानते हुए रोगी व्यक्ति से उसका इलाज करने के लिए पैसे ले ले तो वह चोर के समान दण्डनीय है।[15] मिथ्या चिकित्सा व चिकित्सक के व्यवसाय के प्रति कौटिल्य और अधिक गम्भीर व सचेतक प्रतीत होते है। इस सन्दर्भ में कौटिल्य का कथन है कि राजा को बिना सूचित किये, यदि कोई वैद्य किसी ऐसे रोगी की चिकित्सा करता है जो मृत्यु के करीब है और दवा देने के दौरान ही उसकी मृत्यु हो जाय तो उस वैद्य को प्रथम साहस का दण्ड दिया जाय। यदि उपचार में भूल से जाने के कारण मृत्यु हुई हो, तो मध्यम साहस दण्ड व शरीर के किसी विशेष अंग का गलत उपचार होने के कारण वह अंग जाता रहा हो, तो वैद्य को दण्ड पारुष्य प्रकरण के अनुसार यथावत् दण्ड देना चाहिए।[16]

<u>जुआ खेलना एवं खिलाना</u> : जुआ खेलने वाले व खिलाने वालों के सन्दर्भ में नारद का कथन है कि ऐसे व्यक्ति जो झूठे अक्ष से जुआ खेलते हैं। राजा उनके गले में अक्षों की माला बांध कर द्यूत खेलने के स्थान से बाहर निकाल देगा।[17] बृहस्पति भी ऐसे जुआरियों को राजकीय सम्पत्ति को हरण करने वालों को तथा गणों को ठगने वालों को राज्य से निर्वासित करने को कहते हैं।[18] विष्णु जुआरियों के अपराध के सन्दर्भ में कठोर दण्ड विधान बताते है। उनका कथन है कि झूठे अक्ष से खेलने वालों के हाथ कटवाने को तथा जुये में धोखा देने वालों का अंगूठा एवं तर्जनी काट देना चाहिए।[19]

---

15. बृहस्पति स्मृति, 22/8
16. कौटिल्य, 4/76/1
17. नारद॰विवाद-रत्नाकर, पृष्ठ 307 में उद्धृत।
18. बृहस्पति स्मृति 22/9
19. विष्णु॰विवाद-रत्नाकर, पृष्ठ 308 में उद्धृत।

कौटिल्य द्यूताध्यक्ष द्वारा रखवाये गये कौड़ियों और पासों को बदलने वाले जुआड़ियों को बारह पण दण्ड देने को तथा छल व कपट से जुआ खेलने वाले को प्रथम साहस का दण्ड देने एवं उसके जीते हुए धन को छीनने को कहते है। रखवाये गये पासों को बदलकर दूसरे को धोखा देने वाले को चोर के समान दंडित करने को कहते हैं।[20]

खोटे सिक्कों का चलाना : आधुनिक युग की भाँति स्मृति काल में भी जाली सिक्कों की समस्या गम्भीर रूप से व्याप्त थी । याज्ञवल्क्य का कथन हैकि जो नाणक (सिक्के) की परीक्षा करने वाला (नाणक परीक्षी) खोटे सिक्के को खरा कहता है व खरे को खोटा कहता है उसे उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिए ।[21] कौटिल्य भी जाली सिक्कों को स्वीकार करने वाले अथवा उनका निर्यात करने वाले पर एक हजार पण दण्ड करने को कहते है एवं वह व्यक्ति राजकोष में जो राजकोष में असली सिक्कों की जगह जाली सिक्के रखे, उसे मृत्यु दण्ड देने को कहते है।[22]

कम माप-तौल के साधनों का प्रयोग करना : सुदृढ़ व्यापार व्यवस्था को चलाने के लिये यह नितांत आवश्यक हैकि माप व तौल के सही साधन प्रयोग में लाये जाय, इसके लिए यह आवश्यक है कि उनके तराजू व बाँट गलत न हों । याज्ञवल्क्य का कथन है कि जो तराजू से तौलने, राजाकी आज्ञा, तौल के मानों (बटखरों) और नाणक (सिक्कों) में धूर्तता करें तो उसे उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिए।[23] कौटिल्य एक पूरा अध्याय "व्यापारियों से प्रजा की रक्षा" विषय

---

20. कौटिल्य 4/74/20
21. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/40, देखिये कौटिल्य 4/76/1
22. कौटिल्य 4/76/1
23. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/240

पर लिखा है।[24] शंख लिखित भी गलत तराजू, बाँट व प्रतिमान का प्रयोग करने वालों को अंगच्छेद आदि शारीरिक दण्डों को देने को कहते है।[25] कौटिल्य के अनुसार बाजार के अध्यक्ष (संस्थाध्यक्ष) का कर्तव्य है कि वह तराजू, बाँट और माप के वर्तनों का भी अच्छी तरह निरीक्षण करे जिससे माप-तौल में कोई गड़बड़ी न होने पाये। जो व्यक्ति अधिक भार के तराजू-बाँट से माल खरीद कर हल्के तौल से उसे बेचे तो उसको 24 पण का दण्ड देना चाहिए।[26] विष्णु भी माप तौल में गड़बड़ी करने वाले को उत्तम साहस का दण्ड देने को कहते है।[27] याज्ञवल्क्य का विचार था कि माप तौल में धूर्तता करके किसी वस्तु का आठवाँ भाग ले ले तो उससे 200 पण दण्ड लेना चाहिए। अपहृत दण्ड के कम या अधिक होने पर दण्ड भी कम या अधिक होता है।[28]

<u>खाद्य वस्तुओं एवं औषधियों में मिलावट करना</u> : वस्तुओं में मिलावट करने के लिये भी कठोर दण्ड दिया जाता था।

याज्ञवल्क्य का कथन है कि औषधि तेल, नमक, गन्ध, धान्य और गुड़ आदि वस्तुओं में विक्रय द्वारा अधिक लाभ पाने के लिए असार द्रव्य डालकर मिलावट करने पर 16 पण दण्ड लिया जाय।[29] कौटिल्य भी ऐसी वस्तुओं में मिलावट करने वाले को 12 पण का दण्ड विहित करते है।[30] मनु का विचार था कि अधिक मूल्यवाली वस्तु में थोड़ी मूल्य वाली वस्तु मिलाकर नहीं बेची जानी चाहिए।[31]

---

24. कौटिल्य 4/76/1
25. शंखलिखित, विवाद-रत्नाकर, पृष्ठ 298 में उद्धृत ।
26. कौटिल्य०, 4/76/1।
27. विष्णु० 5/122-123
28. याज्ञवल्क्य० 2/244
29. याज्ञवल्क्य० 2/245
30. कौटिल्य० 4/77/2
31. मनुस्मृति 8/203

धोखा देकर नकली या घटियामाल को बेचना :

घटिया माल को बढ़िया बताकर बेचने वाले व्यापारियों को दण्ड दिया जाता था। कौटिल्य के अनुसार जो व्यापारी लकड़ी, लोहा, मणि, रस्सी, चमड़ा, मिट्टी, सूत, छाल, और उन से बने हुए घटिया माल को बढ़िया बताकर बेचता हो, उस पर वस्तु की कीमत का आठ गुना अर्थदण्ड किया जाय।[32] याज्ञवल्क्य भी कौटिल्य की भाँति घटिया वस्तु को बढ़िया कहकर बेंचने पर अर्थदण्ड का विधान करते है। उनके अनुसार मिट्टी, चमड़ा, मणि, सूत, लोहा, और बल्कल के वस्त्र को घटिया होने पर भी अच्छा बताकर बेचने वाले से जितने मूल्य पर बिका हो उसे आठ गुना दण्ड लेना चाहिए।[33] इसके अतिरिक्त जो एक के हाथ बेची गई वस्तु को पुनः दूसरे के हाथ बेचता है अथवा दोषपूर्ण वस्तु को निर्दोष कहकर बेचता है उससे राजा वस्तु के मूल्य का दो गुना दण्ड लेवे।[34] बृहस्पति इस सन्दर्भ में और भी कठोर दण्ड-विधान विहित करते है। उनके अनुसार यदि एक व्यापारी किसी वस्तु के दोष छिपाकर या मिलावट करके वस्तु बेचे या पुरानी वस्तु को नई वस्तु बताकर बेचता है तो उससे वस्तु का दो गुना दण्ड क्रेता को तथा उतना ही राजकोष को दें।[35] नकली वस्तु को असली वस्तु बनाकर बेचने पर दण्ड मिलता है। कौटिल्य के अनुसार बनावटी कस्तूरी, कपूर आदि

- -

32. कौटिल्य० 4/77/2

33. याज्ञवल्क्य० 2/246.

34. वही. 2/257.

35. बृहस्पति० 22/7

वस्तुओं को असली कहकर, दूसरे देश में पैदा हुई कमतल वस्तुओं को असली देश की बनाकर, चमकदार, बनावटी मोती को, मिलावटी वस्तु को, अच्छे माल की पेटी को दिखाकर रद्दी माल की पेटी देने पर व्यापारी को 24 पण का दण्ड दिया जाना जाय।[36] विष्णु भी मिलावटी वस्तुओं को असली कहकर बेचने पर 100 कार्षापण के दण्ड का विधान करते है।[37] बृहस्पति का कथन हैकि जो व्यापारी नकली सोना, मोती, और मूंगे को बनाताहो और बेचता हो, तो वह क्रेता को उसका मूल्य और राजा को उसका दो गुना अर्थदण्ड, के रूप में दे।[38] याज्ञवल्क्य के अनुसार ढककर रखी हुई वस्तु को अपने हाथ की सफाई से कुछ और ही बनाकर लोगों को ठगता है और जो बनावटी कस्तूरी आदि गन्धक रखता है अथवा बेचता है, उसको इस प्रकार दण्ड लगता है।कृत्रिम कस्तूरी आदि का मूल्य एक पण से कम हो, तो पचास पण और एक पण मूल्य हो तो एक सौपण, दो पण मूल्य होने पर दोसौ पण का अर्थ दण्ड और मूल्य की वृद्धि की अनुसार दण्ड दिया जाताहै। 39 मनु ने इस विषय में विस्तार से उल्लेख तो नहीं किया है, परन्तु इस विषय में उनके विचार भी इस कथन से स्पष्ट हो जाते हैं कि जो मनुष्य नही जमने वाले बीज को, जमने वाले बीज कहकर बेचे तथा अच्छे बीज में दूषित बीज मिलाकरबेचे तो उसे राजा विकृत बध (अंगच्छेदन) से दण्डित करे।[40]

<u>स्वर्ण विक्रय सम्बन्धी विविध अपराध</u> : सबसे अधिक बेईमानी की सँभावना स्वर्ण में रहती है।इसी से मनु सब कंटकों में सबसे बड़ा कंटक स्वर्णकार है। यदि अन्याय लानेवाला व्यक्ति (किसप्रकार सोना, चाँदी आदि

- -

36. कौटिल्य० 4/77/2

37. विष्णु० 5/124 विवाद रत्नाकर, पृ० 299 में उद्धृत ।

38. बृहस्पति, 22/14

39. याज्ञवल्क्य, 2/247-248

40. मनु, 9/291

चुराने अथवा अच्छे धातु के साथहीन धातु मिलाने वाला पकड़ा जाय तो राजा उसके शरीर के प्रत्येक अंग को शास्त्रों से टुकड़े टुकड़े करवा डाले ।[41] इस सन्दर्भ में कात्यायन का भी विचार है कि जो स्वर्णकार सवर्ण के साथमिलावट करता है या गलत माप विक्रय करता है, उसके तीन अंग काट दिये जायँ और उत्तम साहस दण्ड दिया जाय ।[42] कौटिल्य स्वर्णकारों द्वारा की जाने वाली इन चोरियों से भलीभाँति परिचित थे । इसी से कौटिल्य का विचार था कि सुनार के लिए आवश्यकथा कि वह आभूषण या सोना चाँदी खरीदने से पहले स्वर्णाध्यक्ष को सूचित करें, अन्यथा उसे दण्ड मिलता था। चोर के हाथ से खरीदने पर उसे 48 पण और दूसरों से छिपाकर गहने आदि कोतोड़-मरोड़कर थोड़ी कीमत से खरीदे तो उसे चोर का दण्ड दिया जाय। इसके अतिरिक्त यदिसुनार सोने में से एक माष की चोरी कर ले तो उस पर 200 पण एक धरण चाँदी से एक मास चाँदी चुरा ले तो 12 पण दण्ड दिया जाय। यदि कोई सुनार खोटे सोने, चाँदी पर नकली रंग चढ़ा दे या शुद्ध सोना चाँदी में नकली वस्तु मिला देतो उस पर पाँच सौ पण दण्ड दिया जाय । यदि कोई सुनार खोटे सोने ,चाँदी पर नकली रंग चढ़ा दे तो उसकी जाँच आग में तपाकर करनी चाहिए ।[43]

<u>जुलाहे और धोबी के विविध अपराध</u> : इसी प्रकार तन्तुवाय (जुलाहा) दस पल सूत से ग्यारह पल से कम कपड़ा बुनकर देता थे, तो उसे बारह पण के अर्थदण्ड देने का विधान है।[44] धोबी भी यदि किसी के धुलाई के लिए आये हुए वस्त्रों को दूसरों को पहनने के लिए देताथा या बेचता था, तो वह

---

41. मनुस्मृति 9/292
42. कात्यायन, विवाद-रत्नाकर , पृ0 309 में उद्धृत ।
43. कौटिल्य० 4/76/1
44. मनुस्मृति 8/397

दण्डनीय होताथा । याज्ञवल्क्य के अनुसार जो धोबी धोने के लिए मिले हुए कपड़े पहनता था ,तो वह तीन पण का भागीदार होता था । यदि वह बेचता है या किराये पर देता है तो दस पण का दण्ड होगा।[45] इसके अतिरिक्त धोबी वस्त्रों को चिकने लकड़ी या पत्थर के पाट पर न धोकर अन्यत्र धोता था तो वह भी दण्ड का भागीदार होता था । वह क्षतिपूर्ति के साथ साथ वह छः पण दण्ड भी देता था ।[46]

<u>राज प्रतिबन्धित वस्तुओं का विक्रय</u> : राज्य कुछ वस्तुओं के निर्माण व विक्रय पर अपना एकाधिकार रखता था । यदि कोई व्यापारी इन वस्तुओं को बनाता या बेचता था तो उसे दण्ड मिलता था। मनु का कथन हैकि राजा से सम्बद्ध बिक्री करने योग्य विख्यात {वर्तन या राजोपयोगी हाथी, घोड़ा, गाड़ी आदि} सामान तथा निर्यात के लिए मना किये गये पदार्थ को लोभ से दूसरे देश में ले जाने वाले व्यापारी की सम्पूर्ण सम्पत्ति को राजा, राज्य की ओर से अपहरण कर ले ।[47] कौटिल्य का विचार भी मनु के विचार से साम्य रखता है। कौटिल्य के अनुसार जो व्यापारी शस्त्र, कवच, लोहा, रथ, रत्न, अन्न और पशु आदि किसी प्रतिबन्धित वस्तु को लाये या ले जाय, तो उत्तम साहस का दण्ड दिया जायगा व उसकी वस्तु को जब्त कर लिया जाय।[48] याज्ञवल्क्य के अनुसार भी राजा द्वारा विक्रयार्थ निषिद्ध और राजा के योग्य वस्तु बेची जानेपर भी राजा की हो जातीहै। उसका राजा अपहरण कर लेता है।[49] कौटिल्य बिना राजाज्ञा के नमक बनाने पर

- -

45. याज्ञवल्क्य-स्मृति 2/238

46. कौटिल्य० 4/76/1

47. मनु० 8/399

48. कौटिल्य० 2/37/21

49. याज्ञवल्क्य० स्मृति 2/261

उसके व्यापार करने पर उत्तम साहस का दण्ड देने को कहते है।[50] परन्तु इस नियम

से वानप्रस्थियों, श्रोत्रिय, बेगार ढोने वाले और तपस्वी लोगों पर लागू होता है।[51]

व्यापारी यदि राज्य द्वारा निर्धारित मूल्य के अनुसार वस्तुओं का विक्रय नहीं

करता था तो उसे दण्ड प्राप्त होता था । मनु का इस विषय में राजा के लिए निश्चित

निर्देश है कि वह आयात - निर्यात की दूरी , स्थान, कितने दिनों तक रखे रहने से

कितना लाभ, होगा , कितना घटेगा ? कर्मचारियों या अन्य कुंजी आदि तथा कीड़े

आदि के कारण कितना माल घटेगा ? इत्यादि सभी बातों का विचार कर बाजार

में बेचने योग्य समस्त सौदों का मूल्य निश्चित करके क्रय-विक्रय करवाये । राज्य सरकार

पाँच पाँच या पन्द्रह पन्द्रह दिनों के पश्चात् मुख्य व्यापारियों के सामने मूल्य का

निर्धारण करती रहे ।[52] याज्ञवल्क्य भी राजा द्वारा निर्धारित मूल्य पर हीप्रतिदिन

क्रय या विक्रय करने को कहते हैं।[53]

वस्तुओं की जमाखोरी करना अथवा अधिक बढ़े मूल्य पर बेचना :

जो व्यापारी आपस में मिलकर राजा द्वारा निर्धारित मूल्य की वृद्धि या

ह्रास को जानते हुए भी रजक आदि कोतथा अन्य शिल्पियों को पीड़ित करे तो उन्हें

उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिए ।[54] कौटिल्य के अनुसार जो व्यापारी आपस में

मिलकर किसी वस्तु को बेचने से रोक दें और फिर उसी वस्तु को अनुचित मूल्य {बाद}

में बढ़े हुये मूल्य} पर बेचे या खरीदे, तो उनमें से प्रत्येक को एक एक हजार पण का

दण्ड दिया जाय ।[55] याज्ञवल्क्य का कथन है ,जो व्यापारी आपस में मिलकर दूसरे

50. कौटिल्य०2/18/12

51. वही ,

52. मनुस्मृति, 8/401-402

53. याज्ञवल्क्य०2/251

54. याज्ञवल्क्य०2/249, विष्णु० 5/130

55. कौटिल्य,० 4/77/2

दूसरे देश से लाईगई वस्तु को कम मूल्य पर बिकने से रोकते है अथवा अधिक मूल्य पर बेचते है, उनको उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिए।[56]

<u>अर्थ कर (चुंगी) न देना :</u> चुंगी न देने पर भी व्यापारी को दण्ड मिलता था। मनु के अनुसार शुल्क (चुंगी) से बचने के लिए चुंगी घर का रास्ता छोड़कर दूसरे रास्ते से सौदा ले जाने वाला, असमय में विक्रय करने वाला, व्यापारी चुंगी के वास्तविक मूल्य के आठ गुना मूल्य के अर्थ- दण्ड से दण्डनीय होता है। कौटिल्य के विचार भी इस सन्दर्भ में मनु के विचार से साम्य रखते है। कौटिल्य का कथन है कि जो व्यापारी छिपकर या किसी छल से चुंगी दिये बिना ही चले जायँ या चुंगी घर को लाँघ कर चले जायें, उन्हें नियत शुल्क से आठ गुना अधिक शुल्क का दण्ड देना चाहिए।[58] याज्ञवल्क्य भी शुल्क से बचने के लिए सौदे व तौल को कम बताने वाले, शुल्क स्थान से भागने वाले, और विवादास्पद पण्य को खरीदने वाले से पण्य का आठ गुना दण्ड देने को कहते है।[59] चुंगीकर के मामले में विष्णु तो काफी कठोर दण्ड विधान बताते है। उनके अनुसार यदि कोई व्यापारी चुंगी न दे तो उसका सामान राज्य की ओर से हड़प लेना चाहिए।[60]

---

56. याज्ञवल्क्य॰ 2/250

57. मनु0 8/400

58. कौटिल्य॰, 2/37/21

59. याज्ञवल्क्य॰ 2/262

60. विष्णु0 3/15-16.

समीक्षा

मनु द्वारा प्रतिपादित विविध अर्थ-लोभ मूलक सामाजिक अपराधों का विवेचन किया गया है। स्मृति काल में भी वस्तुतः आज की तरह की भारतीय मानक ब्यूरो (आई. एस. आई. मार्क) बाजार मूल्य नियंत्रण, तथा कार्य नियन्त्रण आदि जैसी प्रणालियाँ प्रचलित थी। विविध आर्थिक लेन-देन, कार्य व्यवहारों, व्यापार वाणिज्य समागम जैसी आर्थिक प्रक्रियाओं के समागम में शुचितापूर्ण सदाचार एवं नियन्त्रण बनाये रखने के लिए विविध आर्थिक अपराधों हेतु उचित एवं अनुकूल दण्ड व्यवस्था की गयी थी। वस्तुतः सभी आर्थिक कार्य-कलाप पूर्णतः राजकीय नियंत्रण में ही होते थे। जिनका नियम उल्लंघन करने वालों को दण्डित करने का समुचित प्रावधान मनु और याज्ञवल्क्य द्वारा किया गया है। इसप्रकार तत्कालीन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में मनु की अर्थ लोभ मूलक अपराधों एवं तद्विषयक दण्ड व्यवस्था की अवधारणा वर्तमान सन्दर्भों में भी सार्थक एवं समीचीन है। इसी लिए कुछ परिमार्जित एवं परिवर्धित रूप में उक्त अवधारणाएँ आज भी विधिक एवं न्याय व्यवस्था पर लागू की गई हैं।

वस्तुतः अर्थ मूलक अनेक अपराध आज भी समाज में प्रचलित हैं, जिनका नियंत्रण और उन्मूलन मनु और (याज्ञवल्क्य जैसे) मूर्धन्य धर्म शास्त्रियों द्वारा निर्धारित समुचित दण्ड विधान से ही संभव है। इस दृष्टि से मनु और याज्ञवल्क्य स्मृति की न्यायसंगत दण्ड व्यवस्था आज भी इस देश के लिए दिग्बोधक है।

****

अष्टम अध्याय

मोह-मद प्रेरित विविध अपराध तथा तत्सम्बन्धित दण्डों की

: तुलनात्मक विवेचना :

अष्टम अध्याय

मोह मद प्रेरित विविध अपराध एवं दण्ड विधान :

मानव के पाप अथवा अपराध मोहमद जन्य कारणों पर भी आधारित होते हैं। ऋग्वेद में ऋषि वशिष्ठ वरुण की प्रार्थना करते हुए कहते हैं "ओ, वरुण। पाप स्वयं की पाप-प्रवृत्ति से नहीं उत्पन्न हुआ, इसका मूल सुरा, क्रोध, द्यूत अथवा अचित (अज्ञान) में है।[1] कभी कभी देखा जाता है कि मनुष्य प्रेरित अपनी दूषितमनोवृत्तियों-वश अपराध करता है। प्रस्तुत अध्याय में यही विवेचित किया गयाहै कि मनु और याज्ञवल्क्य जैसे स्मृतिकारों ने इस प्रकार के अपराधों का विवेचन कैसे किया है? तथा उनका दण्ड विधान क्या है?

मिथ्या साक्ष्य प्रस्तुत करना : ऐसे व्यक्ति जो न्यायालय में अनृत साक्ष्य देते थे उनकी गणना भी प्रकट चोरों में की गयी है। मनु का कथन हैकि लोभ या मोह वश असत्य गवाही देने पर एक सहस्त्र पण, मोह से असत्य गवाही देने पर प्रथम साहस, भय से असत्य गवाही देने पर दो मध्यम साहस, मित्रता से असत्य गवाही देने पर चौगुना अर्थात् चार प्रथम साहस, कामवश असत्य गवाही देनेपर दस गुना प्रथम साहस, क्रोध से असत्य गवाही देनेपर तिगुना मध्यम साहस, अज्ञान से असत्य गवाही देने पर सौ पण का अर्थ देनाचाहिए।[2] यह नियम केवल शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय पर ही

---

1. ऋग्वेद 7/86/3— मनु0 8/118, लोभान्मोहाद्भयात् मैत्रात् कामात् क्रोधात्तथैव च।
2. लोभात्सहस्रं दण्ड्यस्तु मोहात्पूर्वं तु साहसम्।
   भयाद्द्वौ मध्यमौ दण्डौ मैत्रात्पूर्वं चतुर्गुणम्॥ मनुस्मृति 8/120

   कामाद्दशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम्।
   अज्ञानाद्द्वे शते पूर्णे बालिश्याच्छतमेव तु॥ मनुस्मृति 8/121

लागू किया जा सकता है। यदि अपराधी ब्राह्मण है तो उसे मात्र देश से निकाल देना चाहिए।[3] मनु ने झूठे साक्षी को दण्ड देते समय इस बात पर ध्यान देने को कहा है कि मनुष्य ने ऐसा अनृत साक्ष्य किस भावना के वशीभूत होकर दिया है। असत्य गवाही देने वाले अ-ब्राह्मण अपराधी को इस प्रकार का अर्थदण्ड दिया जाता था। विष्णु के अनुसार झूठी गवाही देने वाले की सर्व-सम्पत्ति का अपहरण करलेना चाहिए।[4] इसी सन्दर्भ में बृहस्पति का कथन है कि ऐसे मध्यस्थ जो पक्षपात, लोभ या किसी अन्य किसी अन्य उद्देश्य से किसी भी पक्ष को ठगते है तथा ऐसे साक्षी जो झूठी गवाही देते है, उन्हें विवाद के धन से दूने धन काअर्थदण्ड देना चाहिए।[5]

मनु के समान याज्ञवल्क्य ने मिथ्या साक्ष्य प्रस्तुत करने के अपराध में सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक विस्तार से विचार किया है। इन्होंने तपस्वी, दानी, कुलीन, सत्यवादी धार्मिक, सरल, पुत्रवान्, धनवान्, स्मार्तकर्मों के अनुष्ठाता ब्राह्मणादि को साक्ष्य हेतु सत्पात्र स्वीकारा है। तथा स्त्री, बालक, वृद्ध, जुआरी, मदमत्त उन्मत्त, पाखण्डी, झूठे लेख लिखने वाले, विकलेन्द्रिय, पतित, धन देने वाले शत्रु, चोर, साहसी, मित्र, एवं बान्धवों द्वारा त्यक्त व्यक्तियों कोसाक्षी नहीं बनानाचाहिए।[7] किन्तु चोर और साहस आदि में सभी साक्षी हो सकते है।

---

3. कौटसाक्ष्यं तु कुर्वाणांस्त्रीन्-वर्णान्धार्मिको नृपः ।
   प्रवासयेद्दण्डयित्वा ब्राह्मणं तु विवासयेत् ।। मनु0 8/123

4. विष्णु0 5/179

5. बृहस्पति 22/15

6. याज्ञ0 व्यवहार068/69- तपस्विनो दानशीलाः कुलीनाः सत्यवादिनः ।
   धर्मप्रधाना ऋजवः पुत्रवन्तो धनान्विताः ।।
   त्र्यवराः साक्षिणो ज्ञेयाः श्रौतस्मार्त क्रियापराः ।
   यथाजाति यथावर्णं सर्वे सर्वेषु वा स्मृताः ।।

7. स्त्रीबाल वृद्ध कितवोन्मत्ताभिशस्तकाः । रङ्गावतारिपाखण्डि कूटकृद् विकलेन्द्रियाः ।।
   पतिताप्तार्थ सम्बन्धिसहायरिपुतस्कराः । साहसीदृष्टदोषश्च निर्धूताधास्त्वसाक्षिणः ।
   याज्ञ0व्यव0 7.

" सर्वं साक्षी संग्रहणे चौर पारुष्य साहसे ।"याज्ञवल्क्य 3/72.

उपर्युक्त साक्षियों में यदि कोई मोह मद वश असत्य कथन अथवा मिथ्या साक्ष्य प्रस्तुत करता है अथवा साक्ष्य देना स्वीकार करके भी साक्ष्य प्रस्तुत न करे तो राजा अर्थदण्ड रूप में सम्पूर्ण ऋणका धन तथा उसका दशमांश जुर्माने में वसूल करे । इन सभी धनों को छियालीसवें दिन दिला देना चाहिए ।[8] जो नीच व्यक्ति तथ्य या रहस्य को जानता हुआ भी साक्ष्य (गवाही) नहीं देता है वह कूट साक्षियों का अपराध या पाप करता है और उसे उन्हीं के समान दण्ड देनाचाहिए ।[9]

[10]
मनु के समान याज्ञवल्क्य की अवधारणा है कि लोभ या मोहवश मिथ्या साक्ष्य (कथन) प्रस्तुत करने वाले कूटसाक्षियों में प्रत्येक से उस विवाद में हारने वाले पर जितना दण्ड हो उससे दूना धन दण्ड के रूप में लेना चाहिए और वह यदि ब्राह्मण है तो उसे अपने राज्य से निर्वासित कर देनाचाहिए ।

पृथक् पृथक्दण्डनीयाः कूटकृत् साक्षिण स्तथा ।

विवादाद् द्विगुणं दण्डं विवास्यो ब्राह्मणः स्मृतः ।। याज्ञ0 3/81

- -

8. याज्ञवल्क्य व्यव0, 76 अब्रुवन् हि नरः साक्ष्यंमृणं सदश बन्धकम् ।
राजा सर्वं प्रदाप्यः स्यात् षट् चत्वारिंशकेऽहनि।। 76.

9. याज्ञ0व्यव0 77. न ददाति हि यः साक्ष्यं जानन्नपि नराधमः ।
स कूट साक्षिणां पापैस्तुल्यो दण्डेन चैव हि ।।

10. याज्ञ0 3/82 यःसाक्ष्यं श्रावितोऽन्येभ्यो निह्नुते तत्तमोवृतः ।
सःदाप्योऽष्टगुणं दण्डं ब्राह्मणं तु विवासयेत् ।।

तुलनीय मनु07/123.कौटसाक्ष्यं तु कुर्वाणांस्त्रीन् वर्णान्धार्मिको नृपः ।
प्रवासयेद् दण्डयित्वा ब्राह्मणं तु विवासयेत् ।।

किन्तु जहाँ साक्ष्य में सत्य बोलने से चारों वर्णों में यदि किसी वर्ण के व्यक्ति के बध की संभावना हो, वहाँ साक्षी झूठ बोल सकता है।[11] इस असत्य भाषण की शुद्धि के लिए द्विज सरस्वती देवी के लिए चरु बनाकर चढ़ाये ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनु और याज्ञवल्क्य दोनों की दृष्टि में लोभ या मोह से प्रेरित होकर मिथ्या कथन, कूट साक्ष्य अथवा झूठी गवाही देने वाले व्यक्ति अपराधी समझे जाते थे तथा इनके दण्ड की समुचित व्यवस्था भी इन दोनों धर्मशास्त्रियों ने निर्धारित की है — यथा मनु......

लोभात्सहस्रं दण्ड्यस्तु मोहात्पूर्वं तु साहसम् ।
भयाद्वौ मध्यमौ दण्डौ मैत्रात् पूर्वं चर्तुगुणम् ।। {मनु० 8/120}

<u>धन-धान्य, सूत -कपास, एवं पशु हरण करना</u> :

यदि लोभ या मोह मद वश कोई किसी का धान्य सूत कपास एवं पशु आदि हरण करता था तो धर्मशास्त्रियों ने इस साहस अपराध की सम्यक् दण्ड व्यवस्था सुनिश्चि -त की हैं ।

"कात्यायन" के अनुसार प्रच्छन्न या प्रकाश एवं रात्रि या दिन में परधन अपहरण करना स्तेय है।[12] नारद के अनुसार व्यक्ति को नशे की स्थिति में लाकर उसकी सम्पत्ति का अपहरण करना चोरी है।[13]

---

11. याज्ञ0 3/83 वर्णिनां हि वधो यत्र तत्र साक्ष्यनृतं वदेत् ।
तत्पावनाय निर्वाप्यश्चरुः सारस्वतो द्विजैः ।।

12. कात्यायन - उद्धृत - दायभाग6/9

13. नारद उद्धृत मिताक्षरा, याज्ञवल्क्य 2/275

बस्तुओं के मूल्य के आधार पर स्तेय के भी तीन भाग है- क्षुद्र, मध्यम, और उत्तम । मनु ने स्तेय और साहस में अन्तर व्यक्त किया है।[14] दूसरे की सम्पत्ति का बल पूर्वक राजकर्मचारी, उस धन के स्वामी अथवा अन्य किसी की उपस्थिति में अपहरण करना ही साहस है। साहस में सम्पत्ति के अतिरिक्त पशु, स्त्री आदि का अपहरण करना भी सम्मिलित है। चोरी की अपेक्षा, बल एवं दर्प से धान्य, सम्पत्ति, सूत कपास आदि का अपहरण गम्भीर अपराध माना जाता है। एवं स्तेय की अपेक्षा इसका अतिरिक्त दण्ड भी होता है।[15] मनु के अनुसार सूत, कपास, सुरा, बनाने की द्रव्य सामग्री, गोबर, गुड़, दही, दूध, छाँछ, पानी, तृण, बाँस की टोकरी, पशु के चमड़े, सींग, तेल, घी पकवान आदि अन्य साधारण बस्तुओं का हरण करने पर उन बस्तुओं के मूल्य का दुगुना दण्ड करना चाहिए।[16] इसी प्रकार ब्राह्मण की गायों का अपहरण करने वाले, बन्ध्या गाय के नाथने और पशुओं के चुराने पर राजा तुरन्त चोर का आधा पाँव कटवा डाले।[17] श्रेष्ठ पशु (हाथी, घोड़ा, आदि) शस्त्रादि, जीवन रक्षक दवाइयों के हरण करने पर, राजा देश, काल को देखकर दण्ड की व्यवस्था करें।[18]

---

14. मनुस्मृति 8/320 — 323.

15. मनुस्मृति 8/332.

16. सूत्रकार्पासकिण्वानां गोमयस्य गुडस्य च ।
    दध्नः क्षीरस्य, तक्रस्य पानीयस्य तृणस्य च ।। 8/326.

    वेणु वैदलभाण्डानां लवणानां तथैव च ।
    मृन्मयानां च हरणे मृदो भस्मन एव च ।। मनुस्मृति 8/327
    मत्स्यानां पक्षिणां चैव तैलस्य च घृतस्य च ।
    मांसस्य मधुनश्चैव यच्चान्यत्पशुसम्भवम् ।। मनुस्मृति 8:228.

    अन्येषां चैव मादीनां मद्यानामोदनस्य च ।
    पक्वान्नानां च सर्वेषां तन्मूल्यादि द्विगुणो दमः ।। मनु0 8/329.

17. मनु0 8/325. गोषु ब्राह्मण संस्थासु छुरिकायाश्च भेदने। पशूनां हरणे....

18. मनु0 8/324. महापशूनां हरणे शस्त्राणां मौषधस्य च ।
    कालमासाद्य कार्यं च दण्डं राजा प्रकल्पयेत् ।।

मनु ने कुलीन पुरुषों और कुलीन स्त्रियों को तथा बहुमूल्य रत्नों को हरण करने के गम्भीर अपराध मानते हुए इनके अपराधी को प्राणदण्ड दिये जाने का प्राविधान किया है ——

पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः ।
मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे बधमर्हति ।। मनुस्मृति 8/323.

याज्ञवल्क्य ने भी धनधान्य, अथवा सामान्य द्रव्य के अपहर्त्ताओं को गम्भीर साहसिक अपराधी मानकर उनके समुचित दण्ड का प्राविधान किया है। उनके अनुसार पर द्रव्य के हरण करने वालों को उस वस्तु के मूल्य का दुगुना और अपहरण करने के अपराध को अस्वीकार करने पर चौगुना दण्ड दिये जाने का परामर्श किया है—

सामान्य द्रव्य प्रसभ हरणोत्साहसं स्मृतम् ।
तन्मूल्याद्द्विगुणो दण्डो निह्नवे तु चतुर्गुणः ।। याज्ञवल्क्य स्मृति 3/230

मनु के समान अन्य स्मृतिकारों के समान दूसरे के धन का अपहरण करने वाले तस्करों को दो श्रेणियों में विभाजित किया है। (1) प्रकाश तस्कर तथा (2) अप्रकाश तस्कर।[19] इन दोनों प्रकार के सम्पत्ति अपहर्त्ता तस्करों के दण्ड का विधान भी मनु और याज्ञवल्क्य आदि धर्मशास्त्रियों ने विधिवत् किया है।

<u>मदिरा पान करना</u> : मदिरा पान मोहद मद प्रेरित समाज का सामान्य प्रचलित अपराध है, जिसके सम्बन्ध में धर्मशास्त्रकारों ने गम्भीर विचार किया है। बौधायन धर्म सूत्र[20] में सुरापान को साहस के अन्तर्गत आने वाले

---

19. मनु0 9/256. द्विविधांस्तस्करान् विद्यात् पर द्रव्यापहारकान् ।
प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्च चारचक्षुर्महीपतिः ।।

20. बौधायन धर्म सूत्र 1/10/18/18.

पातकों में गिनकर निषिद्ध माना गया है। मदिरापान करके उन्मत्त यदि पागल जैसी विविध चेष्टाएँ करता है तो यह साहस जैसे अपराध का ही एक रूप माना जायेगा।[21]

गौतम धर्म सूत्र में भी सुरापान को महापातक के अन्तर्गत गिनाया गया है।[22]

<u>(अ) स्त्री का मदिरा पान करना</u> : जो स्त्री पति से रोकी जाने पर भी मोह मद से प्रेरित होकर यदि मदिरा पीती है तो राजा उसे छः कृष्णल दण्ड दे।[23] इतना ही नहीं, जो स्त्री अपने स्वामी के विपरीत आचरण करने वाली या मदिरा पीने वाली हो तो उसका स्वामी उसके रहते दूसरा विवाह भी कर सकता है। इस सम्बन्ध में मनु का विचार है —

मद्यपाऽसाधुवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत् ।
व्याधिता वाधि वेतव्या हिंस्रार्थघ्नी च सर्वदा ।। मनु09/80

मनु ने स्त्रियों के मद्यपान[24] को उनके छः दोषों में गिनाकर त्याज्य माना है। याज्ञवल्क्य ने भी सुरापान को सामान्यतः महापातक के अन्तर्गत निन्दनीय अपराध माना है। उन्होंने स्त्री के मदिरापान करने का उल्लेख अप्रत्यक्षतः कर सामान्य रूप से मद्यपान और मद्यप को त्याज्य बताया है।[25] मद्यप के साथ निवास करने वाले भी

---

21. बौधायन धर्मसूत्र, 1/10/18/11.
22. गौतम धर्म सूत्र, 3/3/1 ब्रह्महा सुराप गुरुतल्पग मातृपितृयोनि सम्बन्धगा ।
स्तेन ... ... पतिताः ।।
23. मनु0 9/84 प्रतिषिद्धापि चेद्या तु मद्यमभ्युदयेष्वपि ।
प्रेक्षा समाजं गच्छेद्वा सा दण्ड्या कृष्णलानि षट् ।।
24. मनु0/9/13. पानं दुर्जन संसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ।
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसं दूषणानि षट् ।।
25. या0 प्रायश्चित्त0 227- ब्रह्महा मद्यपः स्तेनस्तथैव गुरुतल्पगः ।
एते महापातकिनो यश्च तैः सह संवसेत् ।।

महापातकीहोते है । याज्ञवल्क्य ने सुरा पीने वाली स्त्री का उपभोग भी उपपातक बताते हुए वर्जित माना है।[26]

(ब) ब्राह्मण अथवा ब्रह्मचारी का मदिरा पान करना :

मोह मद प्रेरित भी मदिरा पान करने की दुष्प्रवृत्ति कभी कभी ब्राह्मण एवं ब्रह्मचारी जैसे पवित्र जनों में भी अपराध रूप में परिलक्षित होती है। यद्यपि ब्राह्मण को मदिरा छूने तक का निषेध[27] मनु द्वारा किया गया है, तथापि यदा कदा ब्राह्मण, ब्रह्मचारी भी मदिरापान मोह मद से प्रेरित होकर कर लेते थे । मनु ने कहा कि जिस ब्राह्मण शरीर की आत्मा एक बार भी मदिरा से प्लावित हो जाती है। उसका ब्राह्मणत्व नष्ट हो जाता है, और वह शूद्रत्व को प्राप्त होता है।

"यस्य कायगतं ब्रह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृद ।
तस्य व्यपैति ब्राह्मण्यं शूद्रत्वं च स गच्छति ।। (मनु० 11/97)

यदिब्राह्मण मोह से मदिरा पीताहै तो उस पाप (अपराध) के लिए उसे प्रायश्चित हेतु अग्नि के वर्ण की तप्त मदिरा पीना चाहिए , जिससे उसका शरीर दग्ध होकर निष्कलुष हो जाय।[28] अथवा शुद्धि हेतु गो मूत्र, जल, गाय, का दूध , गाय का घृत

---

26. याज्ञ० प्राय० 239. आत्मनोऽर्थे क्रियारम्भो मद्यपस्त्री निषेवणम् ।
242. भार्यायाः विक्रयश्चैषामेकैकमुपपातकम् ।।

27. मनु० 11/96 अमेध्ये वा पतेन्मत्तो वैदिकं वाप्युदाहरेत् ।
अकार्यमन्यत् कुर्याद्वा ब्राह्मणो मदमोहितः ।।

28. मनु० 11/90 सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्नि वर्णां सुरांपिबेत् ।
तया स कार्ये निर्दग्धे मुच्यते किल्बिषात्ततः ।।

गाय का गोबर का रस, इनमें से किसी एक को आग के समान लाल करके तब तक पीना चाहिए, जब तक मर न जाये ।

गोमूत्रमग्निवर्णं वा पिबेदुदकमेव वा ।

पयो घृतं वामरणाद्गोशकृद्रसमेव वा ।। मनु0 11/91.

अथवा सुरापान के दोष शान्त्यर्थ ऊनी वस्त्र पहने, जटा रखे, और सुरापान का चिन्ह धारण करे । एक वर्ष तक रात में एक बार किसी अन्न की पीठी या तिल की खली मात्र खाय ।

अतएव सुरापान को निकृष्ट कार्य मानते हुए मनु ने ब्राह्मण आदि द्विजातियों को मदिरा पान न करने का निर्देश दिया है।

सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते ।

तस्माद् ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत् ।। मनु0 11/93

इसप्रकार हम देखते है कि मनु और याज्ञवल्क्य दोनों ने मदिरा पान को महापातक (घोर अपराध) मानते हुए परिष्कृत सामाजिक व्यवस्था में इसके पान का निषेध किया है।

<u>ब्रह्मचारी का मैथुन करना</u> : ब्रह्मचारी केद्वारा मदिरा (मधु) मांस और मैथुन[29] (स्त्री सहवास) करना सर्वथा वर्जित है। मोह और आसक्ति से प्रेरित होकर ब्रह्मचारी को स्त्रियों की ओर सकाम दृष्टि से देखना अथवा उनका आलिंगन कर[30] मैथुन करना सर्वथा त्याज्य है। यदि ब्रह्मचारी कभी अपनी इच्छा से काम अथवा मोहवश वीर्यपात करताहै तो वह अपने व्रत (ब्रह्मचर्य) का नाश करता है।[31]

---

29. मनु0 2/177 वर्जयेन्मधुमांसं च गन्धं माल्यं रसान् स्त्रियः ।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम् ।।

30. मनु02/179. द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथानृतम् ।
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च ।।

31. मनु0 2/180. कामाद्धि स्कन्दयन्रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः ।।

याज्ञवल्क्य ने भी ब्रह्मचारी के लिए स्त्री-सहवास[32] वर्जित बताया है तथा साथ में मधु, मांस, लेप और अंजन जूठा भोजन कठोर वचन, जीवहिंसा, उदय और अस्त के समय सूर्य-दर्शन, अश्लील भाषण, और दोषान्वेषण से भी परहेज रखने का परामर्श दिया है। याज्ञवल्क्य ने ब्रह्मचारी द्वारा किसी स्त्री के साथ संभोग (मैथुन) करने पर उसे "अवकीर्णी" बताते हुए इस अपराध अथवा पाप के प्रायश्चित हेतु निर्ऋति देवता के लिए गदहे द्वारा पशुयज्ञ करने पर शुद्ध होने का विधान किया है। यथा —

अवकीर्णी भवेद् गत्वा ब्रह्मचारी तु योषितम् ।

गर्दभं पशुमालभ्य नैर्ऋतं स विशुध्यति ।। याज्ञवल्क्य प्रा० 280

इसके अतिरिक्त बिना अस्वस्थ्यता के सात दिन तक भिक्षाटन और अग्नि कर्म छोड़ने पर "कामावकीर्ण" आदि मंत्र से पुनः अग्निका उपस्थापन उसे करना चाहिए ।

भैक्षाग्निकार्ये त्यक्त्वा तु सप्तरात्रमनातुरः ।

कामावकीर्ण इत्याभ्यां जुहुयादाहुति द्वयम् ।।

उपस्थानं ततः कुर्यात् सं मा सिञ्चन्त्वनेन तु ।। याज्ञ०प्रा० 281.

यदि ब्रह्मचारी स्त्री मोहवश स्वप्न में अथवा स्त्री सहवास में वीर्यपात करता है तो इस अपराध या पाप के लिए प्रायश्चित स्वरूप उसे, सूर्य की अर्चना कर "पुनर्माम्", ऋचा का तीन बार जप करना चाहिए।[33] इसके अतिरिक्त ब्रह्मचारी को घड़े में पानी, फूल गाय का गोबर, मिट्टी और कुश आवश्यकतानुसार लाकर प्रतिदिन भिक्षा भी मांग लानी चाहिये।[34]

---

32. याज्ञवल्क्य आचाराध्याय, 33. मधु मांसाञ्जनोच्छिष्ट शुक्त स्त्री प्राणि हिंसनम् ।
भास्करालोकनाश्लील परिवादादि वर्जयेत् ।।

33. मनुस्मृति 2/181. स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः ।
स्नात्वार्कमर्चयित्वा त्रिः पुनर्मामित्यृचं जपेत् ।।

34. मनु० 2/182. उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिका कुशान् ।
आहरेद्यावदर्थानि भैक्षं चाहरहश्चरेत् ।।

इसी प्रकार संन्यासिनी अथवा परिव्राजिका का संभोग सम्बन्धी अपराध क्षम-णीय है। नारद तथा मत्स्यपुराण इनके साथ किये संभोग को अत्यन्त पाप मानते हैं, जबकि याज्ञवल्क्य और कौटिल्य कुछ पण का ही दण्ड निर्धारित करते हैं।[35]

वस्तुतः कौटिल्य ने संन्यासी और संन्यासिनियों अथवा परिव्राजिकाओं को को उच्च दृष्टि से नहीं देखा है, क्यों कि उनके समय में बौद्ध भिक्षु एवं भिक्षुणियों तथा परिव्राजिकाओं का समाज में भोग विलास पूर्ण नग्नचित्र प्रस्तुत था। अतएव वे उनका विधि सम्मत सर्व मान्य दण्ड प्रक्रिया से नियमन करना चाहते थे। सर्वप्रथम उन्होंने भिक्षु और परिव्राजिकाओं को लौकिक शासन के सामने सामान्य नागरिक के रूप में उत्तरदायी बनाया। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार भी किया जा सकता है कि कौटिल्य और याज्ञवल्क्य निम्नवर्ण की परिव्राजिकाओं के सम्बन्ध में विधान कर रहे हैं और नारद एवं मत्स्य पुराण उच्चवर्ण की।[36] किन्तु इस संगति का कोई समुचित आधार नहीं है। मनु पर कुल्लूक ने व्याख्या करते समय प्रव्रजिता का अर्थ स्पष्टतया बौद्ध और ब्रह्मचारिणी किया है।

"बौद्धा ब्रह्मचारिणीभिः संभाषाः कुर्वन् किञ्चिद् दण्डमात्रं दाप्यः स्यात ।।"
—[मनु0 8/363 पर कुल्लूक भट्ट की व्याख्या]

कौटिल्य[37] ने समाज में घूमनेफिरने वाली परिव्राजकाओं का स्तर वेश्या से अधिक नहीं रखा, क्यों कि वेश्या और परिव्राजिका के साथ व्यभिचार के अपराध में में कुछ पण दण्ड का विधान किया है। पण की मात्रा में थोडा भेद है न कि अपराध की प्रकृति या विशेषता में। म.म.काणे महोदय ने मत्स्य पुराण[38] के वचन में वर्णोत्कृष्टा

- -

35. कौटिल्य 4/13. याज्ञवल्क्य 2/293.
36. P.V. Kane, The History of Dharm Shastra Vol III P. 535.
37. अर्थशास्त्र 4/13. याज्ञवल्क्य 2/291.
38. मत्स्य 227/141. तथा प्रव्रजिता नारी वर्णोत्कृष्टा तथैव च ।
इत्यगम्याश्च निर्दिष्टास्तासां तु गमने नरः ।।

का सम्बन्ध प्रव्रजिता के साथ लगानायाहा, यह सर्वथा अनुपयुक्त है। प्रव्रजिता और वर्णोत्कृष्टा दोनों के साथ हुए अपराध में यहाँ कहा जा रहाहै जैसा कि "तथैव" च" शब्द से सुस्पष्ट है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते है कि धर्मशास्त्र साहित्य में विशेषतः मनु और याज्ञवल्क्य ने ब्रह्मचारी अथवा ब्रह्मचारिणी, संन्यासी या संन्यासिनी या परिव्राजिका, भिक्षु या भिक्षुणी को मैथुन {संभोग} करने को गम्भीर अपराध या पाप मानते हुए इसके समुचित प्रायश्चित अथवा दण्ड की व्यवस्था की है।

<u>परदाराभिमर्शन</u> : मोह-मद वश यदि कोई व्यक्ति पराई स्त्री के साथ संभोग करने में प्रवृत्त होता है तो इस गम्भीर अपराध के लिए उन्हें भयंकर दंड दे उसके नाक-कान आदि कटवाकर देश से निकाल दे।[39] क्यों कि परस्त्रीगमन से वर्ण संकर होता है। जिससे मूल ही हरण करने वाला अधर्म सर्वनाश का कारण होता है।[40] मनु के अनुसार परस्त्री गमन का अपवाद जिस व्यक्ति पर लगा है, ऐसा कोई पुरुष यदि किसी परस्त्री के साथ एकान्त में संभाषण करे तो राजा उस पर प्रथम साहस दण्ड करे।[41]

किन्तु जो पुरुष पराई स्त्री गमन के दोष सेंह रहित हों और किसी कारण से दूसरेकी स्त्री से लोगों के सामने अथवाएकान्त में भाषण करे तो वह अपराधी न होने के

- -

39. मनुस्मृति 8/352. परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान्नृन्महीपतिः ।
उद्वेजन करैर्दण्डैश्छिन्नयित्वा प्रवासयेत् ।।

40. मनुस्मृति 8/353. तत्समुत्थो हि लोकस्य जायते वर्णसंकरः ।
येन मूलहरोऽधर्मः सर्वनाशाय कल्पते ।।

41. मनुस्मृति 8/354. परस्य पत्न्या पुरुषः संभाषां योजयन्रहः ।
पूर्वमाक्षारितो दोषैः प्राप्नुयात पूर्वसाहसम् ।।

कारण दण्ड पाने योग्य नहीं है।[42] जो पुरुष पराई स्त्री से मोहवश तीर्थ या नदी के तटवर्ती वन में या गांव के बाहर निर्जन उपवन में नदियों के संगम स्थान में रहस्य भाषण करे उसे राजा संग्रहण का दण्ड (एक सहस्त्र पण) करे।[43]

इस दृष्टि से मोहवश परस्त्री के पास माला, फूल, इत्र आदि भेजना, उसके साथ हँसी मजाक करना, आलिंगन करना, उसका वस्त्र भूषण छूना, उसके साथ चारपाई पर बैठना ये सब क्रियाएँ संग्रहण कही गई है।[44] कोई मोहासक्त व्यक्ति परस्त्री के स्पर्श न करने योग्य अंग का स्पर्श करे अथवा उसके अपने अंग को स्पर्श करने पर कुछ न बोले यह सब परस्पर के अनुमोदन से होने वाला संग्रहण ही है।[45]

यदि मोहान्ध कोई शूद्र द्विजाति की स्त्री के साथ संग्रहण करे तो वह प्राणदण्ड देने योग्य है। चारों वर्णों को सबसे अधिक अपनी स्त्रियों की ही रक्षा करनी चाहिए।[46]

गृहस्थ पुरुष ने जिस पुरुष को मना कर दिया हो तो वह उस गृहस्थ की पत्नी से बात न करे। ऐसा निषिद्ध भाषण मोहवश जो व्यक्ति करता है, वह सोलह मासा सुवर्ण दण्ड का पात्र होता है।[47]

---

42. मनु0 8/355- यस्त्वनाक्षारितः पूर्वमभिभाषेत कारणात् ।
न दोषंप्राप्नुयात किंन्चिन्न हि तस्य व्यतिक्रमः ।।
43. मनु0 8/356- परस्त्रियं योऽभिवदेत्तीर्थेऽरण्ये वनेऽपि या ।
नदीनां वापि संभेदे स संग्रहणमाप्नुयात् ।।
44. मनु0 8/357. उपचार क्रिया केलिः स्पर्शो भूषणवाससाम् ।
सह खट्वासनं चैव सर्वं संग्रहणं स्मृतम ।।
45. मनु0 8/358. स्त्रियं स्पृशेददेशे यः स्पृष्टो मर्षयेत्तथा ।
परस्परस्यानुमते सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ।।
46. मनु0 8/359, अब्राह्मणः संग्रहणे प्राणान्तं दण्डमर्हति ।
चतुर्णामपि वर्णानां दारा रक्ष्यतमाः सदा ।।
47. मनु0 8/361. न संभाषां परस्त्रीभिः प्रतिषिद्धः समाचरेद् ।
निषिद्धो भाषमाणस्तु सुवर्णं दण्डमर्हति ।।

यद्यपि नटों की स्त्रियों के साथ संभाषण निषिद्ध नहीं है, तथापि ऐसी स्त्रियों के साथ भी एकान्त में बात करने वाले पुरुष को राजा कुछ दण्ड करे। वैसे ही दासियों, वैरागियों और ब्रह्मचारिणी के साथ जो पुरुष रहस्य संभाषण करे, उसे भी राजा कुछ दण्ड करे।

किञ्चिदेव तु दाप्यः स्यात् संभाषां ताभिराचरन् ।
प्रेष्यासु चैक भक्तासु रहः प्रव्रजितासु च ।। मनु० 8/363.

जो मोहान्ध मनुष्य किसी कन्यापर बलात्कार करके उसे दूषित करताहै, वह तत्काल बध करने योग्य होता है, परन्तु उस कन्या की इच्छा से उसे यदि कोई दूषित करे और वह पुरुष उस कन्या का सजातीय हो तो वह बध के योग्य नहीं होता ।[48]

उत्तम वर्ण की कन्या अथवा स्त्री के साथ समागम करने वाला नीच वर्ण का व्यक्ति बध के योग्य है। समान वर्ण की कन्या के साथ समागम करने वाला, यदि उस कन्या का पिता चाहे तो शुल्क देकर छूट सकता है। इसका अभिप्राय यह है कि उसी व्यक्ति के साथ उस कन्या का विवाह हो जाता है।[49]

परदाराभिमर्शन से दूषित मोहग्रस्त व्यक्ति दण्डित होने पर यदि एक वर्ष बाद पुनः वैसा अपराध करे तो उसे पहले से दूना दण्ड देना चाहिए। व्रात्य पुरुष की स्त्री और चण्डालिन के पास आने जाने वाले के लिए राजा इसी दण्ड की व्यवस्था करे।अर्थात् जो पुरुष एक वर्ष के अनन्तर फिर उसी व्रात्य स्त्री या चण्डालपत्नी में गमन करे तो राजा उनके पूर्व दण्ड का दुगना दण्ड करे ।[50]

---

48. मनु० 8/364. योऽकामां दूषयेत्कन्यां स सद्यो वधमर्हति ।
सकामां दूषयंस्तुल्यो न वधं प्राप्नुयान्नरः ।।

49. मनु० 8/366. उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यो वधमर्हति ।
शुल्कं दद्यात्सेवमानः समामिच्छेत् पिता यदि ।।

50. मनु० 8/373. संवत्सराभिशस्तस्य दुष्टस्य द्विगुणो दमः ।
व्रात्यया सह संवासे चाण्डाल्या तावदेव तु ।।

यदि कोई मोहान्ध ब्राह्मण रक्षित ब्राह्मणी के साथ बलात् सहवास करे तो उन्हें एक हजार पण दण्ड देनाचाहिए और यदि वह सकामा हो तो उसके साथ संगम करने पर राजा उसे पाँच सौ पण दण्ड करे।[51] अवध्यहोने के कारण ब्राह्मण के सिर के बाल मुड़ा देना ही उसका प्राणान्तक दण्ड है।[52]

याज्ञवल्क्य[53] ने भी मनु के समान ही परदाभिमर्श अपराध के सम्बन्ध में स्त्रीसंग्रहण प्रकरण 24 (व्यवहाराध्याय) में गम्भीरता पूर्वक विचार किया है।इनके विचारानुसार पति, पिता, भाई, आदि ने जिस पुरुष के साथ बोलने के लिए मना किया हो उससे बोलने पर स्त्री सौ पण और इसी प्रकार का निषेध किये जाने पर भी किसी स्त्री से बोलने या सम्बन्ध रखने वाले पुरुष से दो सौ पण दण्ड दे । दोनों को वर्जित किया गया हो तो उन्हें वही दण्ड विहित होता है जो उपर्युक्त संग्रहण आदि में होता है।

याज्ञवल्क्य के मतानुसार मोह प्रेरित मनुष्य द्वारा सजातीय परायी स्त्री के सहवास करने पर उत्तम साहस का, वर्ण की अनुलोमता होने पर अर्थात् अपने से छोटी जाति की स्त्री से व्यभिचार करने पर मध्यम साहस का दण्ड होता है। वर्ण की प्रतिलोमता (अपने वर्ण से उच्च जाति की स्त्री के साथ व्यभिचार करने) पर दोषी पुरुष का बध कर देना चाहिए। और अपने से निम्न वर्ण के पुरुष के साथ व्यभिचाररत स्त्रियोंका कान आदि काट लेना चाहिए।[54]

---

51. मनु० 8/378. सहस्त्रंब्राह्मणो दण्ड्यो गुप्तां विप्रां बलाद्व्रजन् ।
शतानि पंच दण्ड्यः स्यादिच्छन्त्या सह संगतः ।।

52. मनु० 8/379. मौण्ड्यं प्राणान्तिको दण्डो ब्राह्मणस्य विधीयते ।
इतरेषां तु वर्णानां दण्डः प्राणान्तिको भवेत् ।।

मनु08/380. न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितम् ।
राष्ट्रादेनं बहिःकुर्यात्समग्रधनमक्षतम् ।।

53. या०व्य०285. स्त्री निषेधे शतं दद्यात् द्विशतं तु दमं पुमान् ।
प्रतिषेधे तथोर्दण्डो यथा संग्रहणे तथा ।।

54. या०व्य०286. सजातावुत्तमो दण्डः आनुलोम्ये तु मध्यमः ।
प्रातिलोम्ये बधः पुंसो नार्याः कर्णादिकर्त्तनम् ।।

मनु के समान याज्ञवल्क्य ने भी सद्यः परिणीता अथवा जिसका विवाह होने वाला हो उस आभूषण युक्त सवर्णा कन्या का मोह से प्रेरित होकर अपहरण करने वाले को उत्तम साहस के दण्ड का विधान किया है, अन्यथा ब्याही जाने वाली कन्या न होने पर अधम साहस का दण्ड विधान निश्चित किया है।[55]

याज्ञवल्क्य के मतानुसार[56] कन्या का प्रेम होने पर भी उसके (पुरुष) निम्न जाति की होने पर दोष नहीं देता, अन्यथा (कन्या का प्रेम न होने पर) प्रथम साहस का दण्ड होता है। यदि ऐसी कन्या को बलपूर्वक नखक्षत आदि से दूषित करने या हाथ काटने और अपने से उच्च वर्ण की अनचाहती कन्या को दूषित करने पर बध का दण्ड होता है।

<u>वाग्दत्ता कन्या को न देना अथवा उसका अपहरण करना :</u>

जिस कन्या को देने का वचन देकर बाद में मोहवश उस व्यक्ति को वह कन्या न देना अर्थात् अन्य किसी को कन्या देना, मनु की दृष्टि में एक गम्भीर अपराध है। श्रेष्ठ सामाजिक परम्परा को ध्यान रखते हुए वे कहते हैं —

एतत्तु न परे चक्रुर्नापरे जातु साधवः ।
यदन्यस्य प्रतिज्ञाय पुनरन्यस्य दीयते ।। मनु० 9/99.

समाज में यह अपराध न हो अतः इस सम्बन्ध में मनु का स्पष्ट निर्देश है —

न दत्त्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः ।
दत्त्वा पुनः प्रयच्छन्हि प्राप्नोति पुरुषानृतम् ।। मनु०9/71.

---

55. याज्ञ०, व्यव० 287– अलंकृतां हरन्कन्यामुत्तमं ह्यन्यथाऽधमम् ।
दण्डं दद्यात् सवर्णासु प्रातिलोम्ये बधः स्मृतम् ।।

56. याज्ञ० व्यव० 288.– सकामास्वनुलोमासु न दोषस्त्वन्यथा दमः ।
दूषणे तु करच्छेद उत्तमायां बधस्तथा ।।

कन्यादान का वचन देकर उसे सम्बन्धित व्यक्ति {वर} को न देकर अन्य किसी को देने अथवा वाग्दत्ताकन्या का अपहरण करने से अपराध में मनु तो दण्ड विधान में मौन है, किन्तु याज्ञवल्क्य के मतानुसार स्पष्टतः रूप से वाग्दत्ता कन्या अथवा जिसका विवाह होने वाला हो उस अलंकृता सवर्णाकन्या का अपहरण करने वाले अपराधी को उत्तम साहस का दण्ड होता है, अन्यथा {ब्याही जाने वाली कन्या न होने पर} मध्यम साहस का दण्ड होताहै, उच्च जाति की कन्या का अपहरण करने वाले पुरुष का बधकर देना चाहिए।:--

अलंकृता हरन्कन्यामुत्तमं ह्यन्यथाधमम् ।

दण्डं दद्यात्सवर्णासु प्रातिलोम्ये बधः स्मृतः ।। या०व्यव० 287.

किन्तु यदि सानुरागा हीनवर्णा की कन्या का कोई अपहरण करता है तो दोषा-भाव से दण्ड नहीं है,[57] किन्तु वाग्दत्ता कन्या की अनिच्छा से यदि कोई उसका अपहरण करता है तो उसे प्रथम साहस का दण्ड देना चाहिए।

इसी प्रकार मोह-मद से प्रेरित होकर यदि कोई उस कन्या को दूषित करता है तो अपने से हीन वर्ण की हो तो कन्या दूषणकर्ता के हाथ काटने और यदि कन्या उस दूषण कर्ता से उच्च वर्ण की हो तो उसका बध दण्ड होता है।

"दूषणेतु करच्छेद उत्तमायां वधस्तथा । {या० व्यव० 288}

---

57. या० व्यव० 288- सकामास्वनुलोमासु न दोषस्त्वन्यथा दमः ।

यदि सानुरागां हीनवर्णां कन्यां अपहरति तदा दोषाभावान्न दण्डः।

अन्यथा त्वनिच्छन्तीमपहरतः प्रथम साहसो दण्डः ।।

{मिताक्षरा-विज्ञानेश्वरः} या० पृष्ठ 380.

समीक्षा

इस प्रकार हम देखते है कि मोहमद प्रेरित विविध अपराधों (मिथ्या साक्ष्य/कथन) प्रस्तुत करना, धनधान्य, सूत कपास, एवं पशु अपहरण करना, स्त्री व ब्रह्मचारी का मदिरा पान करना, ब्रह्मचारी का मैथुन करना, परदाराभिमर्शन, वाग्दत्ता कन्या को किसी अन्य को देना अथवा उसका अपहरण करना आदि) के सम्बन्ध में मनु और याज्ञवल्क्य दोनों समाज-परिष्कारार्थ सजग और गम्भीर है तथा इन अपराधों के समुचित दण्ड सुनिश्चित करते हैं। देश काल पात्र को ध्यान में रखते हुए इन दोनों धर्मशास्त्रियों ने इन अपराधों के दण्ड विधान में कहीं कहीं कठोरता अथवा उदारता का परिचय दिया है।

मनु एवं याज्ञवल्क्य इन दोनों महान् धर्मशास्त्रकारों ने उपर्युक्त इन सभी अपराधों से समाज को अप्रदूषित रखने एवं सदाचारी होने की दिशा में दण्डविधान की समुचित व्यवस्था की है। समाज के प्रत्येक वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार और आचरण में शुचिता, नैतिकता, तथा नियमानुकूल धार्मिकता का पूर्णतः समावेश होना इन दोनों धर्म-शास्त्रियों का प्रमुख ध्येय एवं अभिप्रेत है। अतः उपर्युक्त अपराधों के सम्बन्ध में मनु एवं याज्ञवल्क्य का दण्ड विधान सर्वथा समुचित एवं समीचीन ही हैं।

****

नवम् अध्याय

सामाजिक जनों एवं राजपुरुषों द्वारा राज सम्बन्धित अपराधों तथा तद्विषयक दण्डों की तुलनात्मक समीक्षा.

नवम् अध्याय

सामाजिक एवं राजपुरुषों द्वारा किये राजसम्बन्धित अपराधों तथा तद्विषयक दण्डों की तुलनात्मक समीक्षा.

मनु तथा याज्ञवल्क्य जैसे प्राचीन स्मृतिकारों ने समाज में शासन द्वारा विहित विधि का सामाजिक जनों तथा राजपुरुषों द्वारा उल्लंघन किये जाने के अपराध करने पर निश्चित दण्ड को सुनिश्चित किया है। ये अपराध अनेक प्रकार के हैं- जिनमें निक्षेप का ऋण न लौटाना, निक्षेप का मिथ्या कथन, साक्ष्य के अभाव में मिथ्या साक्ष्य देना, राजकर्मियों द्वारा प्रजाजनों से किसी कार्य के लिये उत्कोच ग्रहण करना, जाली और खोटे सिक्के चलाना जालसाजी राज्य सेवकों द्वारा सेवाकी अवज्ञा, राजकोष से चोरी करना, राजपत्नी के साथ व्यभिचार, राजद्रोह करना, अधिकारियों द्वारा अपराध बिना ही दण्ड देना, राजपथ तथा सीमा सम्बन्धी नियमों के भंग के अपराध उल्लेखनीय हैं।

निक्षेप तथा ऋण न लौटाना : जो मनुष्य जिस प्रकार जिसके हाथ में जो धन या वस्तु आभूषण आदि सौंपे वह उसी प्रकार उससे ले[1] क्यों कि जैसा लेना वैसा देना यही नीति है। यदि धरोहर देने वाला धरोहर रखने वाला, धरोहर रखने वाले से अपनी धरोहर मांगे और यदि उसे नदे तो न्यास कर्ता[2] निक्षेप रखने वाले से वह धन या वस्तु मांग सकता है, निक्षेप रखकर निक्षेप रखने वाला यदि मांगने पर उसे नहीं लौटाता है।

---

1. मनु0 8/180 यो यथा निक्षिपेद्धस्ते यमर्थं यस्य मानवः ।
2. मनु0 8/181 सातथैव गृहीतव्योयथा दायस्तथा ग्रहः ।

यो निक्षेपं याच्यमानो .....तन्निक्षेप्तुरसन्निधौ ।।

तो न्यायकर्ता वैदिक शपथ और सामाजिक उपायों से जाँच करसत्यता का पता लगाकर सत्यासत्य का निरूपण करें।[3] जो धरोहर रखकर नहीं देता और धरोहर न सौंपकर माँगता है ये दोनों चोर के समान अपराधी होने से दण्डनीय हैं।[4] और इनके उस वस्तु या धन के बराबर जुर्माने का दण्ड देना चाहिये। निक्षेप हड़पने वाले को राजा उस निक्षेप के बराबर द्रव्य दण्ड करे वैसे ही उपनिधि हरने वालों को भी उसी के समानजुर्माना करे।[5]

याज्ञवल्क्य के अनुसार निक्षेप में रखी हुई वस्तु छुड़ाने आने पर उसकी वस्तु निक्षेपकर्ता को दे देनी चाहिये। ब्याज के लोभवश उसे नहीं टालनाचाहिये, अन्यथा चोर के समान निक्षेप वापस न करने वाले को दण्डभागी होना चाहिये। जिसके पास कोई वस्तु बन्धक रखी हो उसके उपस्थित न होने पर उसके कुल के किसी दूसरे व्यक्ति को ब्याज सहित धन सौपकर निक्षेप की हुई वस्तु प्राप्तकर ली जा सकती हैं।[6] मनु के समान याज्ञवल्क्य भी उपनिधि या निक्षेप न लौटाने पर उस वस्तु या धन के बराबर वापिस दिलाने का प्रावधान सुनिश्चित करते है, यदि वापस माँगने पर वहवस्तु नहीं लौटायी जाती तो उपनिधि रखने

---

3. मनु0 8/190 निक्षेपस्यापहर्त्तारमनिक्षेप्तारमेव च ।
सर्वैरुपायैरन्विच्छेच्छपथैश्चै व वैदिकैः ।।

4. मनु0 8/191 यो निक्षेपं नार्पयति ....तत्समंदमम् ।।

5. मनु0 8/192 निक्षेपस्यापहर्तारं दापयेद्दधनम् ।
तथोपनिधिहर्तारम् विशेषेण पार्थिवः ।।

6. याज्ञवल्क्यस्मृति 2/62. उपस्थितस्य मोक्तव्य आधिः स्तेनोऽन्यथा ।
प्रयोजकेऽसति धनं कुले न्यस्याधिमाप्नुयात् ।।

वाले को उस वस्तु के बराबर दण्ड भी चुकाना होताहै।[7] याज्ञवल्क्य का अभिमत है कि जो अपनी इच्छा से उपनिधि अथवा निक्षेप किये हुये धन काभोग करता है, उसे उसके लाभ के साथ निक्षेप या उपनिधि वापस दिलाये और साथ ही दण्ड भी दे ।[8] यही नियम याचित, न्यास, और निक्षेप में दी गयी वस्तुओं में भी लागू होते हैं। मनु ने[9] भी इसी प्रकार ऋणी से धन दिलावा देने के लिये महाजन से प्रार्थी होने पर राजा उसे निश्चित धन कर्जदार से विविध उपायों से वापस दिलवा दे ।[10] यदि ऋणी ऋण स्वीकार न करे और प्रमाणों से उसका ऋण लेना साबित हो तो राजा उससे धनीका धन दिलाये और यथा शक्ति कुछ दण्ड भी दे ।[11] न्यायालय में ऋणी से ऋण मांगने पर यदि वह यह कहे मैं इसकाकुछ भी नही धारता तो महाजन साक्षियों से सच्ची बात कहलावे और प्रमाणों में पत्रादि पेश करे ।[12] ऋणी धन लेकर जितना धन न लेने का बहाना करे और धनी कर्जदार पर अधिक झूठा दावा करे तो इन दोनों अपराधी अधर्मियों पर उसका दूना अर्थ दण्ड करे ।[13] इस सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य का

---

7. याज्ञवल्क्य स्मृति उपनिधि प्रकरण 2/66/
   न दाप्योऽपहृतं तं तु राजदैविकतस्करैः ।
   भ्रेषश्चेन्मार्गितेऽदत्ते दाप्यो दण्डं च तत्समम् ।।

8. या०स्मृति2/67 आजीवन्स्वेच्छया दण्ड्यो दाप्यस्तं चापितोदयम् ।
   याचितान्वाहितन्याससनिक्षेपादिष्वयं विधिः ।।

9. मनु0 8/ 47 अधमर्णार्थसिद्ध्यर्थमुत्तमर्णेन चोदितः ।
   दापयेद्धनिकस्यार्थमधमर्णाद्विभावितम् ।।

10. मनु0 8/49 धर्मेण व्यवहारेण छलेनाचरितेन च ।
    प्रयुक्तं साधयेदर्थं पञ्चमेन बलेन च ।।

11. मनस्मृति 8/51 अर्थेऽपव्ययमानं तु करणेन विभावितम् ।
    दापयेद्धनिकस्यार्थं दण्डलेशं च शक्तितः ।।

12. मनुस्मृति 8/52. अपह्नवेऽधमर्णस्य देहीत्युक्तस्य संसदि ।
    अभियोक्तादिशेद्देश्यं करणं वान्यदुद्दिशेत् ।।

13. मनुस्मृति 8/59 यो यावन्निह्नुवीतार्थं मिथ्या यावति वा वदेत् ।
    तौ नृपेण ह्यधर्मज्ञौ दाप्यौ तद्द्विगुणं दमम् ।।

भी ऐसा ही विचार है।[14]

<u>मिथ्या साक्ष्य देना</u> : विविध प्रकरणों {निक्षेप या उपनिधि, बन्धक, अथवा ऋण आदि} से सम्बन्धित वादों के विषयों में झूठी गवाही देना गम्भीरअपराध मनु तथा याज्ञवल्क्य दोनों स्मृतिकार स्वीकार करते है। तथा मिथ्या साक्ष्य देने पर निश्चित दण्ड विधान की व्यवस्था देते है। मनु का विचार है कि जो लोभ,मोह,भय,मित्रता,काम, क्रोध, अज्ञान और बालपन में गवाही दी जाती है वह झूठी होती है।[15] इसके लिये लोभ से मिथ्या साक्ष्य देने पर एकहजार पण मोह से साक्ष्य में झूठ बोलने पर प्रथम साहस, भय से झूठ बोलने पर दो मध्यम साहस, मित्रता से झूठी गवाही देने पर प्रथमसाहस का चौगुना दण्ड है।[16] कामवश झूठी गवाही देने से प्रथम साहस कादस गुना क्रोध से झूठ बोलने पर मध्यम साहस का तिगुना अज्ञान से दोसौ पण और मूर्खता से मिथ्या साक्ष्य देने पर एक सौपण दण्ड देनाचाहिये।[17] मिथ्या साक्ष्य देने वाले क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र पूर्वोक्त प्रकार से आर्थिक दण्ड देकर देश से निकाल दें किन्तु ब्राह्मण को विवासित ही करना चाहिये।[18]

---

14. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/66/ अभ्यर्थेन्यापिनिंसिद्धन्ते दाप्यो दण्डः च तत्समम् ।
आजीवन्स्वेच्छया दण्ड्यो दाप्यस्तं चापि सोदयम् ।।

15. मनु स्मृति 8/118 याचितान्वाहितन्यासनिक्षेपादिष्वयं विधिः ।
लोभान्मोहा ....वितथमुच्यते ।।

16. मनुस्मृति 8/120 लोभात्सहस्रं दण्डस्तु,मोहात्पूर्वं तु साहसम् ।
भयाद्द्वौ मध्यमौ दण्डौ मैत्रात्पूर्वं चतुर्गुणम् ।।

17. मनुस्मृति 8/121 कामाद्दशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम् ।
अज्ञानाद्द्वे शते पूर्णे बालिश्याच्छतमेव तु ।।

18. मनुस्मृति 8/123 कौटसाक्ष्यं तु कुर्वाणांस्त्रीन्वर्णान्धार्मिको नृपः ।
प्रवासयेद्दण्डयित्वा ब्राह्मणतु विवासयेत् ।।

मनु के समान याज्ञवल्क्य का भी मिथ्या अथवा कूट साक्ष्य देने के अपराध में दण्ड देने का प्रावधान अभिव्यक्त किया है।[19]

मिथ्यासाक्ष्य देने के अपराध से बचने के लिये मनु तथा याज्ञवल्क्य दोनों ने साक्षियों की सत्पात्रता पर भी पर्याप्त विचार किया है। गृहस्थ, पुत्रवान्, पड़ोसी क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये लोग वादी के कहे जाने पर साक्ष्य दे सकते है किन्तु निरापद् अवस्था में जिस जिस का साक्ष्य नही लिया जा सकता ।[20] इसी प्रकार सब वर्णों में सत्यवक्ता, धर्म के ज्ञाता, और निर्लोभी लोग जो हो वे लेन देन के व्यवहार में साक्ष्य देने के योग्य होते है और इसके विरुद्ध गुणवाले लोग हों उनका साक्ष्य नहीं लेना चाहिये।[21]

जिनके साधन का सम्बन्ध हो, इष्ट मित्र हों, सहायक हो, शत्रु हो, जिनका दोष पहले देखा गया हो और व्याधि पीड़ित हों, पाप से दूषित हों, इनको कभी साक्षी नहीं मानना चाहिये।[22] इसी प्रकार राजा, कारीगर, नट, श्रोत्रिय, (वेदध्यायी कर्मकांडी ब्राह्मण,) ब्रह्मचारी को भी साक्षी नहीं मानना चाहिये।[23] दास, विहित कर्म के त्याग से

---

19. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/81 पृथक्पृथक् दण्डनीयाः कूटकृत्साक्षिणस्तथा ।
विवादाद् द्विगुणं दण्डं विवास्यो ब्राह्मणस्मृतः ।।

20. मनुस्मृति 8/62. गृहिणः पुत्रिणो मौलाः क्षत्रविट्शूद्रयोनयः ।
अर्थ्युक्ताः साक्ष्यमर्हंति न ये के चिदनापदि ।।

21. मनुस्मृति 8/63 आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्याः कार्येषु साक्षिणः ।
सर्वे धर्मविदो ऽलुब्धा विपरीतास्तु वर्जयेत् ।।

22. मनुस्मृति 8/64 नार्थसम्बन्धिनो नाप्ता न सहाया न वैरिणः ।
न दृष्टदोषाः कर्तव्या न व्याध्यार्ता न दूषिताः ।।

23. मनुस्मृति 8/65 न साक्षी नृपतिः कार्यो न कारुककुशीलवौ ।
न श्रोत्रियो न लिंगस्थो न संगेभ्यो विनिर्गतः ।।

लोगों में जिसकीनिन्दा होती हो, कुकर्मी, निषिद्ध कर्म करने वाला, बूढ़ा, बालक, अन्त्यज, और विकलेन्द्रिय इनमें एक को ही गवाही न करें कम से कम तीन हों।[24] शोकार्त, मन्त, पागल, भूख प्यास से पीड़ित, परिश्रम से थका हुआ, कामातुर, क्रोधी और चोर को भी साक्षी न करें।[25] स्त्रियों के अभियोग में स्त्रियों को गवाही करें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के उनके सजातीय हो और शूद्रों के शूद्र, चण्डाल जाति वालों के उनकी जाति वाले हों।[26] घर या जंगल में चोर, लुटेरों का उपद्रव होने पर या किसी के द्वारा शरीर पर चोट किये जाने पर वहाँ जो कोई हो उसी को साक्ष्य करना चाहिये।[27] उपर्युक्त सन्दर्भ में मनु की इन साक्ष्य सम्बन्धी पात्रता परयाज्ञवल्क्य ने भी साक्षी प्रकरण में पर्याप्त विचार किया।[28]

जो साक्षी देखी सुनी बात को जानता हुआ भी, सत्य साक्ष्य नहीं देता, वह वस्तुतः पाप काभागी होता है, कहा जाता है कि ऐसे झूठी गवाही देने वाले को सौ जन्म तक वरुण-पाश से बद्ध होकर कष्ट भोगना पड़ता है।[29] यदि निरोग साक्षी ऋणादि व्यवहार

- -

24. मनुस्मृति 8/66 नाध्याधीनो न वक्तव्यो न दस्युर्न विकर्मकृत ।
न वृद्धो न शिशुर्नैको नान्त्यो न विकलेन्द्रियः ।।

25. मनुस्मृति 8/67 नार्तो न मत्तो नोन्मत्तो न क्षुत्तृष्णोपपीडितः ।
न श्रमार्तो न कामार्तो न ~~कामार्तो~~ न क्रुद्धोनापि तस्करः ।।

26. मनुस्मृति 8/68 स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां सदृशा द्विजाः ।
शूद्राश्च सन्तः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः ।।

27. मनुस्मृति 8/69 अनुभावी तु यः कश्चित्कुर्यात्साक्ष्यं विवादिनाम् ।
अंतर्वेश्मन्यरण्ये वा शरीरस्यापि चात्यये ।।

28. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/68, 69 .... 72 तक.

29. मनुस्मृति 8/82 साक्ष्येऽनृतं वदन्पाशैर्बध्यते वारुणैर्भृशम् ।
विवशः शतमाजातीस्तस्मात्साक्ष्यं वदेदृतम् ।।

में तीन पक्ष के भीतर साक्ष्य न दे तो उसी से सब ऋण महाजन से दिलाना चाहिये और वह साक्षी सम्पूर्ण ऋण का दसवाँ हिस्सा दण्ड स्वरूप राजा को दे।[30] इस सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य का भी ऐसा ही अभिमत है। उन्होंने दसमांश धन सहित छियालिसवे दिन देने का निर्देश दियाहै।

अब्रुवन्हि नरः साक्ष्यमृणं सदशबन्धकम् ।

राज्ञा सर्वं प्रदाप्यः स्यात्षट्चत्वारिंशके ऽहनि ।। या०2/7

मिथ्या साक्ष्य देने वाले अपराधियों के लिये चार प्रकार के दण्ड मनु ने इस प्रकार निर्धारित किये है, [1] वाक्दण्ड, [डाँटने दपटने का] [2] धिक्कारना, [3] धन दण्ड [4] शरीर दण्ड आदि है। अंगच्छेदनादि शारीरिक दण्ड देने पर भी इन अपराधियों का निग्रह न कर सके तो चारों दण्डों का प्रयोग करना चाहिये।[32] धन दण्ड में ताँबा, चाँदी, और सोना इनकी पणादि जो संज्ञाये लोक व्यवहार में प्रचलित हो उन्हें लोकार्थ दण्ड में पूर्णतः अनुमोदित किया गया है।

<u>राजपथ सम्बन्धी अपराध</u> : राजपथ सम्बन्धी नियमों का सम्यक् पालन न करने से सामाजिक जन तथा राज पुरुष समान रूप से अपराधीहोकर राज्य शासन द्वारा दण्डनीय होते है। यदि सामान्य मार्ग अथवा राजपथ के आसपास आवागमन करते हुये आस पास के खेतों की सम्पत्ति फसल आदि का पशुओं द्वारा चरवाकर

---

30. मनुस्मृति 8/107 त्रिपक्षाद ब्रुवन्साक्ष्यमृणादिषु नरोऽगदः ।

तदृणं प्राप्नुयात्सर्वं दशबन्धं च सर्वतः ।।

31. मनुस्मृति 8/129. वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्धिग्दण्डं तदनंतरम् ।

तृतीयं धनदण्डं तुवधदण्डमतः परम् ।।

32. मनु0 8/130 वधेनापि यदा त्वेतान्निग्रहीतुं न शक्नुयात् ।

तदेषु सर्वमप्येतत्प्रयुञ्जीत चतुष्टयम् ।।

नुकसान करता है। मनु इस प्रकार मार्ग के यात्रियों पशुपालकों को भी इस प्रकार के अपराध से विरत रहने का निर्देश देते है। यदि राजपथ का अथवा सामान्य मार्ग का पशुपाल मार्ग के आसपास खेत में प्रवेश कर फसल का नुकसान करता है और यात्री साथ में रहकर पशु को खेत में घुसने से नहीं रोकता है, तो राजा ऐसे मार्ग यात्री पशु पालक पर 100 पण का दण्ड दे सकता है।[33] राजमार्ग या उसके आस पास वृक्षों अथवा वनस्पति का विनाश करने वाले यात्री भी अपराधी होकर राजदण्ड भागी होते है।[34] राज मार्ग में आवागमन करने वाले रथ, सारथी और रथ स्वामी के दस अपराधों को छोड़ औरअपराधों में दण्ड का विधान किया गया है,[35] ये क्षम्य दस अपराध निम्नलिखित है;- नाथकर जाने, जुआ टूटने,गाड़ी अपने पथ से बाहर होने, धुरी या पहिया टूट जाने, चमड़े का बंधन ,सवारी के गले की रस्सी और रास के टूटने पर ,सारथी यदि चिल्लाकर कहे, हटो हटो, उस परभी यदि कोई अनिष्ट हो जायेतो सारथी या गाड़ी हाँकने वाला दण्डभागी नही होता है।[36]

राजपथ पर जहाँ गाड़ी हाँकने वाले के दोष से गाड़ी रास्ते से हटने पर कुछ हानि हो तो वहाँ उसके स्वामी को 200 पण दण्ड देना चाहिये।[37] यदि गाड़ी

---

33. मनु0 8/240 पथि क्षेत्रपरिवृते ग्रामान्तीयेऽथवा पुनः ।
स पालः शतदण्डार्हो विपालान्वारयेत्पशून् ।।

34. मनु0 8/285. वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगं यथा-यथा ।।
तथा तथा दमः कार्यो हिंसायामिति धारणा ।।।

35. मनु08/290 यानस्य चैव यातुश्च यानस्वामिन एव च ।
दशातिवर्तनान्याहुः शेषे दण्डो विधीयते ।।

36. मनु0 8/291. छिन्ननास्ये भग्नयुगे तिर्यक्प्रतिमुखागते ।
अक्षभङ्गे चयानस्य चक्रभङ्गे तथैव च ।।

हाँकने वाला होशियार है तो वह 200पण उसी को ही देना होगा और यदि सारथी अयोग्य होने से कोई अनिष्ट घटना हो तो गाड़ी के सभी सवारों को सौ सौ पण दण्ड देना होगा।[38] यदि वह सारथी गौ आदि पशुओं से या दूसरे रथ से रास्ता रुद्ध हो जाने पर भी अपने रथ को नहीं रोकता है, और उससे यदि कोई प्राणी की हिंसा हो जाती है तो बिना विचारे ही उसे दण्ड देना चाहिये।[39] राजपथ पर गाड़ी हाँकने वाले की गफलत से यदि कोई मनुष्य गाड़ी के नीचे दब कर मर जाय तो गाड़ीवान को चोर का पाप लगता है। अतः राजा को उसे चोर का दण्ड देना चाहिये, किन्तु गाय, हाथी, ऊँट, घोड़े आदि बड़े पशु के कुचल कर मरने पर उसका आधा अपराध होता है, किन्तु छोटे प्राणियों की हिंसा होने पर गाड़ीवान को 200 पण और हिरन, शुक, सारिका आदि पक्षियों के मरने पर 50 पण का दण्ड देना होगा।[40] गधे, बकरे, भेड़ आदि को मारने पर गाड़ीवान को 5 मासे भर चाँदी और श्वान, शूकर के मारने पर एकमासा चाँदी दण्ड देना होगा।[41]

---

36. मनु0 8/292. छेदने चैव यन्त्राणां योक्त्ररश्म्योस्तथैव च ।
आक्रन्दे चाप्यपैहीति न दण्डं मनुरब्रवीत् ।।

37. मनु0 8/293 यत्रापवर्तते युग्यं वैगुण्यात्प्राजकस्य तु ।
तत्र स्वामी भवेद्दण्ड्यो हिंसायां द्विशतं दमम् ।।

38. मनु0 8/294 स चेत्तु पथि संरुद्धः पशुभिर्वा रथेन वा ।
प्रमापयेत्प्राणभृतस्तत्र दण्डोऽविचारितः ।।

39. मनु08/295 प्राजकश्चेद्भवेदाप्तः प्राजको दण्डमर्हति ।
युग्यस्थाः प्राजकेऽनाप्ते सर्वे दण्ड्याः शतं शतम् ।।

40. मनु08/297 क्षुद्रकाणां पशूनां तु हिंसायां द्विशतो दमः ।
पञ्चाशत्तु भवेद्दण्डः शुभेषु मृगपक्षिषु ।।

41. मनु0 8/298 गर्दभाजाविकानां तु दण्डः स्यात्पञ्चमाषिकः ।
माषिकस्तु भवेद्दण्डः श्वसूकरनिपातने ।।

राजपथ के यातायात सम्बन्धी नियमों का उल्लंघन होने वाले अपराध :

राजपथ के यातायात सम्बन्धी नियमों का उल्लंघन होने वाले अपराधों पर गम्भीरता पूर्वक सूक्ष्म विचार कर इनके दण्ड की जिस प्रकार व्यवस्था मनु ने की है उतनी याज्ञवल्क्य ने नहीं तथापि कहीं कहीं मार्गों के आस पास पशुओं से चरवाहे द्वारा आवागमन में जो नुकसान करने का अपराध किया जाता था उसके दण्ड की व्यवस्था याज्ञवल्क्य ने संक्षेप में इस प्रकार दी है।[42] गांव के निकट मार्ग में और पशुओं के बाड़े के पास जितनी फसल चरे या नष्ट किये हों उतने का फल खेत के स्वामी को मिले चरवाहे को पीटना चाहिये और गाय के स्वामी से उपयुक्त दण्ड लेना चाहिये। गांवों के निकट मार्ग में और पशुओं के बाड़े से सटे हुये खेत में आने जाने में भूल से पशुओं के पड़ जाने पर कोई दोष नहीं होता है। किन्तु मार्ग के आस पास खेत में पशुओं को जानबूझ कर छोड़ने वाला चोर के समान दण्डनीय होता है। यह दण्ड विधान मनुस्मृति से मिलता जुलता है।[43]

राज सीमा सम्बन्धी अपराध : तत्कालीन राष्ट्र में नागरिकों के मध्य सीमा सम्बन्धी गम्भीर विवाद तथा अपराध होते रहते थे। सामान्यतया दो गांव की सीमा के निमित्त विवाद उत्पन्न होने पर जेठ मास में सीमा पर लगे सीमा वृक्षों – वट, पीपल, पलाश, सेमर, सखुआ, ताल व खीरी आदि वृक्ष को देखकर सीमा का पता लगाना चाहिये।[44] सीमा पर लगे गूलर के पेड़ बांस विविध भांति के सेमीय वृक्ष लतायें सर्पत

---

42. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/161. यावत्सस्यं विनश्येत्तु तावत्स्यात्क्षेत्रिण:फलम् ।
    गोपस्ताड्यश्च गोमी तु पूर्वोक्तं दण्डमर्हति ।।
43. या0 स्मृति 2/162. पथिग्राम विवीतान्ते क्षेत्रे दोषो न विद्यते ।
    अकामत: कामचारे चौरवद्दण्डमर्हति ।।
44. मनु0 8/246 सीमा वृक्षांश्चकुर्वीत न्यग्रोधाश्वत्थ किंशुकान् ।
    शाल्मली न्साल तालांश्च क्षीरिणश्चैव पादपान् ।।

और छेड़े वृक्ष रहे तो सीमा नष्ट नहीं होती है।[45] सीमा के सन्धि स्थान में पोखर कुयें बावली, नहर और देव मंदिर बनवाने चाहिये।[46] सीमा सम्बन्धी स्थल चिन्हों को समाप्त करने के अपराधों को रोकने के लिए राजा को चाहिये, कि वह सीमा के अनेक गुप्त चिह्न करा दे।[47] गुप्त चिन्हों में पत्थर के खण्ड, हड्डी, चामर, भूसा, राख, खोपड़ी, सूखे कंडे, ईंट ,कोयले कंकड़ और बालू तथा ऐसे अन्य पदार्थ भी जिन्हें पृथ्वी अपने में न मिल सके उन्हें राजा सीमा के सन्ध गुप्त, रीति स्थान में गड़वा दे।[48] सीमा सम्बन्धी अपराध करने वाले और विवादियों की समस्या सुलझाने के लिए राजा ग्राम वासियों के सामने ग्राम की सीमा के चिन्ह पूछे तथा पूछे जाने पर वह साक्षी लोग सीमा के सम्बन्ध में जो निर्णय बतायें, राजा उसी तरह सीमा के चिन्ह, चित्र ,साक्षियों के नाम एक राजपत्र पर लिख ले। सीमा साक्षी सत्य सत्य सीमा बतलाने पर निर्दोष होते है, परन्तु सीमा के सम्बन्ध यदि ये साक्षी मिथ्या भाषण का अपराध करे तो राजा उन्हें 200 पण दण्ड करे।[49] साक्षियों के अभाव में समीपवर्ती गाँव के

- -

45. मनु0 8/247 गुल्मान्वेणूंश्च विविधान्छमी वल्लीस्थलानि च ।
शरान्कुब्जक गुल्मांश्च तथा सीमा न नश्यति ।।

46. मनु0 8/248 तडागान्युदपानापि वाप्यः प्रस्रवणानि च ।
सीमासंधिषु कार्याणि देव तायतनानि च ।।

47. मनु0 8/ 249 उपच्छन्नानि चान्यानि सीमालिंगानि कारयेत् ।
सीमाज्ञाने नृणां वीक्ष्य नित्यं लोके विपर्ययम् ।।

48. मनु0स्मृति8/250 अश्मनोऽस्थीनि गोवालांस्तुषा भस्मकपालिका: ।
करीष्र मिष्टकाङ्गारांच्छर्करा वालुकास्तथा ।।

49. मनु0 8/251. यानिचैवं प्रकाराणि कालम्भूमिर्नभक्षयेत् ।
तानि संधिषु सीमायाम प्रकाशानि कारयेत् ।।

प्रधान लोग सीमासम्बन्धी विवाद का निर्णय करें इस सम्बन्ध में झगड़ते हुये पुरुष के ग्राम-वासी गवाह यदि झूठ बोले तो राजा हर एक को अलग अलग मध्यम साहस दण्ड करे।[50] जो भय दिखाकर या जानबूझकर सीमा स्थिति दूसरे का घर, पोखर, बाग, और खेत ले लें तो राजा उसपर 500 पण दण्ड करे और जाने बिना ले तो 200 पण दण्ड करे।[51] अतः सीमा सम्बन्धी विवादों और अपराधों को रोकने के लिए साक्षी औरचिन्हों के अभाव में धर्मज्ञ राजा स्वयं ही दो गाँवों के बीच विवाद ग्रस्त भूमि परोपकार के लिए उन लोगों को दे दें। मनु के समान याज्ञवल्क्य ने भी सीमा विवाद के सम्बन्ध में गम्भीरता पूर्वक विचारकिया है। मनु के समान याज्ञवल्क्य में सीमा सम्बन्ध निपटारे में गाँव के प्रमुख बुजुर्गों के सैयोग की अपेक्षा की है।[52] याज्ञवल्क्य ने भी मनु के समान सीमाओं पर सेतु, वापी, नीम, पीपल, वटादि वृक्षों को पहचान स्वरूप आवश्यक स्वीकार कियाहै।[53] सीमा निर्धारण में साक्षी हेतु चार ग्राम-प्रमुखों के स्थान पर याज्ञवल्क्य ने आठ अथवा दस ग्राम वृद्ध जो लाल वस्त्र और माला पहने हों, आवश्यक बताये हैं।[54] इन साक्षियों के झूठ बोलने पर राजा के द्वारा इन्हें मध्यम साहस का दण्ड देना चाहिये और ज्ञात चिह्नों के अभाव में स्वयं ही राजा को सीमा

---

50. मनुस्मृति 8/263 सामन्ताश्चेन्मृषा ब्रूयुः सेतौ विवादतां नृणाम् ।
सर्वे पृथक्पृथग्दण्ड्या राज्ञा मध्यम साहसम् ।।

51. मनु0 8/264. गृहं तडागमारामं क्षेत्रं वा भीषया हरन् ।
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादज्ञानाद् द्विशतोदमः ।।

52. याज्ञ02/150 सीम्नो विवादे क्षेत्रस्य सामन्ताः स्थविरादयः ।
गोपाः सीमा कृषाणा ये सर्वे च वनगोचराः ।।

53. याज्ञ02/151. नेयुरेते सीमानं स्थलाङ्गारतुषद्रुमैः ।
सेतुवल्मीकनिम्नास्थिचैत्याद्यै रुपलक्षिताम् ।।

54. याज्ञ02/152. सामन्ता वा समग्रामाश्चत्वारोऽष्टौ दशापि वा ।
रक्तस्रग्वसनाः सीमां नयेयुः क्षिति धारिणः ।।

निर्धारण करना चाहिये। यदि ग्रामवासी सीमा अतिक्रमण का अथवा मर्यादा उल्लंघन का अपराध करे तो क्रमशः अधम, उत्तम ,मध्यम साहस का दण्ड समझना चाहिये। सीमा सम्बन्धी अपराधों में मनु के अनुसार जो राज्य में रक्षा के लिये नियुक्त हो या सीमा पर रक्षक रूप में तैनात किये गये हो यदि वे ही चोरी कराने में सम्मिलित हो तो राजा शीघ्र उन्हें चोर के तुल्य दण्ड दे ।[55]

इस प्रकार हम देखते है कि सीमा सम्बन्धी राज अपराधों और दण्ड विधान में मनु और याज्ञवल्क्य दोनों ने समान स्तर पर विचार कर व्यवस्था दी है।

<u>राजकोष का अपहरण करना</u> : यदि सामान्य प्रजा के लोग या राज्य कर्मचारी प्रतिकूल आचरण करते हुये राजकोष का अपहरण करे और राजा के शत्रुओं को उकसाये तो राजा विविध दण्डों से उन्हें दण्डित करे जिसमें मृत्यु दण्ड भी शामिल है।[56] राजकोष की चोरी करने में सामान्य चोरों की भाँति सेंध मारकर चोर चोरी करते हैं तो राजा उनके दोनों हाथ काट कर सूली पर चढ़ा दे[57] और यदि कपड़े बंधे हुये द्रव्य या स्वर्ण को गाँठ खोलकर उड़ाने वाले चोर को पहले बार उठाने पर अंगुलियाँ और दूसरी बार हाथ कटवा दे। तीसरी बार चोर बध के योग्य होता है।[58] यदि चोर को आग-भोजन,

---

55. मनु0 9/272. राष्ट्रेषु रक्षाधिकृतान्सामन्तांश्चैव चोदितान् ।
अभ्याघातेषु मध्यस्थाञ्छिष्याच्चौरानिव द्रुतम् ।।

56. मनु0 9/275 राज्ञः कोषापहर्तृंश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान् ।
घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणां चोपजापकान् ।।

57. मनु0 9/276 संधिं छित्त्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः ।
तेषां छित्त्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णे शूले निवेशयेत् ।।

58. मनु0 9/277 अंगुलीर्ग्रन्थिभेदस्य छेदयेत्प्रथमे ग्रहे ।
द्वितीये हस्तचरणौ तृतीये वधमर्हति ।।

हथियार और ठहरने की जगह कोई देता है या राजकोष की चोरी का माल कोई रखता है तो राजा चाहे, चोर के समान दण्डित करे।[59]

मनु के समान यद्यपि राजकोष हरण के अपराध के सम्बन्ध में स्पष्ट उल्लेख याज्ञवल्क्य ने नहीं किया है तथापि टीकाकार विज्ञानेश्वर ने राज्ञो निष्ट प्रवक्तारं .... प्रवासयेत् । 2/302. की टीका में कोषापहरणादौ पुनर्वध एव । [मनु0 9/275] राजकोष अपहरण में प्राण दण्ड कहा है के दृष्टिकोण का सर्वथा समर्थन किया है।

इसप्रकार राजकोष के अपहरण विषयक अपराध और दण्ड में मनु और याज्ञवल्क्य का समान दृष्टिकोण है। राजकोष, मंदिर की वस्तु, गज, घोड़ा, चुराने पर मृत्युदण्ड दिया जाता है।[60]

राजकर्मियों द्वारा कार्यार्थियों से घूस लेना : राजकर्मचारियों द्वारा अथवा अधिकारियों द्वारा प्रजाजनों के कार्य हेतु उनसे घूस को न ले इसके लिये राजा को सदैव सजग होकर के इन धनापहारियों से प्रजा की रक्षा करनी चाहिये । मनु0 7/123। यदि कोई राज्य कर्मचारी कार्यार्थियों से घूस लेता है तो राजा सर्वस्व हरण कर देश से निकाल दे ।[61] अतः राजा को चाहिये कि अपने विभिन्न कार्यों में

---

59. मनु0 9/278 अग्निदा भक्तदाश्चैव तथा शस्त्रावकाशदान् ।
सन्निधातृश्च मोषस्य हन्याच्चौरमिवेश्वरः ।।

60. या0 2/273. वन्दिग्राहांस्तथा वाजिकुञ्जराणां च हारिणः ।
प्रसह्यघातिनश्चैव शूलानारोपयेन्नरान् ।।

61. मनु0 7/124. ये कार्यिकेभ्यो ऽर्थमेव गृह्णीयुः पापचेतसः ।
तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम् ।।

नियुक्त कर्मचारी गणों की दैनिक वृत्ति और पद (कार्य) निश्चित कर दे ।[62] जिससे वे प्रजाजनों से उनके कार्य कराने के लिये उत्कोच (घूस) न ले सके । कर्मचारी घूस लेकर कार्यकर्ताओं के कार्य को नष्ट करें तो राजा उनका सर्वस्व हरण करके उन्हें दरिद्र कर दे।[63] घूसखोर को राजा देश के कंटक स्वरूप प्रकट चोर की तरह समझे ।[64]

याज्ञवल्क्य ने इस सम्बन्ध में राजकर्मियों के उत्कोच लेने के अपराध और दण्ड का कोई उल्लेख नहीं किया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि याज्ञवल्क्य के काल में राज-कर्मचारी अधिक ईमानदार होते थे, जिससे उनमें घूस लेने की प्रवृत्ति उस समय पनपी न होगी।

<u>राजद्रोह</u> : जो द्वेष भाव से राजा पर आक्रमण करे उसे ब्रह्म हत्या से बढ़कर भी अपराध माना गया है। (नारद, 15/16) राजा दुर्ग, कोष, सेना आदि राज्य की प्रकृतियों के प्रति शत्रुभाव रखने वाले को मनु,[65] कौटिल्य[66] आदि धर्मशास्त्र कार जिन्दा अग्नि में जला देने का निर्देश देते हैं। मनु एवं बृहस्पति राजा के प्रति शत्रुभाव रखने वाले को देश निष्कासन का दण्ड देते हैं।

---

62. मनु0 7/125. राजा कर्मसु युक्तानां स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च ।
प्रत्यहं कल्पयेद्वृत्ति स्थानं कर्मानुरूपतः ॥

63. मनु0 9/231. ये नियुक्तास्तु कार्येषु हन्युः कार्याणि कार्यिणाम् ।
धनोष्मणा पच्यमानास्तान्निःस्वान्कारयेन्नृपः ॥

64. मनु09/258. से 260 तक -उत्कोच काश्चोपधिका ....नार्यलिङ्गिनः ॥

65. मनु0 9/275. राज्ञः कोषापहर्तृंश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान् ।
घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणां चोपजापकान् ॥

66. कौटिल्य अर्थशास्त्र 4/2/2/27.

प्राचीन भारत में राजा के प्रति विद्रोहभाव, शत्रुता रखने तथा विद्रोह को बढ़ावा देने वाले को शारीरिक दण्ड दिया जाता था।[67] राजद्रोह के अन्तर्गत याज्ञवल्क्य राजा के प्रति अमानुषिक व्यवहारों पर मृत्युदण्ड देने के निर्देश देते है।[68] राज्य के हाथी, अश्व, अस्त्र शस्त्र आदि को ध्वस्त करने का प्रयत्न करना भी राजद्रोह के समान दण्डनीय अपराध माना गया है।[69] वास्तव में मनु के अनुसार अज्ञान से राजा के साथ शत्रुता रखता है या द्रोह रखता है वह निसन्देह नाश को प्राप्त होता है, उसके विनाशार्थ राजा शीघ्र अपने मन को नियुक्त करता है।

याज्ञवल्क्य राजद्रोह करने वाले आन्तरिक प्रजाजनों से ही नहीं, वरन् इस सन्दर्भ में पड़ोसी राज्यों से सतर्कता रखने का निर्देश राजा को देते है।[70]

राजा की निन्दा या गाली देना : राजा की निन्दा करना अथवा गाली देना एक गम्भीर अपराध माना गया है, अतः राजा को गाली देने में याज्ञवल्क्य देश निकाला अथवा जुर्माना देने का विधान निश्चित करते है।[71 अ.]

---

67. मनु0 9/232 कूटशासन कर्तॄंश्च प्रकृतीनां च दूषकान् ।
स्त्रीबालक ब्राह्मणानांश्च हन्याद्द्विट्सेविन स्तथा ।।

68. याज्ञ0 2/282. क्षेत्रवेश्मवनग्राम विवीत खलदाहकाः ।
राजपत्न्यभिगामी च दग्धव्यास्तु कटाग्निना ।।

69. मनु0 9/275. राजः कोशापहर्तॄंश्च .... चोपजापकान् ।।

मनु0 9/280. कोष्ठागारायुधागार देवतागार भेदकान् ।
हस्त्यश्व रथहर्तॄंश्च हन्यादेवाविचारयैन् ।।

70. याज्ञ0 स्मृति राजधर्म प्रकरण [आचार] 9/345. अरिर्मित्रमुदासीनोऽनन्तर स्तत्परः परः।
क्रमशो मण्डलं चिन्त्यं सामादिभिरुपक्रमैः ।।

71. अ. याज्ञ02/22 — 2/303. राजोअनिष्टप्रवक्तारं ...... प्रवासयेत ।।

जबकि कौटिल्य ने राजा को गाली देने पर जिव्हाच्छेदन करना आवश्यक बताया है।[71ब] किन्तु मनु ने राजा के क्रोध से बचने के लिये उसकी निन्दा न करने अथवा अनादर न करने का परामर्श दियाहै।[72] नारद और कात्यायन ने राजा को गाली देने के अपराध में दण्ड देने का विधान किया है।[73]

राज सिंहासन पर बैठने का दण्ड : यदि राजा की अवज्ञा अथवा अवहेलना कर कोई राजा की सवारी (रथ, हाथी, घोड़ा आदि) अथवा सिंहासन पर उसकी अवहेलना कर बैठ जाता है तो ऐसे अपराधी को उत्तम साहस का दण्ड देने का विधान किया गया है।[74] अतः धर्मशास्त्रियों ने राजा के यान, अथवा सिंहासन पर बैठने के अपराध से विरत रहने और उसका निरादर न करने का निर्देश दिया है।

राजकर्मचारियों द्वारा कर्तव्य की अवहेलना करना : यदि राज्याधिकारी सौंपे हुये उत्तरदायित्वों का सम्यक् निर्वाह नहीं करते है तो उन्हें कठोर दण्ड देने का भी निर्देश दिया है। इस सम्बन्ध में मनु के अनुरूप ही याज्ञवल्क्य का दृष्टिकोण है, जिसमें राजकर्मियों द्वारा कर्तव्य की अवहेलना करने पर कठोर दण्ड का विधान इन दोनों धर्मशास्त्रियों ने किया है।

---

71. ब. कौटिल्य अर्थशास्त्र 4/11/228.

72. मनु0 7/13 तस्माद्धर्मं यमिष्टेषु स व्यवस्येन्नराधिपः ।
अनिष्टं चाप्यनिष्टेषु तं धर्मं न विचालयेत् ।।

73. नारद 18.

74. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/303 राजयानासनारोढुर्दण्ड उत्तमसाहसः ।।

समीक्षा

किसी भी समाज और राज्य मेंशान्ति, समृद्धि एवं सुव्यवस्था के लिए यह परम आवश्यक है कि उसमें सामाजिक जनों तथा राजपुरुषों द्वारा राजनियमों विधि सम्मत धर्मों का सदैव परिपालन हो, अन्यथा राजनियमों अथवा राजधर्म के उल्लंघन से अनेक अपराध प्रायः नित्य प्रति होते रहते है। मनु और याज्ञवल्क्य ने सामाजिकों एवं राजपुरुषों द्वारा राजसम्बन्धित अनेक अपराधों निक्षेप या ऋण का न लौटाना, निक्षेप का मिथ्या कथन, मिथ्या साक्ष्य देना, राजपथ तथा राजसीमा विवाद, राजद्रोह, राजा की निन्दा करना, राजसिंहासन पर बैठना, राजकर्मचारी द्वारा घूस लेना, राजपत्नी के साथ व्यभिचार करना, राजकोष की चोरी करना आदि पर गम्भीरता से विचार करते हुए समुचित दण्ड व्यवस्था निर्धारित की है।

इन अपराधों के करने वाले चाहे वे किसी भी वर्ण और कुल के क्यों न हों— भले ही अपराधी ब्राह्मण अथवा राजकुल का प्रभावी व्यक्ति क्यों न हो, अदण्ड्य नहीं था। इससे तत्कालीन निष्पक्ष एवं आदर्श न्याय एवं दण्ड व्यवस्था का पता चलता है, जिसमें अपराध रूपी कण्टक को राजा निर्ममता पूर्वक कुचल कर राज्य की अराजकता और प्रजा के असन्तोष को दूर करता था। राज्य और समाज में वर्णाश्रम धर्म की स्थापना, जनता में निर्भयता, सुरक्षा का भाव, और सुख शान्ति तभी संभव है, जब कोई निरपराधी भूल से दण्डित न हों और अपराधी उचित राजदण्ड से बच न पाये। इस दृष्टि से सामाजिक स्थिरता के लिए मनु और याज्ञवल्क्य का दण्ड विधान सर्वथा समुचित एवं समीचीन ही है।

****
* * *

उपसंहार

शोध - निष्कर्षों का मूल्यांकन

धर्मशास्त्रों में निरूपित अपराध और दण्ड विधान के बीज वैदिक वाङ्मय से ही परिलक्षित होने लगते है। वैदिक विधि "ऋत" पर आधृत थी, जो सृष्टि को संचालित करने वाली नैसर्गिक विधि के रूप में विद्यमान है। "ऋत" की अवहेलना से पापबोध तथा इस पाप बोध की निष्कृति हेतु ऋत के संरक्षक वरुण अथवा अन्य देवताओं की प्रार्थना के मूल में पश्चात्ताप की भावना है, यही प्रायश्चित का पूर्व रूप है। "ऋत" की अवहेलना को अपराध माना जाने लगा, जिसका प्रत्यक्ष स्वरूप सप्तमर्यादाओं (निषेधों) के निर्धारण में देखा जा सकता है। धीरे-धीरे यह सूची बढ़ी तथा परवर्ती काल में परिगणित होने वाले अठारह विवाद पदों के बीज वैदिक वाङ्मय में अन्वेषित किये जा सकते हैं।

स्मृति वैदिक मन्तव्य की व्याख्या करती है। इसे धर्मशास्त्र कहा गया है। स्मृतियाँ वेदों पर आधृत होकर भी समकालीन लोकाचार एवं सामाजिक मर्यादाओं को ग्रहण करतीहैं, जिससे वे कुछ बिन्दुओं पर वेदों से मत वैभिन्न्य रखती हैं, इनमें श्रुति-परम्परा तथा सामाजिक रीति-रिवाज एवं आचार-व्यवहार का अच्छा समन्वय प्रतिपादित किया गया है। समस्त स्मृतियों में मनु एवं याज्ञवल्क्य स्मृति का धर्मशास्त्र साहित्य में प्रमुख स्थान रहा है, क्यों कि परवर्ती धर्मशास्त्र ग्रन्थों में इन्हीं दोनों का अनुकरण समयानुकूल संशोधन एवं परिवर्तन के साथ होता रहा है।

मनु और याज्ञवल्क्य दोनों ने ही धर्मशास्त्रीय एवं अर्थशास्त्रीय विचारधाराओं में समन्वय की चारू चेष्टा की है तथा विरोध की स्थिति में धर्मशास्त्र को ही प्रमाण माना है। अपराध और दण्ड विधान में प्रायः यही मन्तव्य स्पष्टतः परिलक्षित होता है। इन

इन स्मृतिकारों ने समाज में घटित होने वालेप्रत्येक प्रकार के अपराध एवं उनके प्रति दण्ड विधान पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया है। अतः कतिपय पाश्चात्य विद्वानों का यह आरोप सर्वथा निराधार है कि भारतीय विचारधारा मात्र धर्म और दर्शन प्रधान थी तथा राजशास्त्र जैसे लौकिक विषयों का उसमें समावेश नहींथा ।

मनु और याज्ञवल्क्य दोनों स्मृतिकारों ने न केवल अपराधों की प्रकृति,प्रवृत्ति आदि का वर्णन किया है, अपितु उनके समुचित वर्गीकरण का सुनियोजित प्रयास भी कियाहै, जिसमें ऋणादान, निक्षेप, अस्वामि-विक्रय,सम्भूयसमुत्थान, दत्तस्यानापकर्म, वेतनादान, संविद व्यतिक्रम, क्रय-विक्रयानुशय, स्वामिपाल विवाद, सीमा-विवाद, वाक्पारुष्य,दण्ड -पारुष्य, स्तेय, स्त्री-संग्रहण, स्त्रीपुंधर्म, दायभाग, द्यूतसमाह्वय, आदि 18 सामाजिक विवादपदों का उल्लेख मिलता है।

इन दोनों स्मृतिकारों ने अपराध के परिमाण, अंश और मात्रा पर भी पर्याप्त ध्यान दियाहै। अपराध के अनुरूप समुचित दण्ड व्यवस्था ही इनके अनुसार न्यायोचित धर्म है। यद्यपि अपराध की मापन प्रक्रिया व्यावहारिक प्रत्यक्ष साक्ष्य एवं प्रमाण पर प्रायः आधारित है, किन्तु अपराध के अनुरूप यथेष्ट दण्ड के लिए अपराध के मूल कारण और तदनुरूप दण्ड व्यवस्था के प्रति उत्साह एवं आग्रह इन दोनों स्मृतियों में परिलक्षित होताहै।

अपराध और दण्ड का सम्बन्ध मानव के स्वभाव से है, क्योंकि उसके अपराधी स्वभाव के कारण ही समाज को दण्ड-विधान की आवश्यकता हुई। मनु एवं याज्ञवल्क्य जैसे धर्मशास्त्र चिन्तकों ने इस अपराधोन्मुखता को मानव की सहज स्वाभाविक प्रवृत्ति मानकर इस समस्या का समुचित समाधान सुलभ ढंग से किया है।

मनु और याज्ञवल्क्य स्मृति में कर्मसाधना का विशेष आग्रह है। कर्मों का औचित्य अन्तःकरण की शुद्धि और आत्मिक विकास का चरमध्येय है। न्याय और दण्ड विधान कर्म

के मानदण्ड परही केन्द्रित है। सत्कर्म एक श्रेष्ठ साधना है और लोकजीवन की परमशक्ति

और उपलब्धि है। यह धार्मिक मूल चेतना सार्वदेशिक , सार्वकालिक मानवीय नैतिकमूल्यों का आह्वान और स्वागत करती है। जिनसे समाज का उपकार हो औरजिसमें अशेष आध्या-
-त्मिक उच्चताओं का संस्पर्श किया जासके ।

समाज में अपराध स्वतः प्रेरित अथवा परप्रेरित होते हैं, किन्तु पाप स्वतः प्रेरित होते है। अपराध प्रायः बोधजनित स्थिति में होते है, किन्तु पापउत्पन्न उपेक्षा अथवा प्रमादवश होते हैं। अपराध के मूल में योजना, व्यग्रता तथा प्रतिहिंसा की प्रक्रिया होतीहै। अपराध और पाप दोनों ही मानव की स्वाभाविक वृत्तियाँ है । अपराध का दण्ड राजा अथवा राज्य विधान देता है, किन्तु पाप के प्रायश्चित के लिए मनुष्य में स्वयं उत्कण्ठा एवं प्रेरणा प्रायः देती है। प्रायश्चित भी एक प्रकार का दण्ड है, जिसको पापी स्वयं ही स्वीकार कर पापफल से बचना चाहता है। पाप एक प्रकार का दोष है, किन्तु अपराध एवं व्यापार है। अतः पाप का परिमार्जन प्रायश्चित से हो जाताहै, जबकि अपराध के लिए दण्ड अपेक्षित है।

मनु और याज्ञवल्क्य स्मृति के आधार पर अपराधों और दण्डों का वर्गीकरण सर्वथा संभव है, क्योंकि इनकी प्रवृत्ति और प्रकृति में समरूपता होती है। पाप की सीमाएँ अपराधों की अपेक्षा अधिक विस्तृत हैं। मनु-स्मृति में यम-नियम का पालन करना कर्तव्य माना गया है। करणीय धार्मिक कर्तव्यों से ज्ञान अथवा अज्ञानवश किये गये पापों का परिहार स्वतः हो जाता है। याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार प्रायश्चित न करने पर एवं कुकर्म या दुष्कर्म करने पर पश्चात्ताप न करने से कष्टमय नरक लोकों की प्राप्ति होती है। मनु और याज्ञवल्क्य स्मृति में भारतीय न्याय एवं दण्ड व्यवस्था का उच्चकोटि का आदर्श प्रस्तुत है, जिसके अनुसार विधि के समक्ष कोई भी अपराधी अदण्ड्य नहीं है, भले ही वह ब्राह्मण अथवा राजा ही क्यों न हो । अतः प्राचीन भारतीय दण्ड व्यवस्था विश्व की अन्य दण्ड - व्यवस्थाओं से अधिक विकसित कही जा सकती है।

मनु और याज्ञवल्क्य के अनुसार अपराधों के बाह्य दण्ड चार प्रकार के होते है । वाग्दण्ड, धिग्दण्ड, धन दण्ड, तथा बधदण्ड । साधारण और कठोर डांट फटकार को क्रमशः वाग्दण्ड एवं धिग्दण्ड कहा गया है। धनदण्ड दो प्रकार का होता था- निश्चित जिसमें धन मात्रा निर्धारित होती थी, जैसे प्रथम साहस, 250 पण, मध्यम 500 पण तथा उत्तम साहस 1000पण, जबकि अनिश्चित धनदण्ड में अपराधी की सम्पूर्ण सम्पत्ति तक का अपहरण कर लिया जाता था । बध दण्ड मुख्यतया तीन प्रकार का होता था- पीड़न, अंगच्छेदन तथा मृत्युदण्ड । पीड़न दण्ड चार प्रकार से दिया जाता था-ताड़न, दग्धन, अंकन, बन्धन या अवरोधन तथा विडम्बन एवं देश निष्कासन । बध दण्ड दो प्रकार का होता था शुद्ध एवं मिश्र । शुद्धबध में मात्र मृत्युदण्ड दिया जाता था । यह विचित्र और अविचित्र दो प्रकार का होता था । मिश्रबध में मृत्यु दण्ड के साथ धनदण्ड भी दिया जाता था ।

दण्ड सम्बन्धी उपर्युक्त वर्गीकरण में मृत्युदण्ड कठोरतम है, जो हत्या, राजद्रोह क्रूरतम साहस, व्यभिचार आदि घोर अपराधों के लिए दिया जाता था । इसका विशेष सम्बन्ध राजनैतिक और सामाजिक अपराधों से है। राज्य के विघटनकारी तत्वों को प्रेरित करने वाले अपराधी मृत्युदण्ड के भागी होते थे । देश-निष्कासन प्रायः राजनैतिक अपराधों के लिए निर्धारित था । इसके अतिरिक्त सामाजिक वे अपराधी जिन्हें मृत्यु दण्ड जैसे कठोर दण्ड देने का विधान नहीं था, इस दण्ड के पात्र होते थे । उदाहरणार्थ : ब्राह्मण प्रायः मृत्युदण्ड से सुरक्षित था अतः उसे देश निष्कासन का दण्ड दिया जाता था।

मनु एवं याज्ञवल्क्य स्मृति में सामान्यतः कारावास दण्ड की व्यापक व्यवस्था नहीं दिखाई देती, फिर भी समाज या राज्य में वे उपद्रवकारी अपराधी जो घोर अपराध करते थे, किन्तु अंगच्छेदन, दग्धन अथवा देश निष्कासन दण्डों के द्वारा दण्डित नहीं किये जा सकते थे, उनके लिए कारावास का दण्ड-विधान था। वाग्दण्ड और धिग्दण्ड सामान्य दण्ड थे । जो अपराधी ताड़न आदि से दण्डित नहीं किये जा सकते थे, उन्हें राजा कठोर

वचनों से चेतावनी देकर दुष्कर्मों के लिए अपराधी को अपमान बोध कराता था।

मनु और याज्ञवल्क्य दोनों स्मृतिकारों के दण्ड विधान के मूल में जो उद्देश्य या आशय निहित है, उनमें से प्रतिशोध की भावना का शमन सर्वप्रमुख प्रयोजन है। उदाहरणार्थ: किसी की हत्या करने पर प्रतिशोध स्वरूप उसकी भी हत्या की भावना उत्पन्न होती है, किन्तु सभी यदि अपराधी को दण्ड देने लगे तो समाज अव्यवस्थित हो जायेगा। अतः इन दोनों धर्मशास्त्रकारों ने प्रतिकारी दण्ड विधान की स्थापना की है। इसके अतिरिक्त इन्होंने इस बात पर भी पूर्णतया ध्यान दिया है कि अपराधियों को ऐसे दण्डों का विधान किया जाये कि समाज में अपराध की पुनरावृत्ति नहो। संभवतः इसीलिए "अंगच्छेदन" की व्यवस्था दी है। जैसे यदि कोई कठोर भाषणकारी अपराधी गाली गलौच करता है तो उसकी जिव्हाच्छेदन का दण्डविधान है, जिससे पुनः वह कठोर भाषण न करसके।

दण्डविधान के मूल में तीसरा उद्देश्य समाज में भय और आतंक उत्पन्न करना भी है, जिसके लिए इन धर्मशास्त्रकारों ने दग्धन एवं अंकन दण्ड निर्धारित किया है। यथा-व्यभिचार अपराध करने पर अपराधी के ललाटपर जलते लोहे से स्त्री योनि का चिह्न अंकित किया जाता था। समाज में सुख,शान्ति,सुव्यवस्था बनी रहे, अपराध और पनपने न पायें तथा नियमों का परिपालन कियाजावे, इस उद्देश्य पूर्ति के लिए प्रायश्चित के लिए दण्ड का विधान किया गया है।

दण्ड सिद्धान्त निर्धारित करने में मनु और याज्ञवल्क्य दोनों ने यह ध्यान अवश्य रखा है कि अपराध किन परिस्थितियों में किया गया है तथा दण्ड विधान वर्णानुक्रम के अनुरूप है यानहीं? कहीं दण्ड की व्यवस्था वर्णाश्रम को बाधित तो नहीं करती? गुरुतर अपराध के लिए कहीं न्यून दण्ड की व्यवस्था तो नहीं की गई अथवा अल्प अपराध के लिए अपेक्षाकृत कठोर दण्ड नहीं दिया गया एतदर्थ इन स्मृतियों में प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित,मुद्रित

तथा शासित का विस्तृत विवेचन भी मिलता है। याज्ञवल्क्य ने कुल श्रेणी , गण पूग स्थानीय न्यायालय माने हैं।

न्याय प्रशासन में सर्वोत्तम अधिकारी राजा होताथा, किन्तु इन स्मृतियों में यह व्यवस्था दी गई है कि राजायदिव्यस्ततावश विवादों को न देख सुन सके तो वह "प्राड्विवाक्", के रूप में किसी विद्वान् सच्चरित्र ब्राह्मण को नियुक्त कर दे। प्राड्विवाक् का सामाजिक स्तर राजा से कम समादृत नही था। क्योंकि वह न्याय करने में राजा के विधान के प्रति नहीं-अपितु धर्मशास्त्र के प्रति उत्तरदायी था ।

मनु और याज्ञवल्क्य स्मृतियों में अभियोग का समानार्थी शब्द "व्यवहार" प्रयुक्त हुआ है, जिसके चार पाद प्रतिज्ञा, उत्तर, क्रिया और निर्णय माने गये हैं। न्यायालयों में न्यायाधीश व्यवहार को सभी वादों को न्याय नियमों को पूर्ण कर निष्पक्ष निर्णय बिना लोभ [उत्कोच न लेकर] और बिना मैत्री-सम्बन्ध से प्रभावित न होकर उचित न्याय करते थे । यदि कोई न्यायाधीश उत्कोच लेकर अनुचित निर्णय देता था तो उसे देश निष्कासन का दण्ड विहित हैं। जिस व्यवहार या वादमें न्यायाधीश एकमत हों वह निःशल्यतथा उसमें मतभेद प्रकट होने पर "सशल्य" निर्णय होता है। वादी - प्रतिवादी के असन्तोष की कुछ विशेष परिस्थितियों में पुर्नन्याय की भी व्यवस्था की गयी है।

मनु और याज्ञवल्क्य का दण्ड विधान मूलतः धर्म के अधीन है। मनु ने "दशकं-धर्म लक्षणम्", [मनु0 6/92] अर्थात् धर्म के दश लक्षण बताते हुए सामाजिक सदाचार के इन दस मानदण्डों की अवहेलना से अपराध की स्थिति उत्पन्न होना माना है। मनु ने स्पष्टतः चार कामज व्यसन समुदाय [मधपान, जुआ, स्त्रियाँ औरशिकार] तथा तीन क्रोधज व्यसन समुदाय [दण्ड प्रयोग, कटुवचन, अर्थदूषण] को कष्टदायक मानाहै। [मनु07/50-51] याज्ञवल्क्य भी सामाजिक सुव्यवस्था के लिए निर्धारित सदाचरणों की अवहेलना को अपराध

मानते हुए उनके नियंत्रण के लिए कठोर दण्ड-विधान निर्धारित करते हैं।

इन दोनों स्मृतियों की दण्ड व्यवस्था में बहुसंख्यक दण्डों के स्थान पर आधुनिक भारतीय दण्ड व्यवस्था में मात्र मृत्युदण्ड, आजीवन कारावास, सम्पत्तिहरण तथा वैरदेय (जुर्माना) का ही प्रचलन है। स्मृतिकालीन तथा आधुनिक दण्ड व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन करने पर ज्ञात होताहै कि आधुनिक दण्ड व्यवस्था अपेक्षाकृत अधिक उदार है। स्मृतियों के कतिपय दण्ड-ताड़न, विडम्बन, अंगच्छेदन, दग्धन, अंकन, विचित्रवध और देश निष्कासन आज पूर्णतया समाप्त कर दिये गये हैं। मृत्युदण्ड भी आज सुदीर्घ न्यायिक प्रक्रिया पूर्ति केपश्चात् अपरिहार्य स्थिति में दियाजाता है। अधिकांशतः अपराधी को कारावास में रखकर सुधारने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार धर्मशास्त्रीय दण्ड व्यवस्था जहाँ - प्रतिकारात्मक कठोर थी, वहीं आज की दण्ड व्यवस्था सुधारात्मक और उदार अधिक है। अपराधी के प्रति बढ़ती उदारता और सहानुभूति आज अपराधवृत्ति को प्रोत्साहन दे रही है। अतः इस पर पुर्नविचार की आवश्यकताहै।

वस्तुतः स्मृति कालीन प्राचीन और अर्वाचीन दण्ड-विधान में शताब्दियों के अन्तराल से देशकाल जनित में अन्तर होना स्वाभाविक ही है, किन्तु आधुनिक अपराधशास्त्र एवं दण्डसंहिताएँ देशकाल के अनुरूप परिवर्तित होकरभी मूलतः मनु और याज्ञवल्क्य जैसे प्रमुख धर्मशास्त्रियों की न्याय चेतना से जुड़ी हुई है।

मनु एवं याज्ञवल्क्य इनदोनों महान् धर्मशास्त्रियों ने पूर्व विवेचित सभी अपराधों से समाज को सर्वथा अप्रदूषित रखने और सदाचारी बनानेकी व्यापक दिशा में दण्ड विधान की समुचित व्यवस्था की है। समाज के प्रत्येक वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार और आचरण में शुचिता, नैतिकता तथा नियमानुकूल धार्मिकता का पूर्ण समावेश करना इन दोनों धर्मशास्त्रियों का प्रमुख ध्येय एवं पावन अभिप्रेत है। अतः समस्त सामाजिक अपराधों के उन्मूलन और नियंत्रण की दृष्टि से मनुऔर याज्ञवल्क्य का दण्डविधान सर्वथा समुचित, समीचीन एवं वर्तमान न्याय व्यवस्था के लिए भी दिग्बोधक सिद्ध होता है।

— **इतिशम्** —

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थ — सूची

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थ-सूची

(अ) आधार ग्रन्थ :

अथर्व-वेद (सायण-भाष्य सहित) सं. विश्वबन्धु, वि. वै. शो. सं. होशियारपुर, 1962.

अथर्व-वेद संहिता: श्री पाद दामोदर सातवलेकर, पारडी (सूरत) प्रथम सं.

अष्टाविंशत्युपनिषदः सं0 स्वामी द्वारकादास शास्त्री, प्रा0भा0प्र0, वाराणसी, 1965.

आपस्तम्ब धर्मसूत्र : सं0 डॉ. उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौखम्भा सं. वि. वाराणसी, 1983.

ऋग्वेदसंहिता : (सायण भाष्य) वैदिक संशोधन मण्डल, पूना प्रथम सं0.

ऋग्वेदसंहिता : सं0 श्री राम शर्मा, संस्कृति संस्थान, बरेली, प्रथम सं0

ऐतरेय ब्राह्मण : (सायण भाष्य), आनन्दाश्रम, पूना, 1931.

कौटिलीय अर्थशास्त्रम् वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा, वाराणसी, 1962.

कौटिलीय अर्थशास्त्रम् : सं0 पं0 गुरुप्रसाद शास्त्री, चौ0 सं. सी. वाराणसी, प्रथम सं.

गौतम धर्म सूत्राणि : सं0 उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौ0 सं0 सं0, वाराणसी, 1986.

दण्डविवेक: (वर्धमानकृत) गायकवाड़ ओ0सी0, बड़ौदा, 1931.

धर्मशास्त्र संग्रह : खेमराज श्री कृष्णदास, बम्बई, 1913.

नारद-स्मृति : सं0 जूलियस जॉली एशियाटिक सो0, कलकत्ता, 1885.

निरुक्तम् (यास्क कृत) : मेहर चन्द्र लछमनदास पब्लि., दिल्ली 1985.

पाराशर स्मृति : सं0 शिवदत्त मिश्र शास्त्री, ठाकुर दास व सन्स बुकसेलर, वाराणसी 1969.

बृहदारण्यकोपनिषद् : गीताप्रेस गोरखपुर, 1969.

बौधायन धर्म सूत्र (गोविन्द स्वामी भाष्य): सं. उमेशचन्द्र पाण्डेय चौ. सं. सी. वाराणसी, 1983

मनुस्मृति (कुल्लूक भट्ट टीका सहित): पं. हरगोविन्द शास्त्री, चौ० सं. सी., वाराणसी, 1970
मनुस्मृति : सं. ए. एन. माण्डलिक, बम्बई, प्रथम सं.
मनुस्मृति : पं. जनार्दन झा, हिन्दी पु० एजेन्सी, कलकत्ता, 1959.
मनुस्मृति : सं. डॉ. गंगानाथ झा, इलाहाबाद, प्रथम सं.
पराशर स्मृति: बम्बई संस्कृत सी. , बम्बई, प्रथम सं.
मनुस्मृति (षष्ठ अध्याय): सम्पादक, डा. कृष्णकान्त त्रिपाठी, कानपुर-1990.
भविष्य पुराणम् : आनन्दाश्रम, पूना (महाराष्ट्र) प्रथम संस्करण.
महाभारतम् (भाग 1-6): गीता प्रेस, गोरखपुर -प्रथम सं.
यजुर्वेद संहिता : सं. पं. दामोदर सातवलेकर, पारडी, प्रथम सं.
याज्ञवल्क्य स्मृति : (दायभाग प्रकरणम्) सं. डा. कैलाशनाथ द्विवेदी, मेरठ, 1966.
याज्ञवल्क्य स्मृति : सं. डा. उमेश चन्द्र पाण्डेय, चौ. सं. सी. वाराणसी, 1983.
याज्ञवल्क्य स्मृति : (मिताक्षरा, बालम्भट्टी) अपरार्क टीका) , निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1949.
याज्ञवल्क्य स्मृति: (अपरार्क टीका) आनन्दाश्रम, पूना भाग-1, 2, 1904.
विष्णु स्मृति : (बैजयन्ती टीका सहित) जुलियस जॉली, चौ. सं. सी. वाराणसी 1962.
वीर मित्रोदय (मित्रमिश्र) : चौ. प्रकाशन, वाराणसी, 1914, 1916.
शुक्रनीति : सं. ब्रम्हशंकर मिश्र, चौ. सं. सी. वाराणसी, 1968.
स्मृति चन्द्रिका (भाग 1-3) : देवण महोपाध्याय, , नाग प्र. दिल्ली 1988.
स्मृति सन्दर्भ : (भाग-1-6) नाग प्रकाशन, दिल्ली, 1988.
बीस स्मृतियाँ-(भाग 1 तथा सं. 2) सं. श्री राम शर्मा, बरेली.
वशिष्ठ धर्म सूत्र: बॉम्बे संस्कृत एण्ड प्राकृत सीरीज, बम्बई, प्रथम सं.
विष्णु धर्म सूत्र : बाम्बे संस्कृत एण्ड प्राकृत सीरीज, बम्बई, प्रथम सं.

बृहस्पति-स्मृति : (जाली द्वारा अनुदित): सै०बु०ई० वाल्यूम, 33.

बृहस्पति-स्मृति : गायकवाड़ ओरियण्टल सी. बड़ौदा, प्रथम सं.

कात्यायन-स्मृति : सं. डॉ. पी.वी.काणे, पूना, 1933.

स्मृतीनां समुच्चय: आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, प्रथम सं.

वाल्मीकि रामायणम् : गीता प्रेस गोरखपुर, (सं. रामनारायण पाण्डेय शास्त्री, गोरखपुर)प्रकाशित

रघुवंश महाकाव्यम् : सं. डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी, बी.एच.यू. संस्करण, 1978.

मृच्छकटिकम् (शूद्रककृत) : डा. कृष्णकान्त त्रिपाठी, कानपुर, 1989.

विवाद-रत्नाकर : (चण्डेश्वर कृत) निर्णय सागर, बम्बई प्रथम सं.

यशस्तिलक चम्पू (सोमदेव कृत) : चौ. संस्कृत सी., वाराणसी, प्रथम सं.

राजतरंगिणी (कल्हण कृत) : सं. रघुनाथ सिंह, चौ.सं.सी., वाराणसी.

व्यास-स्मृति : गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा, प्रथम संस्करण.

(ब) सन्दर्भ ग्रन्थ :

अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन : डॉ.कपिल देव द्विवेदी, वाराणसी, 1988.

अपराध और दण्डशास्त्र : कौशल कुमार राय, चौ.वि. वाराणसी, 1965.

अपराध एवं आपराधिक न्याय प्रशासन : प्रो. एन.वी. परांजपे, भोपाल 1971.

अपराध एवं दण्ड (स्मृतियों एवं धर्मसूत्रों के परिप्रेक्ष्य में) : डा. प्रतिभा त्रिपाठी, राका प्रकाशन, इलाहाबाद 1993.

धर्मशास्त्र का इतिहास : डा. पी.वी.काणे (अनु. अर्जुन चौबे काश्यप)(भाग-1,5) हिन्दी समिति, लखनऊ 1980, 1984.

प्रमुख स्मृतियों का अध्ययन : लक्ष्मी दत्त ठाकुर, लखनऊ 1971.

धर्मशास्त्रों का समाजदर्शन : डा. गीतारानी अग्रवाल, वाराणसी 1983.

प्राचीन भारत की दण्ड व्यवस्था : डॉ. वाचस्पति शर्मा त्रिपाठी, नाग प्रका. दिल्ली 1989.

प्राचीन भारत में अपराध और दण्ड : डॉ. हरिहरनाथ त्रिपाठी, चौ. वि. भ. वाराणसी 1964.

प्राचीन भारत में अपराध और दण्ड : डॉ. साधना शुक्ला, पु. पु. कानपुर, 1987.

प्राचीन भारतीय स्मृतिकार और नारी: डॉ. अच्युतानन्द घिल्डियाल तथा अन्य, वाराणसी —1974.

मनु का राजधर्म : श्याम लाल पाण्डेय, लखनऊ प्रथम सं०

मनु की समाज व्यवस्था : सत्यमित्र दुबे, मैक0 ब0लि0 दिल्ली, 1981.

हिन्दू विधि एवं स्रोत : डॉ. वेदप्रकाश उपाध्याय, इण्टरनेशनल एजेंसी, इलाहाबाद 1986.

अपराध, अपराधी और अभियुक्त : डॉ. परिपूर्णानन्द वर्मा, आगरा, 1963.

अपराध शास्त्र औरसामाजिक विघटन : वात्सायन, मेरठ 1974.

पतन की परिभाषा : डॉ. परिपूर्णानन्द वर्मा, लखनऊ 1956.

धर्मशास्त्रीय निबन्धावलि : डॉ. महेश ठाकुर. —

प्राचीन भारत में राज्य एवं न्याय पालिका. : डॉ. हरिहरनाथ त्रिपाठी, दिल्ली 1965.

प्राचीन भारतीय शासन पद्धति : अनन्त सदाशिव अल्तेकर, इलाहाबाद, 1976.

प्राचीन भारतीय साहित्य का इतिहास : एम. विण्टरनित्ज, दिल्ली 1975.

हिन्दू राजतंत्र : काशी प्रसाद जायसवाल, काशी ना. प्र. , काशी 1955.

हिन्दू सरकार : राजबली पाण्डेय, चौ. वि. भ. वाराणसी, 1966.

Manu and Yagnavalkya, K.P. Jayeswal, Delhi. I Edition.

Manu Dharm Shastra., Kewal Motiwani. I Edition.

Code Procedure in Ancient India, Mahesh Kumar Sharma.

International Law and Custom In Ancient India, P.N. Benerjee Calcutta

Studies In Ancient Indian Law and Justice, R.K. Chaudhary, Patna, I Edi.

Crime and Punishment In Ancient India, Das and Shukla. Delhi. I Edition

The Panal Law of India. Vol. I., Sri. H.S. Gaur. Allahabad., 1966.

Hindu Law in its Sources, Ganganath Jha. Allahabad. 1933.

International Law and Customs In Ancient India, R.D. Benerjee, Bombay. I Edi

कोश ग्रन्थ :

अमर कोश (अमरसिंह) : सं. पं. शिवदत्त शर्मा, दिल्ली 1985.

धर्मकोश (व्यवहार काण्ड) : सं. लक्ष्मण शास्त्री जोशी, प्र.पा.म. सतारा, 1937-41.

हिन्दू धर्म कोश : डॉ. राजबली पाण्डेय, उ.प्र.हि.सं. लखनऊ 1988.

संस्कृत वाङ्मय कोश (भाग, 1-2) : डॉ. श्री भा. वर्णेकर, कलकत्ता 1988.

पत्र पत्रिकाएँ :

सागरिका : सं. राम जी उपाध्याय, वाराणसी (धर्म समाज दर्शन विशेषांक).

डॉ. गंगानाथ झा, केन्द्रीय सं. विद्यापीठ शोध पत्रिका : सं. डॉ. माया मालवीय, इलाहाबाद।

शोध प्रभा : (लाल बहादुर शास्त्री केन्द्र सं. वि. शोधपत्रिका) : डॉ. मण्डन मिश्र, दिल्ली।

दूधाधारी वचनामृत : डॉ. गिरीश चन्द्र त्रिपाठी, हरिद्वार (उ.प्र.)

कल्याण (धर्माङ्क), : गीता प्रेस, गोरखपुर, 1966.

*****

****